धर्मसुधाकर, मेवाड़भूषण मुनिश्री प्रतापमलजी महाराज

के

बहुमानार्थ आयोजित

मुनिश्री प्रताप अभिनन्दन ग्रन्थ

लेखक–सम्पादक

श्री रमेश मुनि, सिद्धान्ताचार्य 'साहित्यरत्न'

मुनिश्री प्रताप-अभिनन्दन ग्रन्थ

लेखक ❋ श्री रमेशमुनि, 'सिद्धान्तआचार्य'

सम्पादक ❋ मुनिश्री सुरेश कुमारजी, 'प्रियदर्शी'

परामर्शक ❋ श्री अजीत मुनिजी 'निर्मल'

सयोजक ❋ श्री नरेन्द्रमुनि 'विशारद'
श्री अभयमुनि
श्री विजयमुनि 'विशारद'
श्री प्रकाशमुनि 'विशारद'

प्रकाशक ❋ श्री केसर-कस्तूर स्वाध्याय समिति
गाधी कालौनी, जावरा (म प्र)

व्यवस्थापक ❋ सजय साहित्य सगम,
विलोचपुरा, आगरा-२

मुद्रण ❋ रामनारायन मेडतवाल,
श्री विष्णु प्रिंटिग प्रेस
राजा की मण्डी, आगरा-२

प्रकाशन वर्ष ❋ वि० स० २०३० मार्गशीर्ष वीर स० २४९९
ई स दिसम्बर १९७३,

मूल्य सात रुपये मात्र

समर्पण

शांतौ चन्द्र सम द्युतौ रवि समः
क्षात्रौ धरित्रीसम ।
सत्ये धर्म सम श्रुतौ गुरुसम
धैर्ये हिमाद्रिसम ।
धर्माचार-विचार चारु निपुणः
शाश्वत स्वधर्मे रत. ।
वन्देऽह सततं प्रतापगुरवे
कुर्वन्तु मे मगलम् ।

—रमेश मुनि

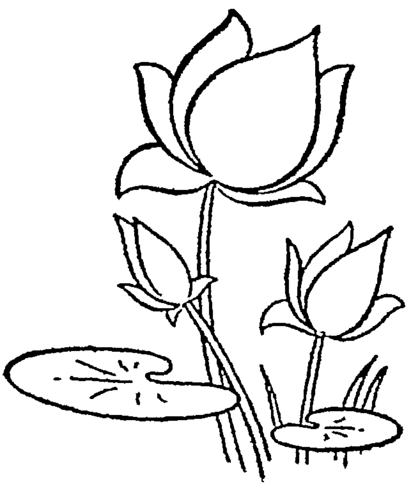

मेरी कलम : मेरे विचार

प्रस्तुत 'मुनि श्री प्रताप अभिनंदन ग्रन्थ' पाठको के कमनीय कर-कमलो की शोभा बढा रहा है। इस ग्रन्थ के लेखक-सम्पादक मेरे श्रद्धा के केन्द्र सिद्धान्तआचार्य, 'साहित्यरत्न' मधुरवक्ता श्री रमेश मुनि जी मा सा. है जिनके सराहनीय परिश्रम ने इतस्तत· बिखरी हुई जीवनोपयोगी सामग्री को सग्रहीत करके ग्रन्थरूप मे प्रतिभापूर्वक सजाने का श्लाघनीय प्रयास किया है।

ग्रन्थ की विशेषता—

प्रस्तुत ग्रन्थ में चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड मे गुरुप्रवर का समुज्वल जीवनदर्शन है। द्वितीय खण्ड मे, संस्मरण, शुभकामनायें एवं-वन्दनाञ्जलियो का संकलन किया गया है। तृतीयखण्ड मे प्रवचन पखुडियो का चयन एव चतुर्थखण्ड मे धर्म, दर्शन एव संस्कृति से सम्बन्धित विद्वानो के लेख है।

इस प्रकार यह ग्रन्थ चार खण्डो मे होते हुए भी वृहदाकार होने से वच गया है। साथ ही सारपूर्णता है ही। विशालकाय ग्रन्थ पुस्तकालयो के लिए दर्शनीय वस्तु बन जाती है। पाठकगण जैसा चाहिए वैसा उपयोग नही कर पाते हैं। अतः इस ग्रन्थ को आकार मे लघु रखकर भी सारपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। जहाँ-तहाँ प्रतिपाद्य विषय-शैली का प्रवाह मन्थरगति से प्रवाहित होता हुआ अतीव सरल-सुगम एव धर्म-दर्शन तत्त्वो से गर्भित प्लावित है, जो पाठकवृन्द के लिए उत्तरोत्तर रूचिवर्धक बन पडा है।

किसलिए ?

अभिनन्दन ग्रन्थ सुसाहित्य भण्डार की अनुपम शान है। अमुक-अमुक युग मे जो यशस्वी विभूतिया हुई है उनका आद्योपांत जीवन-दर्शन लिखा रहता है। उस जीवन वृत्त से भूली-भटकी एव अध·पतन के गर्भ मे गिरती मानवता को पुन· संभलने का स्वर्णिम अवसर मिलता

है। 'Light house' की तरह अभिनन्दन ग्रन्थ मार्गदर्शक एवं प्रेरणा का स्रोत माना है। यद्यपि साधनारत आत्मा नही चाहती कि —जनता द्वारा हमारा वहुमान हो, जीवनियाँ स्वर्णिम पृष्ठो पर लिखी जाय, भावी पीढी हमे याद करें। किंतु विवेकशील समाज स्वय उनका सम्मान करने के लिए हाथ आगे बढाता है। वह उनका वहुमान करके अपनी चिरपरपरा के विशद गौरव को अक्षुण्ण रखकर एव निज कर्तव्य का पालन करता हुआ अपने आपको महानता की ओर ले जाने का सफल प्रयास भी करते हैं।

लेखकप्रवर स्वतत्र विचारक, मननशील एव प्राजलभाषा के धनी सुलेखक है। अवकाशानुसार आपके कर-कमलो मे कलम साहित्योद्यान मे अठखेलियाँ किया ही करती है।

यद्यपि पार्थिव देह से आप (लेखक प्रवर) अति कृश, अति कमजोर अवश्य जान पडते है किंतु सच्ची निष्ठा के पक्के अनुगामी है, हताश होना एव हिम्मत हारना आप जानते ही नही है। अध्ययन-अध्यापन क्षेत्र मे आपका मनोवल अत्युच्च एव उत्साह-उमग के युवक साधक भी है। आपके साधनामय जीवन को चमकाने-दमकाने का सर्व श्रेय हमारे चरित्रनायक श्री जी को है। जिनकी वलवती प्रेरणा-चेतना सदैव लेखक महोदय के जीवन को आगे से आगे बढने की स्फूर्ति भरती रही है।

वस्तुत· चन्द शब्दो के माध्यम से प्रात स्मरणीय गुरु भगवत श्री प्रतापमल जी म सा. के उदीयमान जीवन को कुछ अशो मे दर्शाने का जो अनुपम अनुकरणीय प्रयास किया है, उसके लिए हम सभी लेखक मुनिवर के प्रति आभारी हैं।

'मुनि श्री प्रताप अभिनदन ग्रथ' का यह सफल परिश्रम प्रत्येक बुद्धिजीवी के लिए युग-युग तक प्रकाश-स्तभ सा कार्य करेगा। ऐसी मैं आशा रखता हूँ।

—मुनि सुरेश 'प्रियदर्शी'

लेखक की कलम से

गुरु प्रवर श्री प्रतापमल जी म. सा के साधना-काल को इस समय इक्कावन वर्ष सम्पन्न हो चुके है। उन्होने अपने इस महत्त्वपूर्ण समय का सर्वांग मुख्यरूपेण स्थानकवासी जैन समाज की प्रगति-विकास मे और जन-जन के कल्याण मे बिताया है।

गुरु भगवत के जीवन का अध्ययन करते रहने का सुअवसर गत वीस वर्षों से मुझे भी प्राप्त हुआ है। मेरा पठन-पाठन, मेरी साधना व मेरी प्रगति इनकी देख-रेख मे ही फली-फूली, उनके कमनीय कर-कमलो से सवर्धन पाई एवं उनकी शुभ दृष्टि के समक्ष ही पल्लवित-पुष्पित हुई है।

यद्यपि मेरे लिए उनका वाल्य जीवन और पहिले का मुनि जीवन केवल श्रवण का ही विषय रहा है। तथापि उनके मुनि जीवन के कुछ वर्ष मेरे प्रत्यक्ष के विषय रहे है। मेरी नन्ही सी आंखो ने इन वीस वर्षों मे उनको काफी सन्निकटता से देखा है। दिल-दिमाग ने यथा शक्ति समझा है और मन ने अपनी मथरशीलता से उनके विषय मे नानाविध निष्कर्ष भी निकाले हैं। उन्ही निष्कर्षों को शब्दाकित करने का प्रयास इस लघु पुस्तिका मे किया गया है।

व्यक्ति के पार्थिवदेह की आकृति को कागज पर उतारने मे जितनी कठिनाइयाँ होती हैं, उनसे कही अधिक व्यक्तित्व को श्वेत कागज पर लेखनी द्वारा उतारने मे होती है। आकृति साकार होती है। उसे किसी एक ही क्षेत्र और काल के आधार पर चित्राकित कर लेना पर्याप्त हो सकता है। परन्तु साधक का महामहिम व्यक्तित्व अनाकार-अरूप होता है। साथ ही साथ वह जन-जन के जीवन तक व्याप्त रहता है। अतएव उसे शब्दाकित करने मे अपेक्षाकृत अधिक दुरूहता है। चूँकि लिखी गई कही गई, बातो का आज की चतुर

समाज अपनी तीक्ष्ण बुद्धि की तुला पर नापती है। अपने संकीर्ण दिल-दिमाग से लेखक के व्यापक निष्कर्षों का मिलान करती है। उनमे और इनमे कही समानता नही हुई तो उसका भी उत्तर चाहती है। अतएव स्थान-स्थान पर प्राय अतिशयोक्तियो का वहिष्कार ही किया गया है। आदर्शवाद को न अपना कर जहाँ-तहाँ हमारे चरित्रनायक के जीवन का वास्तविकवाद के माध्यम से ही दिगदर्शन करवाया गया है।

सहयोगियो का सहयोग कभी भी भुलाया नही जा सकता है। स्थविर पद विभूषित मालवरत्न, गुरु भगवत श्री कस्तूरचन्द जी म० स्थविर वर प० रत्न श्री रामनिवास जी म०, गुरुवर श्री प्रतापमलजी म, प्रवर्तक श्री हीरालालजी म आदि मुनियो के वरदहस्त मेरे माथे पर रहे है। प्रस्तुत कार्य मे सुहृदयी-स्नेही सफलवक्ता श्री अजीत मुनि जी एव श्री सुरेश मुनि जी म की तरफ से उत्साह वर्धक स्फुरणा मिलती रही। लघुमुनि श्री नरेन्द्रकुमार जी एवं श्री विजय मुनि जी का सहयोग विशेष उल्लेखनीय रहा। जिन्होने शुद्ध साफ प्रेस कापी करने मे श्लाघनीय सेवा प्रदान की। स्नेही श्रीचंद जी सुराना 'सरस' का सेवा कार्य भी स्मरणीय है। सचमुच ही जिन्होने ग्रथ को निखारा है। अन्य जिन मुनि महासती वृन्द ने अपने श्रद्धा-स्नेह भरे उद्गारो को भेजकर ग्रन्थ को सुन्दर बनाने मे सहयोग दिया हैं उन सभी विद्वद्वर्ग का हृदय से अभिनंदन करता हूँ।

किसी भी महापुरुष के जीवन का सर्वांश रूपसे दर्शन कर लेना सहज नही है। उनके ऊर्ध्वमुखी जीवन को देखने के लिए दृष्टि की भी उतनी ही व्यापकता अपेक्षित है। मुझे यह स्वीकार करने मे तनिक भी सकोच नही कि प्रस्तुत 'मुनि श्री प्रताप अभिनंदन ग्रन्थ' सम्पूर्ण नही है। इसकी पूर्णता मैं अपनी नन्ही बुद्धि से नही कर पाया हूँ। इसका मुझे तनिक भी खेद नही है। मैं जानता हूँ कि किसी भी साधक के जीवन का अध्याय 'इति' रहित है और उसमे केवल 'अथ' ही होता है।

—मुनि रमेश

आभार-दर्शन

वादीमान-मर्दक स्व० गुरुदेव श्री नन्दलाल जी म सा के शिष्य रत्न मेवाडभूषण पं० रत्न श्री प्रतापमल जी म सा के साधना (दीक्षा) जीवन के ५१ वर्ष पूर्ण होने आये है। आपने इस सुदीर्घ साधना जीवन मे जैन समाज की अमूल्य सेवा करके धर्म-शासन की गौरव-गरिमा-महिमा-चमकाने का श्लाघनीय प्रयास किया और कृतसंकल्प है। जिनका मूल्याकन करना साधारण जन-मन के बस की बात नही है।

कभी भी जिनका मनोबल सफलता-विफलता की परिस्थितियो मे गडबड़ाया नही, लोमहर्षक-विघ्न बाधाओ मे भी जिनका जीवन लक्ष्य अचल रहा, जो हमेशा सरलता-समता-रसपान करके मुस्कराते रहे हैं, निरतर-प्रगति की मशाल लिए आगे बढना ही सीखा है। ऐसे महान् व्यक्तित्व के धनी का 'मुनिश्री प्रताप अभिनदन ग्र थ' के रूप मे प्रकाशन करके हम अत्युल्लास का अनुभव कर रहे हैं।

लेखक ,सयोजक, संपादक एवं मुनिमण्डल का यह प्रयास सर्वथा अनुकरणीय एवं अनुमोदनीय है। जिन्होने गुरुदेव के प्रति अनुपम श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया है।

जिन महानुभावो ने ग्रंथ प्रकाशन मे हमे बौद्धिक तथा आर्थिक सहयोग प्रदान किया है उनके लिए समिति आभारी है।

—अध्यक्ष एवं मंत्री

शोभागमल कोचेटा, सुजानमल मेहता

केशर-कस्तूर स्वाध्याय भवन

गाधी कालोनी

जावरा

मेवाड़ भूषण गुरुवर्य श्री प्रतापमल जी महाराज

जीवन की लघु परिचय-रेखा

जन्मस्थान—मेवाड, देवगढ (मदारिया) राजस्थान ।

पिता श्री—मान्यवरसेठ "मोडीराम जी" ओसवाल गांधी गोत्रीय ।

मातुश्री—अखण्डसौभाग्यवती गुण गभीरा धीरा "दाखावाई' गाँधी।

जाति और धर्म—ओसवाल तथा जैनधर्म ।

जन्मसवत्—१९६५ आश्विन कृष्णा ७ सोमवार ।

जन्मनाम—"प्रतापचन्द्र" गाधी ।

गुरुप्रवर की ख्याति—प्रात स्मरणीय वालब्रह्मचारी, परमतेजस्वी, ओजस्वी यशस्वी 'वादीमान-मर्दक' गुरुप्रवर श्री 'नन्दलाल जी' महाराज ।

दीक्षा स्थली—'मन्दसौर' मध्यप्रदेश ।

दीक्षासवत्—स० १९७६ मार्गशीर्ष पूर्णिमा ।

अध्ययन व भाषा-विज्ञान—हिन्दी, प्राकृत, सस्कृत, गुजराती व अंग्रेजी-साहित्य मे आपकी पहुँच व भाषा विज्ञान के विज्ञ है । हिन्दी-गुजराती-सस्कृत मे आप सफल उपदेशक भी है ।

पदवी—वडी सादडी मे स० २०२६ मार्गशीर्ष पूर्णिमा की शुभ घडी मे स्थानीय सघ द्वारा 'मेवाड भूषण' पदवी से अलकृत ।

विहार स्थली—मेवाड, मारवाड, मालवा, पजाव, बिहार, वगाल, उत्तर प्रदेश आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात व वम्बई प्रदेश आदि ।

शिष्य-प्रशिष्य—तपस्वी व्या० "श्री वसतिलाल जी" म०, मधुर वक्ता श्री "राजेन्द्र मुनि जी" म०, "मुनि रमेश" 'प्रियदर्शी" श्री सुरेश मुनिजी म०, श्री नरेन्द्र मुनिजी म०, तपस्वी सेवाभावी श्री अभयमुनि जी म०, श्री विजय मुनि जी म०, आत्मार्थी श्री मन्नामुनि जी म०, श्री वसत मुनिजी म०, प्रकाश मुनि जो म०, श्री सुदर्शनमुनि जी म०, श्री महेन्द्र मुनि जी म०, श्री कातिमुनि जी म० ।

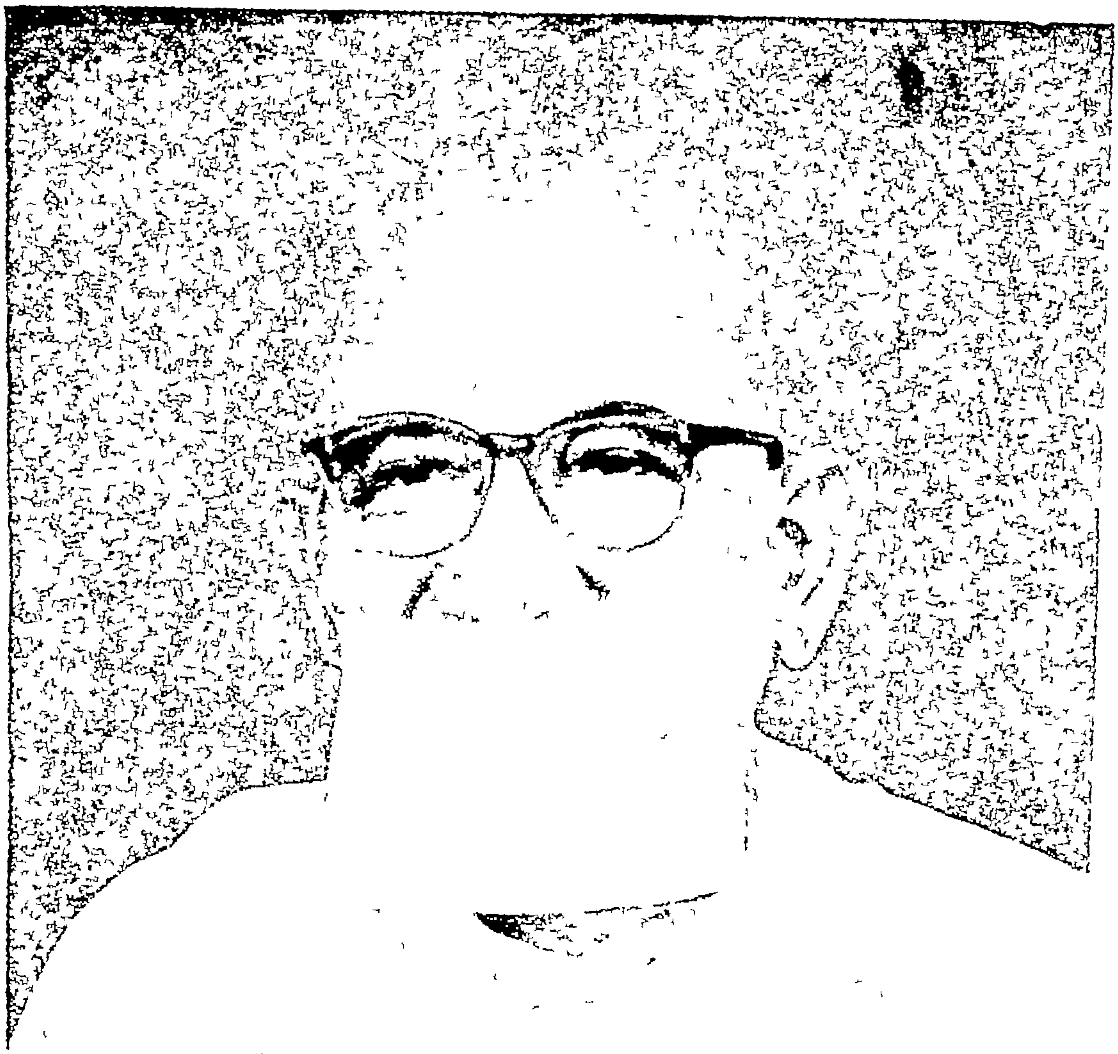

मेवाड़भूषण पं० रत्न श्री प्रतापमल जी महाराज

ग्रन्थ-प्रकाशन में सहयोगी मण्डल

१५०१)	श्रीमान्	चम्पालालजी मकलेचा जनसेवा ट्रस्ट द्वारा प्राप्त	जालना
१००१)	,,	सुगनमलजी सा० भंडारी "जैन रत्न"	इन्दौर
५५१)	,,	कवंरलाल जी गजराज जी वागरेचा	जोधपुर
५०१)	,,	भीमराज जी लक्ष्मीचन्द जी सालेचा (वर्षीतप के उपलक्ष्य मे)	मजल
५०१)	,,	घेवरचन्द जी शान्तिलाल जी सालेचा (वर्षीतप के उपलक्ष्य मे)	मजल
५०१)	,,	पुखराज जी भवॅंरलाल जी कोठारी	मजल
५०१)	,,	हस्तीमल जी सा० वाफना (स्व० पिता श्री केशरीमल जी की स्मृति मे)	ढीढस
५०१)	,,	गुप्त दान	
३०१)	,,	वस्तीमल जी मोहनलाल जी कोठारी	मजल
३०१)	,,	मगनीरामजी हसमुखलाल जी ववकी	लसाणी
२५१)	,,	भीखमचन्द जी पारसमल जी सालेचा	मजल
२५१)	,,	खीमराज जी केशरीमल जी सालेचा	मजल
२५१)	,,	गेंदालाल जी सा० पोरवाल	इन्दौर
२५१)	,,	मदनलाल जी सा० कीमती	इन्दौर
२५१)	,,	राजमल जी नन्दलाल जी मेहता (चेरेटी ट्रस्ट द्वारा प्राप्त)	
२५१)	,,	श्रीमती चम्पा वाई धर्मपत्नि लाला अमोलकचन्द जी के सुपुत्र सुभाषचन्द्र के विवाह उपलक्ष्य मे	इन्दौर
२५१)	,,	श्री स्थानकवासी जैन सघ	मन्दसौर
२५१)	,,	पुखराज जी मोहनलाल जी छाजेड	मालगढ
२५१)	,,	ओटरमल जी धीसूलाल जी छाजेड	मालगढ
२५१)	,,	भीमराज जी कपूरचन्द जी सकलेचा	रामा
२५१)	,,	फरसराम जी धन्नाजी सकलेचा	रामा
२०१)	,,	मगनीराम जी पारसमल जी सा०	राखी
२०१)	,,	स्व० श्री उमरावसिंह जी कानूनगो	हासी
२०१)	,,	हस्तीमल जी सा० कुमठ	पिपल्या मडी
१५१)	,,	वावूलाल जी इन्दरमल जी मारू	मल्हारगढ
१५१)	,,	भवरलाल जी शान्तिलाल जी धाकड	इन्दौर

१५१)	श्रीमान्	नाथूलाल जी रोशनलाल जी कछारा	कुवारिया
१५१)	,,	राजेन्द्रकुमार जी धाकड (स्व० पिता श्री तेजमल जी सा० की स्मृति मे)	इन्दौर
१५१)	,,	भगवतीलाल जी तातेड	डूगला
१५१)	,,	धन्नालाल जी मन्नालाल जी ठाकुरिया,	इन्दौर
१०१)	,,	अमरसिंह जी सा० चौधरी	मन्दसौर
१०१)	,,	चाँदमल जी सा० पामेचा	मन्दसौर
१०१)	,,	बाबूलाल जी ओस्तवाल	जावरा
१०१)	,,	सज्जनसिंह जी सा० मेहता	मन्दसौर
१०१)	,,	प्यारचन्द जी सा० राँका	सैलाना
१०१)	,,	भवंरलाल जी मदनलाल जी चोपडा	जावद
१०१)	,,	सुजानमल जी सोभागमल जी देशलहरा	इन्दौर
१०१)	,,	लाला अभयकुमार जी जैन	इन्दौर
१०१)	,,	भेरूलाल जी सा० सोनी	उज्जैन
१०१)	,,	भेरूलाल जी जैन	वडागाव
१०१)	,,	बनारसीदास जी सतीशचन्द जी जैन	दिल्ली
१०१)	,,	शिवलाल जी रामचन्द्र जी कर्नावट	गडई
१०१)	,,	गुप्त दान	खाचरोद
१०१)	,,	हुक्मीचन्द जी भटेवरा	इन्दौर
१०१)	,,	शान्तीलाल जी महेन्द्रकुमार जी बोरा	जामखेडा
१०१)	,,	माणकलाल जी सुभापचन्द जी गुदेचा	राजौरी

उदीयमान कवि, लेखक एवं वक्ता

श्री रमेश मुनि 'सिद्धान्त आचार्य'

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड : जीवन-दर्शन

पृष्ठ १ से ७४

१	ससार एक साधना स्थली	१	१४	दीक्षा साधना के पथ पर	३१
२	मातृभूमि मेवाड	५	१५	शास्त्रीय अध्ययन	३३
३	सतसेना	८	१६	गुरुवर्य की परिचर्या	३८
४	देवगढ़ मे दिव्यज्योति	११	१७	विहार और प्रचार	४२
५	शैशवकाल और मातृवियोग	१४	१८	दिल्ली का दिव्य चातुर्मास	४५
६	दिवाकर का दिव्य प्रकाश	१६	१९	कानपुर की ओर कदम	४६
७	महामारी का आतक	१८	२०	पावन चरणो से वग-विहार प्रात	४९
८	वैराग्य का उद्भव	२०	२१	कलकत्ते मे नव जागरण	५३
९	गुरुनन्द का साक्षात्कार	२२	२२	झरिया मे दीक्षोत्सव	५९
१०	पारिवारिक-परीक्षा	२४	२३	इन्दौर चातुर्मास . एक विहगावलोकन	६१
११	प्रतिज्ञा-प्रतिष्ठापक	२६	२४	मजलगाँव मे महान् उपकार	६५
१२	एक प्रेरक-प्रसग	२७	२५	शिष्य-प्रशिष्य परिचय	६८
१३	जैन दीक्षा माहात्म्य	२८	२६	गुरुदेव के अद्यप्रभृति चातुर्मास	७४

●

द्वितीय खण्ड : संस्मरण : शुभकामना : वन्दनाञ्जलियाँ

पृष्ठ ७५ से १३०

१	वाणी का प्रभाव	७५	६	हम न चोर न लुटेरे हैं	७९
२	जोडने की कला	७५	७	पैसा पास है क्या ?	८१
३	गुरुदेव के उत्तर ने	७६	८	मैं क्या भेंट करूँ ?	८१
४	सवल-प्रेरक	७८	९	सरलता भरा उत्तर	८३
५	क्या तुम्हें डर नही ?	७९	१०	जैसे को तैसा उत्तर	८४

११ भूले पथिक को राह ८४
१२ विरोध भी विनोद ८५
१३ भ्राति-निवारण ८६
१४ समय सूचकता ८८
१५ जादू भरा उपदेश ८९
१६ विरोधी को प्रिय बोध ९०
१७ भविष्यवाणी सिद्ध हुई ९१
१८ आक्षेप-निवारण ९१
१९ आग मे बाग ९२
२० विरोधी आप की तारीफ क्यो करते हैं ? ९३

● ●

अभिनन्दन : शुभकामनाएं

१ अभिनन्दन पत्र १ ९५
—बकानी श्री सघ
२ अभिनन्दन पत्र २ ९६
—ओसवाल जैन मित्र मडल, कानपुर,
३ आशीष-वचन ९६
—गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी म०
४ मेरी शुभ कामना ९८
—स्थविर मुनि रामनिवास जी म०
५ अभिनन्दनीय यह क्षण ९८
—प्रवर्तक मुनिश्री हीरालाल जी
६ सरल और सुलझे हुए संत ९९
—प्रवर्तक श्री अम्बालाल जी म०
७ मेरी मगल कामनाए ९९
— बहुश्रुत श्री मधुकर मुनि
८ हार्दिक मगल कामना ९९
—उपप्रवर्तक श्री मोहनमुनि जी म०
९ श्रद्धेय श्री प्रतापमल जी म० १००
—भगवती मुनि 'निर्मल'
१० प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व १०१
—मुनि श्री रमेश
११ अभिनन्दन पत्र १०५
—श्री जैन सघ, सैंथिया
१२ आदरणीय गुरु प्रवर १०७
—महासती विजयाकुमारी
१३ सत-जीवन १०८
—साध्वी कमलावती
१४ प्रताप की प्रतिभा १०८
—श्री लाभचन्द जी म०
१५ मेरे आराध्य देव १०९
-- श्री बसतीलाल जी म०
१६ विनम्र पुष्पाजलि ११०
—मुनि हस्तीमल जी म०
१७ प्रतापी-व्यक्तित्व १११
—मुनि प्रदीप कुमार जी
१८ गौरव-गाथा ११२
—श्री वीरेन्द्रमुनि जी
१९ ऐक्यता के प्रतीक ११२
—निर्मल कुमार लोढा
२० हार्दिक अभिनन्दन ११३
—मदन मुनि
२१ एक अपराजेय व्यक्तित्व ११४
—श्री मूलचन्द जी म०
२२ सार्वभौमिक सत ११४
—श्री अजीत मुनि 'निर्मल'
२३ प्रताप-गुणाष्टक ११७
—श्री उदयचन्द जी म०
२४ श्री प्रताप-प्रतिभा ११८
— मरुधरकेसरी प्रवर्तक मिश्रीमलजी म०
२५ प्रताप के प्रति ११८
—कविरत्न श्री चन्दनमुनि
२६ अभिनन्दन पचकम् ११७
—मुनि श्री महेन्द्रकुमार 'कमल'

२७ श्रद्धा के कुछ फूल —मुनिश्री कीर्तिचन्द जी १११
२८ श्रद्धा के सुमन —मगन मुनि 'रसिक' १२०
२९ पाच-सुमन —वसन्तकुमार वाफना १२०
३० गुरुगुण-पुष्प —श्री अभयमुनि जी १२१
३१ गुरु-भक्ति गीत —महासती प्रभावती जी —महासती सुशीलाकवर जी १२१
३२ प्रताप-गुण इक्कीसी —मुनि रमेश १२२
३३ वंदना हो स्वीकार ! —रग मुनिजी १२३
३४ गुरु-गुण गरिमा —अभय मुनिजी १२३
३५ वदनशत-शतवार —महासती विजयकुँवर जी १२४
३६ यशोगान —श्री राजेन्द्र मुनि ११४
३७ वन्दनाजलि-पचक —श्री सुरेशमुनि 'प्रियदर्शी' १२५
३८ मेरी वदना स्वीकार हो ! —विजय मुनि 'विशारद' १२६
३९ गुरु-गुण माला —नरेन्द्र मुनि 'विशारद' १२७
४० शत-शत वन्दना —श्री काति मुनि १२८
४१ महिमा अपार है —मुनि श्री मन्नालालजी १२८
४२ गुरु-महिमा —श्री प्रकाश मुनि १२९
४३ श्रद्धा से नत है —श्रीचन्द सुराना 'सरस' १३०

● ●

तृतीय खण्ड : प्रवचन-पंखुड़ियाँ पृष्ठ १३१ से १९६

१ जीने की कला १३१
२ सहयोग धर्म १३८
३ सयममय जीवन १४३
४ सच्चे मित्र की परख १४८
५ भगवान महावीर के चार सिद्धान्त १५३
६ मृत्यु जय कैसे वनें ? १५८
७ समदर्शन-माहात्म्य १६४
८ वैराग्य विशुद्धता की जननी १६९
९ पचनिधि माहात्म्य १७५
१० कर्म-प्रधान विश्वकरि राखा १८१
११ आचार और विचार-पक्ष १८८

● ●

चतुर्थ खण्ड : धर्म-दर्शन और संस्कृति

पृष्ठ १९७ से २५२

१ [illegible] १९७
— [illegible]

२ [illegible] २०[illegible]
— [illegible]

३ [illegible] २०६
— [illegible]

४ [illegible] २०९
— [illegible]

५ [illegible] २१३
— [illegible]

६ [illegible] २१७
— [illegible]

७ हमारी आचार्य परम्परा २२१
—श्री [illegible] जी महाराज

८ राजस्थानी री भक्ति-साहित्य २४०
—साहित्य वारिधि श्री अगरचन्द नाहटा

१० [illegible] और नारी २४७
—[illegible]कुमारी जैन

११ मेवाड़ [illegible] महासती २५०
—श्री [illegible] जी महाराज
—मदनलाल जैन

१२ [illegible] सुन्दर [illegible] २५२
—महासती [illegible] जी

जीवन दर्शन

संसार : एक साधना-स्थली

आधार और आधेय

इस अपार अवनि अचल मे निवास करनेवाले प्रत्येक जीवधारियो की अभिरुचियाँ भिन्न-भिन्न ही हुआ करती हैं। किसी को क्या पसन्द, तो किसी को क्या अभीष्ट लगता है। इसी तरह रग-रूप, रीति-रिवाज, रहन-सहन, धर्म-कर्म, एव मान्यता आदि मे भी अनेको प्रकार की विषमता पाई जाती है। कहा भी है—'**भिन्नरुचिर्लोकः**'।

कतिपय मानवो की मान्यता के अनुसार यह विराट् विश्व केवल असारता एव बुराइयो का अखाडा है, तो दूसरी धारा ससार को भलाई का भाजन अभिव्यक्त करती हुई उपादेय मानती है और तीसरी धारा के हिमायती गण भलाई-बुराई उभयात्मकरूपेण ससार का चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार विभिन्न मन्तव्यो का अजस्र प्रवाह चिरकाल से वहता चला आ रहा है।

कुछ भी हो, परन्तु इस अखिल वसन्धुरा प्रागण को साधनास्थली मान भी लिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। अर्थात्—जहाँ अनत-अनत साधक-समूह परिपक्व एव शुद्ध-विशुद्ध चिर साधना के तीक्ष्ण एव कठोर पथ पर अग्रसर होकर आधि-व्याधि-उपाधि त्रय तापो का अत कर सर्वोत्तम विदेह (मोक्ष) दशा को प्राप्त हुए हैं। जिसकी साक्षी मे चमकता एव दमकता अतीत का जीता जागता इतिहास पुकार रहा है।

जहाँ सर्वप्रथम भगवान् ऋषभदेव ने सम्यक् साधना के बल पर सर्वोपरि तत्वो को प्राप्त किया, जहा कपिल, पतजलि, कणाद एव गौतम ऋषि ने ज्ञान-साधना साधी, जहा जैमिनी ऋषि ने कर्म काण्ड की उपासना की, जहा व्यास ऋषि ने वेदान्तो का विस्तृत विश्लेषण-विवेचन प्रस्तुत किया, जहाँ पुरुषोत्तम राम न्याय, नीति एव सत्य-सेवा सुरक्षा हेतु घोरातिघोर मार्ग का अनुसरण कर जयवत हुए और जन-मन मे एक नई चेतना फूँकी, जहा योगीश्वर कृष्ण ने विभिन्न प्रकार की योगाराधना अराधी, जहा भ० वर्धमान ने जप-तप एव रत्न-त्रय की समीचीन साधना साधी और शुद्ध निरजन-निराकार अवस्था को प्राप्त हुए और जहा गौतम बुद्ध ने मध्यम मार्ग एव क्षणवाद की साधना करके, बौद्ध धर्म की नींव खडी की थी। इस प्रकार अगणित निर्ग्रन्थ परम्परा के और इतर यति-ऋषि एव साधक समूह अपनी-अपनी मान्यता श्रद्धा-भक्ति शक्त्यनुसार साधना-रत्नाकर मे अवगाहित हुए और करणी कथनी के अनुसार यथेष्ट फल को प्राप्त हुए हैं।

वर्तमान युग मे भी लाखो करोडो नर-नारी तो क्या, पर यह विराट विश्व ही रात-दिन एक लम्बी साधना के पथ पर द्रुतगति मे प्रयाण कर रहा है। हा, कोई देश समाज एव सघ-सेवा साधना मे तन्मय है, तो कोई इन्द्रिय-सुख-सुविधा साधना मे, कोई योगाभ्यास मे तल्लीन है तो कोई अर्थ उपासना मे तो कोई जमीन जायदाद की साधना मे दत्तचित्त है। परन्तु किसी न किसी रूप मे साधना साध रहे हैं। एक चोर लुटेरा-लफगा है, वह भी पहले कुछ न कुछ कला (साधना) का प्रशिक्षण ग्रहण करता है। तद-

न्तर कही किसी श्रीमत के यहा अपनी कला का परीक्षण भी करता है। परन्तु यह साधना, कुसाधना, ऐसी उपासना कुउपासना, ऐसी कला कुकला एव ऐसा लिंग कुलिंग माना गया है। बाह्य दिखावटी साधना से भले कुछ समय के लिए स्व-पर का मनोरजन हो जाय, किन्तु देव दुर्लभ यह देह अध पतन के गहरे गर्त मे अवश्य जा गिरता है। क्यो कि तत् (साधना) जनित कटु कठोर फल विपाक उस राही को भव भवा तर की भूल-भुलैया मे डाले बिना नहीं चूकते हैं। अतएव आर्थिक-भौतिक एव दिखावटी साधना की अपेक्षा आत्मचिंतन, स्व-पर भेद विज्ञान सर्वोदय एव रत्नत्रय की साधना-अन्वेषणा सर्वोत्तम-श्रेष्ठतम सर्वोपरि एव पवित्र प्रशस्त मानी गई है। यथा —

तिविहेण वियाण माहणे, आयहिते अणियाणा सवुडे ।
एव सिद्धा अणतसो, सपइ जे अणागया वरे ॥

—भगवान महावीर

हे साधक ! जो आत्महित के लिए एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय पर्यन्त प्राणी मात्र की मनसा-वाचा-कर्मणा हिंसा नही करते हैं और अपनी इन्द्रियो को विषय वासना की ओर घूमने नहीं देते है, बस इसी व्रत के पालन करते रहने से भूतकाल मे अनत जीव मोक्ष पहुँचे और वर्तमान मे जा रहे हैं इसी तरह भी जावेंगे।

इस प्रकार सर्व सुखाय-हिताय एव सर्वोदय भावना को चार विभागो मे विभक्त किया गया है —

विणए सुए य तवे, आयारे निच्च पडिया ।
अभिरामयति अप्पाण, जे भवति जिइन्दिया ॥

—दशवैकालिक

जो जितेन्द्रिय साधक है, वे विनय,, श्रुत, तप और आचार रूप साधना महोदधि मे अपनी आत्मा को सदा लगाए रहते हैं। वे ही सच्चे साधक हैं।

साधना का विस्तृत क्षेत्र

इस प्रकार साधनास्थली का क्षेत्र महामनीषियो ने पैंतालीसलाख योजन जितना विराट् विस्तृत व्यक्त किया है। किसी एक स्थान पर ही अर्थात् अमुक मदिर मस्जिद-मठ मे वा अमुक गुरु के पास ही साधना परिपक्व दशा को प्राप्त होती हो, ऐसा नही। साधना की आराधना, शून्यागार, श्मशान झाड-पहाड एव निर्जन वन-वाटिका आदि कही भी निर्दोष शात स्थान पर साधली जाती है। अर्थात् पैंतालीस लाख योजन के विशाल भू-भाग पर साधक साधना मे सफलता पा सकता है। भगवान् वर्द्धमान ने भी ऐसा ही अनुकूल क्षेत्र चुना था —जैसा कि—

कभी जगल उद्यान, कभी शून्य श्मशान,
शात एकान्त जगह मे ध्यान धर रहे।
मन अमल-विमल, तन मेरु सा अचल
नहीं परवाह करे दुख पीर की
यह कहानी है श्रमण महावीर की ·

— कविवर केवल मुनि

साधक के लिए सावधानी

परन्तु शर्त यह है कि साधक की इन्द्रिया और मन अपने स्थान पर हो, यदि त्रय योग स्व-धर्म से दूर है, तो वह साधक भले सगमरमर के मनोज्ञ मदिर मे तो क्या परन्तु तीर्थंकर प्रभु के अभिमुख बैठ-कर साधना कर रहा हो तो भी उसको इच्छित-अभीष्ट फल (साध्य) की उपलब्धि नही हो सकेगी। अत-एव डग-डग और पग-पग पर साधक को विवेक, सावधानी और दीर्घ दृष्टि रखना जरूरी है। अन्यथा "**लाभमिच्छतो मूलक्षतिरायाता**" अर्थात् लाभ की आशा मे मूल भी जाता रहेगा। ऐसी स्थिति यदा-कदा साधको की भी बन जाती है।

जहा ससार की चप्पा-चप्पा भूमि साधनास्थली है, वहाँ अगणित बिगाड़ू डुबोने वाले एव साधना मार्ग से स्खलित करने वाले नैमित्तिक तत्त्व भी विद्यमान है। जो उपादान (साधक) द्वारा की गई शत-सहस्र वर्षों की घोरातिघोर साधना को एक क्षण, एक पल मे भस्मीभूत कर देते हैं। एक दार्शनिक की भाषा मे—"मानव! तेरे द्वारा की गई सौ वर्षों की साधना सेवा पर एक मिनिट की बुराई-बदनामी, किया कराया गुड का गोबर कर देती है अतएव सदैव साधक को अपनी साधना सुरक्षा हेतु सजग सचेत रहना चाहिए। कहा भी है —

मुहुँ मुहुँ मोह गुणो जयत, अणेगरूवा समण चरतं।
फासा फुसती असमजस च, ण तेसु मिक्खु मणसा पउस्से॥

—भगवान महावीर

निरतर मोह गुणो को जीतते हुए सयम मे विचरण करने वाले साधको को अनेक प्रकार के प्रतिकूल विषय स्पर्श करते हैं। किन्तु साधक उन दुःखदायक विषयो की न कामना करें और उन पर राग-द्वेष भी न करें।

साधना का आराधक कौन ?

जो डरपोक और बुजदिलवाले मानव हैं वे प्रथम तो साधना के मैदान मे उतरते ही नही, यदि भुल-चूक के देखा-देखी कभी उतर भी गये, तो पुन थोडी सी कठिनता आने पर मैदान छोड भाग निक-लेते हैं। क्योकि उनका मन मस्तिष्क हमेशा सशकित कमजोर एव कायरता का किंकर बना रहता है। वे भीरु साधक सोचते हैं कि क्या पता! साधना सफल होगी या नही! क्या पता, फल मिलेगा या नही! क्या पता, स्वर्ग अपवर्ग है या नही? और क्या पता भविष्य मे पुन भोग-परिभोग मिलेगा कि नही? इस प्रकार शका के वशवर्ती बनकर शुभ शुद्ध प्रक्रिया प्रारम्भ ही नही कर पाते हैं। परन्तु जो धीर-वीर गभीर एव मजबूत मन वाले होते हैं—वे साधक हिमाचल की तरह अडोल एव श्रद्धा विश्वास मे सुमेरु की भाँति अविचल बनकर फलाभिलाषा मे विरक्त-विमुक्त रहते हुए और विघ्नघनो को चीरते-फाडते हुए कर्म (साधना) कूप मे कूद पडते हैं। केवल सम्यक् परिश्रम पुरुषार्थ एव उद्यम करना ही उनका एक मात्र चरम परम लक्ष्य रहता है।

अत सचमुच ही सच्चे एव निष्कामी वरिष्ठ आत्मयोगी साधको के लिए यह ससार एक साधना-स्थली अवश्य है। यदि ज्ञानी और गुणी नही होंगे तो ज्ञान और गुणो का निवास कैसे और कहा रहेगा? इसी तरह आधार (ससार स्थली) का सद्भाव रहेगा तो ही आधेय-साधक वृन्द भी कुछ काम अवश्य कर पायेंगे इसलिए साधनास्थली का भी काफी महत्त्व है। साधक वर्ग को चाहिए कि वे अपनी-

साधना मे दत्तचित्त रहे। ऐसा करने से अवश्यमेव यह आत्मा उस अनन्त ज्योति को प्राप्त कर सकेगी। कहा भी है —

जाए सद्धाए निक्खंतो, परियायट्ठाणमुत्तमं।
तमेव अणुपालिज्जा, गुणे आयरियसम्मए॥

—भगवान महावीर

हे जितेन्द्रिय! जो साधक जिस श्रद्धा से प्रधान प्रव्रज्या स्थान प्राप्त करने को माया मय काम रूप ससार से पृथक हुआ है, उसी शुद्ध भावना से जीवन पर्यन्त उस साधक को तीर्थंकर प्ररूपित गुणों मे रमण एव गुणो की वृद्धि करनी चाहिए।

यह जग मुसाफिर खाना है,
तन कुटिया न्यारी न्यारी है।
सभी हिलमिल कर धर्म कमाओ,
जाना सभी को अनिवारी है॥

मातृ-भूमि मेवाड़

मेवाड... . ! प्रकृति के सुरम्य वातावरण मे पलने वाला मेवाड !

जिसका जीवन सदा मृत्यु की मदमस्त जवानी पर मचलता रहा ! जिसका स्वाभिमान सदा तलवार व त्याग की तीक्ष्ण धार पर ही खिलवाड करता रहा ! जिसका वज्रहृदय, जो विकराल काल से टकरा कर टूट गया, पर झुक न सका !

किसी भी देश, राष्ट्र एव समाज का आदर्श उसके अतीत के इतिहास, विद्यमान सभ्यता, सस्कृति एव धार्मिक-सामाजिक रीति-रिवाजो के माध्यम से जाना जाता है।

मेवाड का भौगोलिक दर्शन

नि सदेह प्राकृतिक विपुल-वैभव से भरा-पूरा इस विशाल प्रात का अग-प्रत्यग अपने अद्वितीय सौन्दर्य का एक अनूठा ही आदर्श बता रहा है। जिसे देखकर प्रत्येक जीवधारी का मन बाग-बाग हो जाना स्वाभाविक है। विभिन्न प्रकार के वृक्षों की हरीतिमा से परिवेष्ठित पुण्यभूमि पर जल प्रपात की धवल धाराएँ किल्लोल करती हुई, उसके कण-कण मे अपना सौंदर्य बिखेर देती है। रवि-रश्मियाँ उस प्रवाहित जल राशि के आवरण मे छिपी हुई, धवल धरा का स्पर्श कर निहाल हो जाती है। आस-पास की भीमकाय पर्वत मालाएँ भी अपने गर्वोन्नत मस्तक उठाए उसकी सुरक्षा के लिए दुर्भेद्य-दुर्जय दीवार सी बनी हुई अपने कर्तव्य पालन मे पूर्णत-सतर्क है।

उसी सुरम्य-सुभव्य वातावरण मे पला हुआ मेवाड ! जिसे प्रकृति के पावन-पटल पर प्राकृतिक वैभव का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वही मेवाड समय २ पर विदेशी दस्युओ से अपने मान-सम्मान और धर्म की रक्षा के लिये निरतर बलिदान देने मे भी ससार के समक्ष अग्रणीय सिद्ध हुआ है।

मेवाडी वीर, जिन्होंने सदैव मृत्यु मे भी अपने को मुस्कराते देखा है। जिनका वीर हृदय मृत्यु की भयकर हुकार से भी डोलित-कपित नही हो सका। जिनका जीवन सदैव तलवार की धार पर ही अठखेलियाँ करता रहा। उसी मेवाड की धर्मपरायण वीरागनाए भी रणचडी की तरह समर भूमि मे उतर कर अनार्यों का दलन करती हुई हँसते २ अपनी मातृभूमि व शील की रक्षा के लिए मर्दों से पीछे नही रही हैं। जलती हुई जौहर की ज्वाला के बीच सपूर्ण शृगार करके अपने प्रियतम के पवित्र पद चिन्हो पर हसते २ जलकर भस्मीभूत हो जाती हैं।

इस प्रकार वीरभूमि मेवाड का अखण्ड गौरव यद्यपि अनेक विकट परिस्थितियो की सकीर्ण गली मे से अवश्य गुजरा है। तथापि स्वाभिमानता वीरता का मार्तण्ड तिरोहित न होकर अधिक चमका और दमका है।

मेरुवाड का मेवाड़

मेवाड भूमि का वास्तविक नाम 'मेरुवाड' था। मेरुवाड अर्थात् पर्वत ही जिसकी अभेद्य दीवार है। उसे मेरुवाड कहा जाता है। अपभ्र श बनकर 'मेवाड' रूढ बना है। दरअसल मेवाड प्रात का अधिक भू भाग उबड-खाबड एव छोटी-मोटी पर्वतावलियो से घिरा हुआ होने से जहाँ-तहाँ जल-स्थल की काफी विषमता-विचित्रता पाई जाती है।

नक्शे का प्रतिनिधि—एक पापड

प्राचीन एक दत कथानुसार एक समय एक अग्रेज-अधिकारी ने मेवाड राणा से अपने (मेवाड) प्रात का शीघ्र नक्शा मगवाया। तब मेधावी राणा महत्त्वाकाक्षी उस अग्रेज अधिकारी की भावना को भाप गये और नक्शे के बदले एक मक्का धान्य का बना हुआ पापड सिकवाकर भिजवा दिया। पापड को देखकर आग्लाधिकारी एकदम आग बबूला हो कर बोल उठा—'What is this ?" अरे ! यह क्या ?" मैंने पापड नही, नक्शा मगवाया था—देखने के लिए।"

तब आगतुक मेवाडी वीर ने उसे समझाया कि—साहेब ! जिस प्रकार यह पापड कही ऊँचा कही नीचा तो कही कुछ-कुछ सम जान पड रहा है, उसी प्रकार मेवाड देश भी जहाँ-तहाँ उतार-चढाव की विकट-वकट घाटियो से भरा है। बस, नरेश द्वारा पापड भेजने का यही मतलब है और नक्शा समझाने का सार भी यही है। नवीन रहस्य श्रवण कर आग्ल-अधिकारी खूब मुस्कराया और आगतुक महाशय की पीठ थपथपाई। वस्तुत यह बात समझते उसे देर भी नही लगी कि—इस प्रात को सही सलामत हजम करना एक टेडी खीर है। चूँकि-वीर धीर एव कठोर परिश्रमियो के खून से इस प्रदेश का सिंचन हुआ और हो रहा है। अतएव मेवाड-प्रात एक दृढ मजबूत और अभेद्य अजेय दुर्गवत् है।

धरा अचल मे विशाल परिवार

जहाँ-तहाँ कही-कही समतल मैदान पाया जाता है, वहाँ ओसवाल, पोरवाल, अग्रवाल, वीरवाल, राजपूत, मुस्लिम एव मीणा-आदिवासी आदि नानाविध जातियाँ, हजारो-लाखो मेवाड माता के सपूत अपने-अपने उद्योग धन्धो एव खेती की सुविधा-सुगमतानुसार वास किये हुए हैं। कृषि-कर्म-व्यापार एव पशु-पालन आदि-आदि मुख्य व्यवसाय हैं। पर्वतावलियो मे अभी-अभी कही-कही चादी-अभ्रक-लोहा-शीशा, ताम्बा एव कोयले आदि धातु उपलब्ध होने लगी है।

पर्वतो की कठिनाइयो के कारण एव विश्व-विख्यात राजपूती शौर्य की धाक के कारण बाहरी शत्रु सदैव पग रखने मे डरते रहे हैं। किन्तु गृह-क्लेश, गृह-युद्ध एव पारस्परिक विद्वेष-ईर्ष्या फूट-लूट-कूट की वजह से बाहर से मुस्लिम-सत्ता अवश्य आई। लेकिन ज्यादा टिक न सकी।

कर्मवीर-धर्मवीर की जन्मदातृ-मेवाड

जहाँ इस भूमि ने राणा प्रताप, महाराणा सागा, बापा रावल, जैसे अनेकानेक प्रणवीर-कर्मवीर नरवीरों को जन्म दिया है, तो दूसरी ओर इस पवित्र माता ने स्व० चरित्र चूडामणि पू० श्री खूबचन्द जी म० पू० श्री सहस्रमलजी म० पू० श्री गणेशलाल जी म० पू० श्री एकलिंगदास जी म० पू० श्री मानमलजी स्वामीजी म० प० प्र० श्री देवीलालजी म० तपस्वी माणक चन्दजी म० एव हमारे चिरायु चरित्रनायक 'गुरु प्रताप' आदि ऐसे शत-सहस्रो आध्यात्मिक सत-सती महा मनस्वियो को, भामाशाह जैसे कर्मठ श्रावक और मीरा एव पन्नाधाई जैसी निर्भीक उपासिकाओ को जन्म दिया है। जिन्होंने

मातृ-भूमि, धर्म-सस्कृति-सभ्यता एव पवित्र परम्परा की सुरक्षा के लिए पूरा-पूरा योगदान प्रदान किया और जननी के धवल-दुग्ध गौरव को शुद्ध-विशुद्ध रखा है। अतएव इस भूमि का कण-कण स्वदेश प्रेम-त्याग और वलिदान की अमर-अमिट यशोगान-गाथा से परिपूर्ण है। जिसके अन्तर-कक्ष मे वीरागनाओ के जौहर की अमर कहानियाँ लिखी हुई है। जो मेवाड-मा की वोलती हुई आत्मा है। जिसको भाग्य ने न जाने किस धातु का फौलादी कलेजा दिया है, जो टूट जाने पर भी दस्यु-परम्परा के समक्ष झुकता नही है। उसका स्वाभिमान, उसका सम्मान, त्याग और धर्मप्रेम विश्व के हर इतिहास मे अपना अनोखा ही महत्त्व रखता आया है। ऐसी समुज्ज्वल आत्माओ की जीती-जागती गुण गाथाएँ गा-गा कर आज हम भी गर्व से अपना सीना ऊँचा उठाते हैं।

आर्यसस्कृति का अनुगामी मेवाड

शुद्ध भारतीय सस्कृति के दर्शन हमे मेवाडवासी नर-नारी के जीवन मे मिलते हैं। प्रकृति के पवित्र पुजारी उन भद्र निवासियो मे वही भावुकता-वही श्रद्धा-सादगी एव वही सरलता-शिष्टता-मिष्टता आदि गुण प्रसन्नचित्त होकर प्रकृति मैया ने उनमे उण्डेल दिये हैं। अतएव वहाँ कृत्रिम जीवन एव दिखावटी दृश्यो का अभाव-सा है।

जहाँ आज का शहरी मानव विलासिता एव फैशन की चका-चौंध मे अपने से तथा अपनी शुद्ध-सस्कृति से दूर भागा जा रहा है। वहाँ मेवाड माता के लाडले अधिक रूपेण इस वीमारी से सर्वथा विमुक्त रहे हैं। उनके लिए तो वही सादी वेश-भूषा, वही सामान्य सादा खान-पान एव वही सादा-सीधा सस्ता रहन-सहन उपलब्ध है। जिसमे मेवाड के निवासी असीम आनन्द-अनुभूति के प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। ऐसी वास्तविक अनुभूति शहरी जीवन के नसीव मे कहाँ ?

ऊँची धोती ऊँची अंगरखी, सीधो सादो भेष।
रहवाने भगवान हमेशा, दीजो मेवाड देश॥"

मेवाडमाता सुधार चाहती है —

यद्यपि गुण अधिक पाये जाते हैं। तथापि जहाँ-तहाँ दुर्गुण एव निरर्थक रूढियो का साम्राज्य व्याप्त है। विद्या का काफी अभाव, अन्धा-अनुकरण, रूढिवादिता का अधिक रूप से आचरण, मृत्यु भोज, कन्या विक्रय एव लकीर के फकीर उपरोक्त चन्द वातो का समूल अन्त हो जाने पर मेवाड माता अवश्यमेव स्वर्ग सदृश्य ऋद्धि-सिद्धि एव समृद्धि से लहलहा उठेगी और प्रगति के पथ पर अग्रसर होगी।

कुछ भी हो, फिर भी मातृ भूमि का महत्त्व अकथनीय-अवर्णनीय ही माना गया है। जैसा कि—

"जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

जननी और जन्मभूमि का महत्त्व स्वर्ग से भी गुरु है। **पयसा कमल, कमलेन पय. पयसा कमलेन विभाति सर**—जैसे पानी से पकज, पकज से पानी और पानी-पकज द्वारा सुहावने सरोवर की सुषमा मे चार चाद लग जाते हैं। उसी प्रकार वह सपूत धन्य है, जिसको भाग्यशालिनी माता की पवित्र गोद मे आने का सौभाग्य मिला है, वह जननी भी धन्य हैं कि ऐसे पुत्र रत्नो को जन्म देकर सती माता कहलाती है। और वह मातृभूमि भी अधिकाधिक गौरवशालिनी व भाग्यशालिनी है कि—ऐसी जननी एव ऐसे धर्मवीर पुत्र रत्नो को यदा-कदा धारण किया करती है।—

न तत् स्वर्गेऽपि सौख्य स्याद् दिव्य स्पर्शेन शोभने।
कुस्थानेऽपि भवेत् पुंसा जन्मनो यत्र सभव॥ —पचतत्र

अर्थात्—साधारण एव रद्दी से रद्दी जन्म स्थली मे जीवधारी को एव पशु-पक्षी को जो सुखानुभूति होती है वह सुखानुभूति उन चमकेदार-भडकीले स्वर्गीय वैभव मे एव सुहाने स्पर्श मे कहाँ रही हुई है ?

● ●

सन्त-सेना

सेना के दो प्रकार

सेना के दो प्रकार माने गये है—एक सेना वह है जो अहर्निश ग्राम-नगर-शहर एव देश की सीमा पर तैनात रहती है। समय-समय पर बाहरी शत्रुओ के अत्याचारो-आक्रमणो से देशीय-प्रान्तीय जनता को सावधान एव सचेत किया करती है। स्वयमेव सर्दी-गर्मी-क्षुधा-पिपासा आदि नानाविध कठिनाइयो को झेल कर भी देश के जन-धन एव गौरव की रक्षा करती है। फलस्वरूप देशवासी मानव सुगमता-निर्भयता पूर्वक अपने अपने रीतिरिवाज, धर्म-कर्म एव आचार व्यवहार का पालन-पोषण करने मे सफल होते हैं।

बाहरी दुश्मन स्वदेश मे न घुस आए, इस भावना-कामना को आगे रखकर आज हजारो लाखो भारतीय सैनिक देश सीमा के इस छोर मे उस छोर तक निडर प्रहरी के रूप मे खडे है। चर-अचर सम्पत्ति की रक्षा करना, देश, समाज, सस्कृति एव प्रत्येक देशवासी नागरिक के प्रति वफादार-ईमानदार रहना ही इस सेना के मौलिक कर्तव्य माने गये हैं सिद्धान्त मे कथित—"**हयाणीय, गयाणीय, रहाणीय, पायत्ताणीय**' इन चार प्रकार की सेना का समावेश भी उपरोक्त सेना मे हो हो जाता है।

सत बनाम सैनिक

दूसरे प्रकार के सैनिक वे है—जो सम्यक् साधना के पवित्र पथ पर पर्यटन करते हुए भीतरी शत्रुओ मे लोहा लेते हैं एव प्रत्येक नर नारी को आन्तरिक रिपुओ से सजग रहने का सकेत भी करते हैं। क्योंकि भीतरी शत्रु भयकर अति भयकर माने गये हैं। एक वक्त स्व० नेहरू ने भी अपने मुख से कहा था कि—"**हमें बाहरी शत्रुओं से उतना भय नहीं, जितना कि भीतरी दुश्मनो से है**' बात बिल्कुल ठीक है। बाहरी शत्रु तो केवल धन-धरती-धाम अथवा जान पर धावा बोलते है, परन्तु भीतरी अरि तो रत्न त्रय धन के साथ-साथ अनेक भवो तक दुख कूप दुर्गति के मेहमान भी बना जाते हैं। वे शत्रु हैं—क्रोध मान-माया-लोभ-राग और द्वेष। इनको षडरिपु भी कहते है। मानव समाज जागरूक किंवा सुप्तावस्था मे हो, किन्तु ये षडरिपु इतने निष्ठुर है कि—एक क्षण का भी प्रमाद किये बिना अनवरतगत्या मानव के उन अतुलित अनुपम निधि का सत्यानाश किया करते हैं। अतएव इस प्रकार के अनिष्टकारी आक्रमणो की रोक थाम के लिये सत सेना एक अनोखा आदर्श भरा कार्य करती हुई, इस हानि से जनता को बचाने का पूर्णत प्रयत्न करती है —यथा —

कोहो पीइ पणासेइ, माणो विणय नासणो।
माया मित्ताणि नासेई, लोभो सव्व विणासणो॥

मुमुक्षु! "क्रोध प्रीति का, मान विनय का, माया मित्रता का और लोभ सर्व सद्गणो का नाशक एव घातक माना गया है।"

सन्त : ज्योतिस्वरूप

सन्त सेना का महा महत्त्व इस प्रकार सर्व दर्शनो मे खूब दर्शाया गया एव मुक्त कठ से गाया भी गया है। क्यो कि सत का जीवन अहिंसा, सयम एव तप की त्रिपुटी मे प्रस्फुटित-पल्लवित-पुष्पित एव फल्लवित होकर सर्वोच्चमुखी विकास का यह क्रम समाज, राष्ट्र एव जन-जन के हृदय मन्दिर को छूता हुआ सिद्धस्थान पर्यन्त पहुचा है। उनका उपदेश सुमेरु की तरह अटल, हिमाचल की तरह विराट, भास्कर की तरह तेजस्वी-यशस्वी-तिमिरहर्ता शशिवत् पीयूप वर्षणकर्त्ता, सुरुतरु-सदृश सकल सकल्पो का पूरक, विद्युत की तरह ज्योतिर्मान, सलिल की तरह सदैव गतिमान एव आकाश की तरह अनादि अनन्त रहा है। इसलिए कहा है —

"सन्त हैं कलयुग के भगवान"

जव से मानव ने होश सभाला तभी से उसने यदि किसी पर विश्वास किया है, तो केवल अपने माता-पिता या फिर सत प्रवर पर ही। सारा ससार कदाच धोखा दे सकता है, गिरगिट जानवर की तरह क्षण-क्षण मे रग वदल सकता है, किन्तु सत नही। क्योकि सत तारक है मारक नही, सत रक्षक है भक्षक नही, सत अमृत थैली है न कि विप वेली। इसलिए अनन्त अनन्त मुमुक्षु सत वाणी के वल वूते पर गृहत्यागी, राजत्यागी वनें और अन्ततोगत्वा परमानन्द को प्राप्त हुए हैं। यत्किचित् शब्दो मे कहू तो धर्म जहाज के नाविक सन्त वरिष्ठ है और भव्यात्माओ को ससार पार पहुचाने के निमित्त भूत भी है। जैसे भगवान महावीर ने गौतम को और सुधर्मा स्वामी ने जम्बू को उतारा। अतएव मानव समाज के श्रद्धा के केन्द्र सत माने गये हैं।

सत एक सीमा रक्षक (वाड़) हैं

खेत मे स्थित हरी-भरी एव फली-फूली उस धान्य राशि की सुरक्षा हेतु जैसे उस खेत के चारो तरफ वाड रहती है, उसी प्रकार धर्म की रक्षा हेतु सत सेना भी एक प्रवल सवल वाड है, सीमा रक्षक है। क्योकि जहा-जहा सत मण्डली का शुभागमन वना रहता है, वहा वहा प्राय दुर्भिक्ष-दुर्जन-दुर्ग्रह एव दुर्गुणो का प्रभाव-फैलाव मद-सा, किंवा नगण्य ही रहता है। भगवती सूत्र मे एक ऐसा प्रसग भी आया है कि एक समय गणधर इन्द्रभूति ने भगवान से पूछा कि—"भन्ते! लवण समुद्र मे विपुल अथाह जल राशि विद्यमान् है, फिर क्या कारण कि अध स्थित इस जम्बू द्वीप को डुवो नही पाता एव अपने जल की उत्ताल लहरो को क्यो नही वाहर फैंकता है।" भगवान ने कहा—"गौतम! ऐसा प्रयोग कभी हुआ नही, न होने वाला ही है।"

"क्यो नही भन्ते ?—गौतम वोले।"

भगवान—"इन्द्रभूति! इस विशाल खण्ड जम्बूद्वीप मे अरिहत, केवली, गणधर, लब्धि-धारक, वहुश्रुत अनेकानेक, त्यागी-तपस्वी, यशस्वी, सत-सती, श्रावक एव श्राविकाए निवास करते हैं। उनके अद्वितीय अनुपम जप-तप तेज प्रभाव से लवणोदधि अपनी मर्यादा का भग नही करता और न कभी करेंगे ही।" यह है सत वोरडर (वाड) का प्रवल एव अकाट्य प्रमाण। जो अन्यत्र दुर्लभ है।

सत गले का भार नहीं हार

इस प्रगति के प्रकाश मे कतिपय मानवो को विपरीत भास होने लगा है। वे कहते हैं—"ये सत-फत मुफ्त का माल खाकर वेकार पड़े रहते हैं, उद्देश्य विहीन इतस्ततः घुमा-फिरा करते है और

स्वर्ग अपवर्ग की लम्बी लम्बी गप्पें-सप्पें लगाते रहते हैं। अतएव इन लोगो से कडा परिश्रम करवाना चाहिए। अन्यथा यह साधु-सस्था देश समाज एव परिवार पर भारभूत और बोझ स्वरुप हैं।"

निःसन्देह ऐसी भ्रात मान्यतावाले मानव विपन्नता से भी ज्यादा खतरनाक हैं। चूकि मिथ्या मान्यता के किंकर वे नर-नारी अपने हाथो से ही अपनी उज्ज्वल सस्कृति, धर्म एव प्राचीन शुद्ध परम्परा को पगु-लुली-लगडी एव अन्धी बनाना चाहते हैं। अफसोस! जो वस्तु, जो तत्त्व डुबोने वाले, व उभय लोक के लिए अनिष्टकारी एव हानिकारक है, उनसे तो अत्यधिक मोहब्बत-प्रेम और जो तत्त्व जीवनोत्थान के लिए एकदम ठीक दिशा-दर्शन देते हैं, उनसे नफरत! घृणा और अवहेलना भरी दृष्टि! इसी को तो कहते हैं मिथ्या ज्ञान का भास होना।

श्रमण शब्द श्रम का द्योतक

सत का पर्यायवाची शब्द "श्रमण" भी है। यह श्रमण शब्द परिश्रम का द्योतक है। अर्थात जो निरन्तर श्रम, महनत, उद्यम करता है, उन्हें भले श्रमण कहो, भले साधु-सन्त कहो फिर ये फालतू-बेकार और आलसी कैसे? मालूम होता है कि-मानव अभी तक "श्रम" के सही सत्य अर्थ की तह तक नही पहुचा है। अतएव सत धर्मवृक्ष के बीज स्वरूप, एव आर्य सस्कृति को शुभालकृत करने वाले चमकते दमकते हार हैं।

जहाँ तक सत सेना की मदाकिनी मथर गति से मद-मद बहती रहेगी, वहाँ तक देश समाज मे सत्य-सयम शील की उपासना चलती रहेगी। आस्तिकवाद एव शुद्ध परम्परा के नगाड़े गूजते रहेगे। और करुणा की कोमल कमनीय धारा फूटती रहेगी।

अतएव सत जीवन का व्यक्तित्व बहुमुखी रहा है। तुच्छ एव महान के लिये सर्वथा अनुकरणीय एव स्तुत्य है। मानव रत्न त्रय के चेतन्य स्वरूप सत सरोवर मे डुबकी लगाकर सुकृत्य की विमल विशद एव वरिष्ट-वीथिका के शिखर पर पहुचकर जीवोत्थान की प्रेरणा सीखता है।

है बडी शक्ति बडा बल,
सत वचन सतसग मे।
रगने वाला हो तो रग दे,
सब को एक ही रग मे॥

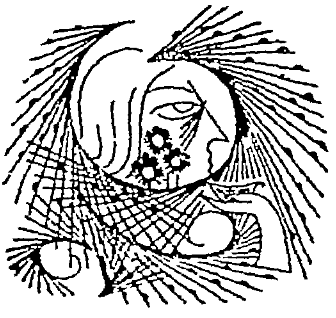

देवगढ़ में दिव्य ज्योति

अरावली के अचल मे छोटे-मोटे सैंकडो गाव-नगर-शहर वसे हुए हैं। जिनमे लाखो नर-नारियो का एक विराट् मानव—परिवार फलता-फूलता रहा है। "देवगढ" भी मेवाड (मदारिया) प्रान्त का एक नन्हा सा नगर माना गया है। जिसमे हजारो जनो की आवादी एव सैंकडो जैन परिवार भी सम्मिलित है। यह नगर किसी समय प्रसिद्धि प्रगति के शिखर पर चढा हुआ था। जिसकी गवाह वहाँ का जीर्ण-शीर्ण राज्य-महल; वहाँ की प्राचीन सस्कृति एव वहाँ के टूटे-फूटे खण्डहर मूक भाषा मे वता रहे हैं।

देवगढ की व्युत्पत्ति

"देवगढ" इस नाम मे एक विशेपता, एक पवित्र परम्परा एव हृदयस्पर्शी प्रेरणा का स्रोत निहित है। तभी तो यहाँ के निवासीगण आर्य सम्यता-अनुगामी, उपासक एव उच्च आचार-विचार व्यवहार की त्रिवेणी से ओत-प्रोत रहे और हैं।

'देवगढ' की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—"देवानाम् गढ-इति—देवगढ"। अर्थात् जहाँ अधिक रूपेण देवता ही रहते हो। उसे देवगढ के नाम से पुकारा जाता है। क्या वहाँ देवता रहते हैं ? अवश्यमेव। शास्त्रों में पाच प्रकार के देव माने गये हैं। जिनमे "भवी द्रव्यदेव" ऐसा एक नाम भी आया है। जिसका अर्थ यह है कि—जो आत्माएँ अभी हाल मानव किंवा तिर्यग् योनि मे वैठी हुई है। किन्तु शुभ करणी कर भविष्य मे देवलोक मे उत्पन्न होने वाली है।

जैसे देववृन्द आयु प्रभाव, सुख, क्रान्ति एव लेश्या-विशुद्धि के विषय मे ऊपर-ऊपर के देव अधिक और गति-शरीर-परिग्रह व अभिमान के विपयो मे उत्तरोत्तर देव हीन माने गये हैं। उसी प्रकार भोली-भद्र सयमनिष्ठ एव प्रतिभा सम्पन्न जिन्दी जीत्ती सैंकडो विभूतियाँ उस नगर मे थी और आज भी हैं। सचमुच ही जो जिनशासन के रक्षक एव निडर प्रहरी के रूप मे रहे हैं। अतएव देवताओ से भी कई गुणित अधिक सौभाग्यशाली उन्हे समझना चाहिए। क्योकि-जिनको पुण्य की महत्ती कृपा से आर्यक्षेत्र-उत्तमकुल, और निर्मल निर्ग्रन्थ परम्परा का सुयोग प्राप्त हुआ है। जो सुर-असुर समूह के लिए सचमुच ही दुष्प्राप्य माना गया है।

देवगढ के ठग

प्राचीनकाल से 'देवगढ के ठग' यह कहावत प्रचलित है। वास्तविक-दृष्टि की तुला पर ठीक जचती है। जैसे क्रोध मान माया-लोभ आदि कषाय, मुमुक्षु के महान मूल्यवान रत्न त्रय को लूटा करते हैं। इस कारण उपरोक्त भाव शत्रुओ को भी धार्मिक दृष्टि से ठग (तरस्कर) ही माने गये हैं और तप-जप-दान-दया-दमन एव शुद्ध क्रियाओ द्वारा इन छद्मो को परास्त से करने वाले अर्थात्—"ठग ठगो के पाहुने" ही माने जाते हैं। अतएव देवगढ के नागरिक जनको अगर ठग की उपाधि से उपमित किया जाता है, तो अति प्रसन्नता की ही वात है।

गांधी गोत्र की उत्पत्ति

भाटो की विरदावली से पता चलता है कि जालोर शहर मारवाड के चौहान वशीय राजा लाखण सी से भण्डरी और गाधी-मेहता वशो की उत्पत्ति हुई है। लाखणसी जी के ११ वी पीढी वाद पोपसी जी हुए। वे अपने समय के आयुर्वेद के विख्यात ज्ञाता थे। कहा जाता है कि—उन्होने सवत् १३३८ मे जालोर के रावल सावतसिह जी को एक असाध्य व्याधि से मुक्त किया। उक्त रावलजी ने प्रसन्न होकर उन्हे "गाधी" की महान् उपाधि से विभूपित किया।"

(ओसवाल जाति का इतिहास मे से उद्धृत)

सच्ची गृहिणी घर का शृ गार—

इसी नगर मे श्रीमान् 'मोडीराम जी' गाधी तथा आपकी धर्म पत्नी श्रीमती 'दाखावाई' सुख पूर्वक दाम्पत्य जीवन यापन कर रहे थे। उनका यह ससार पति धर्म, पत्नी धर्म एव पारिवारिक धर्म को लेकर वास्तविक मर्यादा का पालन तथा धर्म-स्नेह, सौजन्यता एव चैतन्य का जिन्दा-जागता-गू जता सुभव्य मन्दिर था। जैसा कि—"जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना" भले इस दाम्पत्य जीवन मे पार्थिव धन राशि विपुल मात्रा मे न रही हो। परन्तु भावात्मक सम्पत्ति का इस घर मे साम्राज्य छाया हुआ था—जैसा कि

जहाँ पति पत्नी दोनो, मिलके रहते हैं।
वहाँ झरने सदा ससार मे, खुशी के वहते हैं॥

सच्ची गृहिणी वही है—जो सन्तोप, क्षमा एव सरलता-समता गुण की अनुगामिनी हो। पति द्वारा उपार्जित अल्प धन-धान्य मे ही समता पूर्वक घरेलू कारोवार को चलाती हो, शिष्ट-मिष्ट भापिनी एव आजू-वाजू के वायुमडल को सदा-सर्वदा सुखद शान्त सरस-सुन्दर वनाए रखती हो। फैशन शृ गार-मौज-शौक की कठपुतली न हो। समय-समय पर पति परमेश्वर को नेक सलाह देती हो व धार्मिक आदि शुभ प्रवृत्ति मे सदैव पति की सहयोगिनी वनकर रहती हो। इस प्रकार अनेकानेक गुण-रत्नो से युक्त गृहिणी को ही घर की "लक्ष्मी" यह सुन्दर सज्ञा दी गई है। सौभाग्यवती दाखावाई भी सचमुच ही सौभाग्यशालिनी थी। जिनका जीवन धन निम्न गुण-गरिमा-महिमा से दमक चमक रहा था—

कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी, भोज्येषु माता शयनेषु रभा।
धर्मानुकूला क्षमया धरीत्री, षड्गुणवती भार्याश्च दुर्लभा॥"

पुण्यात्मा के शुभ चिन्ह—

कुछ कालान्तर के वाद माता दाखावाई के मन मधुवन मे उत्तमोत्तम भावना के कोमल-कमनीय किसलय खिलने लगे—धर्म-ध्यान-दान-दया सामायिक-प्रतिक्रमण अभयदान एव मुनि-महासती का दर्शन कर जीवन को धन्य वनाऊँ आदि उपरोक्त ये सव चिन्ह मानो उत्तम भाग्यशाली आत्मा स्वर्गात् उदर मे आई हो, इस वात की शुभ सूचना दे रहे थे। कहा भी है—

'पुन्यवान गर्भ मे आवे, माता ने लड्डू जलेवी खिलावे।
साधु-सतियो की सेवा चावे, नित उठने धर्म कमावे॥'

और भी—"Coming events Cast their Shadowj before"

अर्थात्—भावी घटनाओ की प्रतिच्छाया पहिले से ही दृष्टिगोचर हो जाती है। क्योकि जैसी आत्मा पेट मे आती है, वैसे विचार माता की मन रूपी प्रयोगशाला मे उभरते-उठते रहते हैं। तभी तो कहा है—"पूत के पग पालने मे क्या पेट मे ही दीख पडते हैं।" येन-केन प्रकारेण भावना सम्पन्न हुई और वह शुभ दिन भी सन्निकट आ खडा हुआ। अर्थात् सुहावनी शरद की आश्विन कृष्णा सप्तमी सवत् १९६५ की रात्रि मे महापुण्यशाली प्रतापी एक पुत्र रत्न का शुभागमन हुआ। जिसका नाम "प्रताप चन्द्र" रखा गया।

शैशवकाल और मातृवियोग

वाला किड्डा य मदा य वला पन्ना य हायणी ।
पवच्चा पभारा य, मुम्मुही सायणी तहा ।।

—भगवान महावीर

जिज्ञासुवृन्द ! मानव-शरीर की दस अवस्थाएँ है—प्रथम वालावस्था, दूसरी क्रीडावस्था, तीसरी मन्दावस्था, चौथी वलावस्था, पाचवी प्रज्ञावस्था, छठी हायनी (हीन) अवस्था, मातवी प्रवचावस्था, आठवी प्राग्भारा, नौवी मुखमुखी एव दशवी अवस्था शायनी मानी गई है ।

वचपन का आनन्द —

इस प्रकार प्रथम वाल्यावस्था वह अवस्था मानी गई है, जिसमे न कमाने की, न लेन-देन एव न उद्योग-धधे की चिन्ता सताती है । आकुलता-व्याकुलता एव शोक का वोझ भी सिर पर नही रहता है । जीवन मे सुख शान्ति आनन्द-उल्लास हर्ष का पूर्णत साम्राज्य छाया रहता है । छल-प्रपच माया आदि छद्मो का नितान्त अभाव सा रहता है । ऐसा भी माना जाता है कि—योगी का जीवन और वालक का ज्योतिर्मय जीवन एक समान माना गया है । मानव जिस समय योगावस्था मे प्रवेश करता है, उस समय शुद्ध निर्मल-निष्पाप वालक सा प्रतीत होता है । उसमे कृत्रिमता एव वनावटीपन नहीं रहता है । सव दृष्टि से सरल, शुद्ध एव प्रशस्त पवित्र जीवन रहता है । ऐसे महान् सुलझे हुए जीवन पर आत्मोत्थान की सुभव्य-सुदृढ इमारत खडी की जाती है ।

वसत और पतझर —

इस प्रकार वालक प्रताप का जीवन पुष्प भी गुण-सौरभ से महक रहा था । अति लघु-अवस्था मे अनेक गुणो को अपना लेना, समझदारी भरी वार्ते करना, अन्य को समझाना एव हिताहित का कुछ अशो मे भान हो जाना, सचमुच ही महानता की निशानी थी । इसलिए कहा है—"**होनहार विरवान के होत चीकने पात**"

हा तो वीर प्रताप के जीवन-उद्यान मे वाल्यकाल की हरी-भरी सुहावनी मन्द-मन्द मधु ऋतु मुस्कराई अवश्य । किन्तु कुछ ही वर्षो मे दुख वियोग-रोग का पतझर आ खडा हुआ । अर्थात् छ वर्ष की अति लघुवय मे ही ममता मय माता दाखा के स्नेह स्रोत से वचित होना पडा ।

छुटपन मे माता का लाड-प्यार एव स्नेह मय वरद हस्त उठ जाना कितना कष्टप्रद है । यह तो भुक्त भोगी ही जान सकता एव वता सकता है । एक दार्शनिक की भाषा मे परिस्थितिया मानव जीवन के निर्माण मे सहायक वनती है और भावी जीवन की परिस्थितियां भी वैसी ही वन पडती है । अतएव मातृ-वियोग का प्रसग ही वीर प्रताप के हृदयागन मे वैराग्य के अकुर पैदा करने मे निमित्त भूत वना । मानो ऐसा लगता था कि—प्रवल ममता पाश से छुटकारा दिलाने के लिए, स्वय विधि (भाग्य) ने ही वालक के लिए वैराग्य की प्रशस्त पृष्ठ भूमि तैयार की हो ।

माता के देहावसान से बालक प्रताप को भारी धक्का लगा। नित्य प्रति खोया-खोया सा रहने लगा। मानो कालक्रूर ने सर्वस्व लूट लिया हो। "मुझे छोड के बाई (माता) कहाँ गई ? कब आएगी ?" इस प्रकार बाई को ढूढने के लिए विह्वल बना बालक प्रताप यदा-कदा कमरे मे, तो कभी ऊपर तो कभी बाडे मे, तो कभी कुएँ-तालाब पर जाता, तो यदा-कदा पोला-पडशाल और कभी शयन खाट की शैय्या को उलट-पुलट करता, फिर निराश बनकर पिताजी को कोसता,—"बाई को जल्दी बुला दो, कठे हैं, मुझे मिलादो।"

पिता जी का समझाना पुत्र को.—

तब अत्यधिक परेशान होकर सेठजी यही कहते थे कि—"बेटा ! बहुत दिन हो गये है। तेरी अम्मा अभो तक भगवान के घर से आई नही, अब पत्र देकर जल्दी बुला लेंगे। तुम चुप हो जाओ, रोवो मत और आराम से रोटी खाओ और खेलो।"

भद्र शिशु की कारुणिक दशा एव भोली-भाली भावना को सामने देखकर पिता का पत्थर हृदय भी वियोग वेदना से आर्द्र हो उठा। बालक को मा की छाया मिले, लाड-प्यार मिले और घरेलू कारोबार को भी सभालकर रख सकें क्योकि कहा भी है कि—"घर किसका ?" उत्तर मिला—"घर वाली का।" गृहिणी बिना वह घर, घर नही, एक प्रकार श्मशान सा भयावना-डरावना प्रतिभासित होता है। अतएव कहा भी है कि—**"यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमते तत्र देवता.।"** अर्थात्—नारी जीवन की प्रतिष्ठा-पूजा को सुनकर देवता भो खुशी के मारे बाग-बाग हो जाते हैं। इस दृष्टिकोण से श्रेष्ठी मोडी-रामजी गाधी ने दुबारा विवाह करने का बिल्कुल पक्का निश्चय कर लिया।

जननी बिन इस जगत मे, नहीं कोई आधार।
जननी है जीवन रक्षणी, रखे बाल की सार॥

दिवाकर का दिव्य प्रकाश

तम का प्रतिद्वन्द्वी :

"दिवा" यह अव्यय है। और दिवा शब्द के आगे 'कर' शब्द जोड देने पर "दिवाकर" शब्द बना है। फलस्वरूप ससार के विस्तृत अचल मे व्याप्त अधकार की इति श्री कर, जो यत्र-तत्र सर्वत्र प्रकाश से परिपूर्ण सहस्र रश्मियो को छोडता है उसे दिवाकर नाम से पुकारा जाता है। वस्तुत मानव समाज उन्मार्ग का अनुसरण त्याग कर सही दिशा की अनुगमिनी बनती है।

चमत्कार को नमस्कार.—

दिवाकर की तरह अनेक शिष्य नक्षत्रो से सुभासित सुशोभित एक मत-शिरोमणि भी उस समय मालवा, मेवाड, मारवाड मे पर्यटन कर रहे थे। जिनकी पीयूष भरी वाणी मे जादू, बोली मे अमृत, चमकते चेहरे पर मधुर-मुस्कान, विशाल अक्षिकाएँ लम्बी लटकती हुई सुलक्षणीय भुजाएँ, गौर वर्ण एव मन मोहक गज-गति चाल। जिनकी ज्ञान-ध्यान साधना के समक्ष अन्य सत-पथ-मत जुगुनुवत् फीके एव प्रभावहीन। जिनके अहिसामय उपदेशो का प्रभाव राज-प्रासादो से लेकर एक टूटी-फूटी कुटिया तक एव राजा से रक पर्यंत और साहूकार से चोर पर्यन्त व्याप्त था। जिन्होने सैंकडो मानवो को सच्ची मानवता का पाठ पढाया, यथार्थ अहिसा-सत्य-स्याद्वाद का सवक सिखाया, भूले-भटके राहगीरो को सही दिशा-दर्शन दिया, जन-जीवन मे जिन धर्म का स्वर बुलद किया, छिद्ध-भिद्ध डोलित सामाजिक वातावरण मे स्नेह-सगठन का सुमधुर उद्‌घोष फूका और जैन जगत मे नई स्फूर्ति, नई चेतना जागृत की। जिनके द्वारा स्थानकवासी जैन समाज को ही नही, अपितु अखिल जैन समाज को ज्ञान-प्रकाश, नूतन साहित्य, प्रेम एव मैत्री भावना की अपूर्व, प्रबल-प्रेरणा प्राप्त हुई थी। वे थे एकता के सस्थापक जैन जगत के वल्लभ स्व० दिवाकर गुरु प्रवर श्री "चौथमलजी महाराज।"

ऐसे सच्चे साधक दिवाकर श्री चौथमलजी म० मिथ्यान्धकार को चीरते-फाडते योगानुयोग मेवाडी नर-नारी को रत्नत्रय से आलोकित करते हुए, भूखे-प्यासे पिपासुओ को आत्मिक पक्वान परोसते हुए, प्रेमामृत पिलाते हुए, अहिसा सत्य का सचोट उपदेश सुनाते हुए, साम्प्रदायिक परतो से विमुक्त करते हुए एव स्नेह एकता का नारा बुलन्द करते हुए देवगढ़ पधारे।

दिवाकर-देशना का प्रभाव —

जैन-अजैन सैंकडो जन समूह "चौथमलजी महाराज पधार रहे हैं" यह शुभ सूचना सुनते ही—**"धाये धाम काम सब त्यागे, मनहु रक निधि लूटन लागे"** की तरह यो के त्यो स्वागतार्थ भाग खडे हुए। मध्य बाजार के विशाल मैदान मे व्याख्यान होने लगे। जन-मेदिनी उत्तरोत्तर बढ ही रही थी। जन-मानस को झकझोरने वाली वाणी के प्रभाव से आशातीत त्याग-प्रत्याख्यान हुए एव शासन की प्रभावना भी काफी हुई। येन-केन-प्रकारेण पुन विवाह करने की मान्यवर गाधी जी के विचारो की गध गुरुदेव के कर्ण-कुहरो तक पहुँच ही गई। तब दिवाकर जी म० ने सेठ मोडीराम जी को

दूसरा लग्न करने से रोका और फरमाया कि "आप सभी पिता-पुत्र अर्थात् बालक प्रताप और अन्य दो भाई आर्हती दीक्षा लेकर जैनधर्म की सेवा करते हुए आत्मकल्याण का प्रशस्त मार्ग स्वीकार करें।"

धर्म परायण आज्ञाकारी विनीत गृहस्थ गाधीजी ने गुरु प्रवर के अचरजकारी आदेश का यथावत् पालन करने का उपस्थित जनसमूह को आश्वासन दिया और एकदम विचारो मे परिवर्तन लाते ही वही के वहो चतुर्थव्रत धारण करते हुए बोले कि "मेरे लघु पुत्र प्रताप के समझदार हो जाने पर हम सभी यानि चारो सदस्य आप देवानुप्रिय के समीप दीक्षित हो जायेंगे।"

दुनियां के लिए आश्चर्य का विषय

उपस्थित जन समुदाय भी उनकी इस आकस्मिक उद्घोषणा को श्रवणगतकर चकित-विस्मित एव आश्चर्यान्वित सा रह गया। धन्यवाद की मधुर शब्दावली से सारा व्याख्यान मडप गूज उठा। जो व्यक्ति एक दिन के पहिले मौड बाधकर विवाह करने का सुमधुर स्वप्न देख रहा था। वही मानव दूसरे ही दिन जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण करने की घोषणा कर दें। सचमुच ही प्रत्यक्ष यह चमत्कार त्यागी, तपस्वी श्रमण परम्परा का रहा है। जिनके उपदेशो मे सचमुच ही जादू भरा है।

गगा पाप शशि ताप, दैन्य कल्पतरुस्तथा।
पाप-ताप दैन्य च, सद्य साधुसमागम.॥

●●

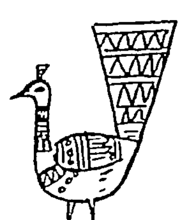

महामारी का आतंक

चहुँ ओर से मौत का धावा :—

एक अग्रेज विद्वान की भाषा मे—-

'A man Proposes God disposes" अर्थात् मानव अपने मन-मस्तिष्क मे कुछ और सोचता है और बनता कुछ और ही है। विधि को 'दीक्षा प्रतिज्ञा' ना मजूर थी। अतएव विक्रम सवत् १९७४ के वर्ष मे भीषण भयकर प्लेग बीमारी ने मेवाड प्रात की चप्पा चप्पा भूमि पर आतक से भरा आक्रमण खडा कर दिया। घर-घर, गाव-गांव और गली-गली मे प्लेग का पजा फैल चुका था। जवा पर गाठ उठी और जल बुद्बुद् की तरह तीन दिवस के अन्दर ही छू मतर। मानो वे जन्मे ही नही थे। इस प्रकार छोटे-मोटे सैंकडो-हजारो नर-नारी मौत के मुह मे जा सोए। जहाँ-तहाँ लाशो के ढेर लग गये। गाँव-नगर मानो श्मशान से प्रतिभासित होने लगे। घर-घर मे रोना, पीटना, विलाप चिल्लाहट, चित्कार एव आर्तनाद के सिवाय, कहाँ वह मगलध्वनि ? कहाँ कर्ण प्रिय गीत स्वर ? सबके सब भय के मारे मानो कही छिप चुके थे।

स्वच्छन्दं सुख विहरति, हरिरिव मृत्युर्मृगकुलेषु

जिस प्रकार मृगयूथ मे सिंह मार-काट मचाता है, उसी प्रकार क्रूर काल भी स्वच्छन्दता पूर्वक मनचाही करने लगा। फलस्वरूप किसी का सुहाग-सिंदूर लुट गया तो किसी के पिता-भ्राता, तो किसी की माता, किसी की बहन-बहु-बेटी और किसी-किसी के तो सारी वश-परम्परा का साफ सफाया ही हो चुका था। इस प्रकार वीर-वीरागनाओ की भूमि हाहाकार की करुण पुकार से चीख उठी। मानो बहुत काल का भूखा-प्यासा काल कुटिल ने भयावनी इस घटना के बहाने अपना स्वार्थ पूरा किया हो।

मेवाड माता अपने लाडलो की दयनीय-शोचनीय दशा को देख-देख कर सौ-सौ आसू बहाने लगी। परन्तु भवितव्यता के सामने सभी हार मान चुके थे। खतरे से पूर्ण इस विकट वेला मे कौन उपचार इलाज करे ? कौन सेवा-शुश्रूषा एव कौन सुख साता पूछे ? क्योकि जहाँ-तहाँ भगदड मची हुई थी।

रक्षति पुण्यानि पुरा कृतानि—

अवाछनीय इस ज्वाला की लपेट-झपेट मे बालक प्रताप भी आया, किन्तु पुण्य पिता की सुकृपा से बच निकला। लेकिन नौ वर्षीय प्यारे बालक प्रताप को नि सहाय एव अकेला-अनाथ छोडकर श्रीमान् मोडीराम जी एव दोनो भ्रातागण भी चलते बने। मातेश्वरी की वियोग-व्यथा की कथा अभी तक भूले ही नही थे कि बालक प्रताप के जीवन पर भयकर विपत्तियो से भरा दूसरा पहाड आ गिरा। परिणाम-स्वरूप जीवन की भावी रूपरेखा ही बदल गई।

सघर्ष और जीवन :—

कहा है—"होती परीक्षा ताप मे ही, स्वर्ण के सम शूर की" वीर साहसी प्रताप बीमारी से पूर्णत विजय-वत हुआ, लेकिन सामने मात-तात-भ्रात का बिछुडना और शिक्षा-दीक्षा एव आजीविका का ज्वलत

प्रश्न मुहफाडे खडा था । यद्यपि बुद्धि तीक्ष्ण थी, तत्त्व समझने की कला-कुशलता थी, और पढ़ने-लिखने की अभिरुचि भी प्रशसनीय अनुकरणीय थी । किन्तु पिता श्री के अवसान से पढाई लिखाई का क्रम वही का वही ठप्प हो गया । वस्तुत अध्ययन कार्य को गौण कर बालक प्रताप को व्यवसाय मे जुटना पडा ।

नौ वर्ष का भद्रिक बालक एक परचूनी दुकान चला ले, सचमुच ही आश्चर्य भरा विषय था । अन्य पारिवारिक लोगो पर आधारित न रह कर स्वाभिमान-मर्यादा पूर्वक जीवनयापन के लिए इस प्रकार का सुप्रयत्न एक धीर-वीरवृत्ति -का द्योतक था । इस वीरवृत्ति ने प्रताप को ऊँचा उठाया, चमकाया, दमकाया और पूजनीय बनाया । प्रताप अपने लघु व्यवसाय मे सफल, सबल हुआ और सुख-शान्ति-सतोषपूर्वक आजीविका का काम चलाने लगा । कहा भी है—

खाक मे मिला तो क्या फूल फिर भी फूल है ।
गम से हार मानना आदमी की भूल है ।।

●●

वैराग्य का उद्भव

प्रथम संकल्प के चरण पर —

माता-पिता के निधन से वालक प्रताप के मृदु मन को भारी चोट पहुची। अव वालक के दिल-दिमाग मे विचारो की तरगें एक के वाद एक उभरने लगी —

रे मन! क्या अव तात-मात-भ्रात पुन अपने को नही मिलेंगे? क्या मेरी सार-सभाल भी यहाँ आकर नही करेंगे? वे गये तो कहाँ गये? न कोई समाचार-सूचना और न कोई पता-पत्र ही। लोग कहते हैं कि—"मर गये। मर गये" दरअसल मरना क्या-वला है? क्या वीमारी हैं? मरना किस चिडिया का नाम है? देहधारी प्राणी क्यो मरते हैं? नही मरने की भी तो कोई दवाई-औपधि किंवा जडी-वूटी सजीवनी देने वाले डाक्टर-वैद्य इस वसुधरा पर होंगे तो सही न? जिसको खा-पीकर अमर तथा मृत्यु जय वना जा सकें।

द्वितीय सकल्प के चरण पर —

रे मन! क्या तुझे भी इसी तरह मरना पडेगा? काल-कवलित एव वीमारी-वुढापे का शिकार भी वनना पडेगा? "ना ना भीपण-भयकर ऐसा दुख-दर्द सहन नही होगा।" मन सहसा काप उठा। अतएव वेहतर तो यह है कि-पानी के पहले ही पाल वाध लेना वुद्धिमत्ता एव भावी जीवन के लिए श्रेयस्कर होगा। अन्यथा वही दशा अपनी होगी जो इधर तो आग लगी और उधर कूप खुदवाना यह कहावत चरितार्थ होगी। अत समय रहते ही चेत जाना चाहिए। और मृत्यु जय जडी-वूटी की तलाश भी कर लेना चाहिए। ताकि-अपना भावी जीवन सदा-सदा के लिए आनन्द का नन्दन वन-सदन वन जाएँ।

मृत्यु जय की तलाश के पथ पर—

इस प्रकार मन-महोदधि मे उठी-उभरी वास्तविक कल्पनाओ-लहरो के समाधान के लिए विरागी प्रताप ने सोचा कि—जिस प्रकार डाक्टर एव वकील वनने का इच्छुक अन्य अनुभवी डाक्टर वकील के पास रहकर प्रशिक्षण-मार्गदर्शन एव विचार विमर्श ग्रहण करता है। उसी प्रकार लोभी-लालची वैद्य-एव गुरु के माया जालो मे न भटकता हुआ, मुझे भी अव सत् प्रयत्न करना ही चाहिए। ताकि मेरी आत्मा महान्, विद्वान एव भगवान वन सके और महान् मनोरथ भी पूर्ण हो जाय। एतदर्थ सत्सगति रामवाण औपधि है। ऐसा विचार कर धर्मस्थानक मे विराजित मुनियो के सम्पर्क मे आने लगा।

वस्तुत सुनिमित्त को पाकर उपादान रूप पात्र वैराग्य भावना से भर उठा। आज उसकी वाणी के प्रवाह मे विराग था, खान-पान-रहन-सहन मे सवेग तो सौम्य मुखाकृति पर ससार नश्वरता की झलक-छलक रही थी एव अग-प्रत्यग मे से मानो पक्के विराग की मधु महक प्रस्फुटित हो रही थी। इस प्रकार 'पुनरपि जनन पुनरपि मरणं' के निविड वन्धन से उन्मुक्त होने के लिए मन पुन पुन उतावला हो उठा। परन्तु उतावले पन से आम थोडे ही पकते हैं। समयानुसार ही तो भावना-याचना-फलदायी-सिद्ध होती है।

दिन अस्त होने के पहिले,
जो मंजिल तक पहुंच जाता है।
उस मुसाफिर को हर हालत मे,
चतुर ही कहा जाता है।।

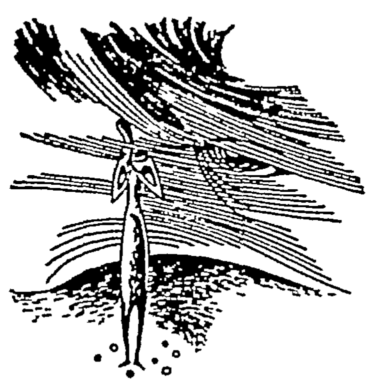

गुरु नन्द का साक्षात्कार

जिसे जो लगता है प्यारा, उसी का उससे नाता है।
खुशबू फूल की लेने, भौंरा कोसो से आता है॥

दादा गुरुदेव श्री नन्दलाल जी म० भी अपने गुरु भ्राता मुनि प्रवर श्री जवाहरलालजी म० एव कविरत्न श्री हीरालाल जी म० की तरह सर्व गुण सम्पन्न थे। ज्ञानाभ्यास एव सत-सघ सेवा में आप भी अग्रसर ही थे। तत्त्वज्ञान, आगम, जैन दर्शन, न्याय, पिंगल, छन्द, कोप-काव्य-व्याकरण, सस्कृत-प्राकृत, षड्दर्शन आदि विषयो मे निष्णात थे। आप की प्रतिभा बहुमुखी एव कुशाग्र बुद्धि विलक्षण थी। शास्त्रार्थ करने मे एव प्रतिवादी को अपनी बात मनवाने मे आप अत्यन्त पटु थे। वस्तुत जैन आगमो मे जहाँ-तहाँ आए हुए जितने भी चर्चास्पद स्थल हैं, उन सभी को आपने हस्तगत कर लिए थे। इसी बलबूते पर आप विवाद-कर्त्ताओ के बीच खडे रहकर जैनधर्म की ध्वजा फहराने मे तथा सद्धर्म की सागोपाग पुष्टि करने मे अद्वितीय माने जाते थे।

जहाँ-कही मालवा एव मेवाड प्रान्त मे स्थानकवासी परम्परा की पुष्टि का प्रसग आता तो स्व० पूज्य प्रवर श्री उदय सागरजी म० व चतुर्थ पट्टाधीश आपकी ही नियुक्ति पसन्द करते थे। गुरु—आशीर्वाद से आप भी यत्र-तत्र विजय वरमाला लेकर ही लौटते थे। इसलिए जनता आपको "वादी-मानमर्दक" के पद से सम्बोधित करती थी।

एकदा गुरुप्रवर अपने शिष्य परिवार के साथ सम्यक्त्व आलोक से जगतीतल को आलोकित करते हुए अर्थात्—पूर्व लिखित घटना क्रम के ठीक चार वर्ष के पश्चात् देवगढ नगर मे पधारे।

जन समूह के साथ-साथ जिज्ञासु प्रताप भी गुरुदेव की पवित्र सेवा म आ पहुचा। प्रसगानुसार स्वर्गीय श्री गाधीजी से सम्बन्धित बातें चल पडी। तब समीपस्थ किसी भाई ने कहा कि—"गुरु-महाराज! स्व० श्रीमान गाधी का सुपुत्र प्रताप अकेला बचा है, जो हुजूर की सेवा मे ही हाजिर है।" बालक प्रताप को देखते ही पडितवर्य श्री कस्तूरचन्दजी म, एव प० रत्न श्री सुखलाल जी म० बोल उठे "अरे! तुम सेठ मोडीराम जी गाधी के सुपुत्र हो। तुम्हारा तो सकल परिवार ही दीक्षित होने वाला था। किन्तु काल-कुटिल ने ऐसा नही होने दिया। अस्तु, वे तो अब ससार मे नही रहे, परन्तु तुम तो मौजूद हो! तुम चाहो तो अपने पिता-भ्राताओ की शुभ कामना-भावना को पूरी कर सकते हो और धर्म के नाम को उज्ज्वल भी।"

वैराग्य रग से ओत-प्रोत वीर प्रताप का हृदय पहले से हिलोरें मार ही रहा था। अब सुगुरु के दर्शन तथा सुयोग पाकर और अधिक श्रद्धा भक्ति से भर उठा। गुरुदेव के स्नेह मय मधुर वचनो का उस पर गहरा प्रभाव पडा। तत्क्षण श्रद्धापूर्वक अपना मस्तक गुरुपाद-पकज मे झुका दिया। गुरु का महान् हृदय भी सुशिष्य प्राप्ति की आशा मे प्रसन्नता से भर उठा। **"शुभस्य शीघ्रम्"** अथवा **"समयं गोयम मा पमायए"** के अनुसार सामायिक-प्रतिक्रमण आदि धार्मिक अभ्यास-अध्ययन भी प्रारम्भ कर दिया गया।

महा मनस्वियो का दीर्घ जीवन तथा दीर्घ सपर्क समाज, राष्ट्र परिवार एव सघ के लिए मगल स्वरूप माना गया है। क्योकि समय-समय पर उनके द्वारा विचार-सवल, मार्गदर्शन एव ज्ञान-प्रकाश की प्राप्ति होती रहती है। शारीरिक व्याधि के कारण गुरु भगवत श्री नदलाल जी म० को भी लगभग डेढमास तक देवगढ मे ही विराजना पडा। इतने लम्वे काल तक वहाँ विराजने से वैराग्य भावना आशातीत प्रवल-पुष्ट एव प्रौढ वनी। यहाँ तक कि—वैरागी प्रताप समस्त आरम्भ-परिग्रह से निवृत्ति ग्रहण कर ज्ञान-साधना मे सुष्ठुरीत्या जुट गया। व्याधि का अत होते ही गुरुदेव का रतलाम की ओर प्रस्थान हुआ। तव विरागी प्रताप भी पूरी तैयारी के साथ, गुरुदेव के साथ जाने के लिए तत्पर हुआ। लेकिन—'सुकार्येषु वहु विघ्ना' शुभकार्य मे अनेक विघ्न-वाधाए आते हैं"।

● ●

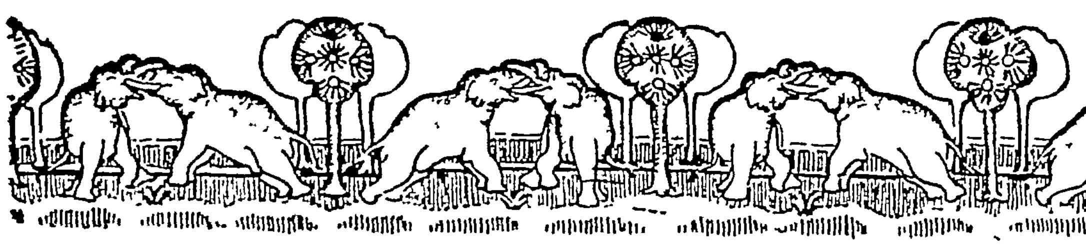

पारिवारिक-परीक्षा

विघ्न के वादल —

मोह मायावी जीवो का स्वभाव ऐसा ही होता है कि—जव कोई भी भव्यात्मा सत्पथ पर आसीन होने जाती है तव न जाने कितने ही काका, मामा, भाई, भत्तीजे, मासा, फूफा आदि ढेरो सगे-सम्वन्धी दवी-चुपी-गली कूचों से निकल-निकल कर साम दाम-दण्ड एव भेद नीति से उस पवित्र आत्मा को डाट-फटकार कर रोकने के लिए विघ्नरूप विकराल चट्टाने वनकर आ खडे होते हैं । पश्चात् भले वह मुमुक्षु घर मे आकर कुमार्गी वन जाय, अथवा मरण को प्राप्त हो जाय परन्तु सुकार्य पीठिका पर आरूढ उस साधक को वे न्याती-गोती अपनी फूटी आखो से देखना पसन्द नही करते हैं । कहा भी है— **स्मरति पर द्रव्याणि मोहात् मूढ़ा प्रतिक्षणम्** । अर्थात् मायावी जीवो की मानस स्थली सदैव विपय-विकारयुक्त उस विभाव दशा से व पर-परिणति मे सरावोर रहती है । पर द्रव्यो मे रमण करना, उनका धर्म-पथ-कर्तव्य होत। है । आस-पास वालो को भी उसी विपैले माया जाल की जजीरो मे जकडना भी चाहते हैं । वस्तुत प्रणवीर प्रताप को भी ऐसे ही नाट्य दृश्य को देखना पडा व भारी कठिनता का सामना भी करना पडा ।

चार तमाचे वूआजी की ओर से —

जव प्रताप मृत्यु जय जडी-वूटी को प्राप्त करने के लिए गुरु भगवत के साथ-साथ घर (देवगढ) से रवाना हुआ और कुछ ही कोसो गया होगा कि—पीछे से दो-चार सगे-सम्वन्धी चढ आए । वल पूर्वक प्रताप को पकड कर दो-चार गालियो के साथ-साथ दो-चार मुह पर तमाचे जमाए और जवर्दस्ती प्रताप को पुन घर पर ले आए । घर पर वुआजी (पिताजी की वहन) इन्तजार कर ही रही थी । घर पहुचते ही अव वुआजी की तरफ मे नरमा नरम और गरमा गरम भेंट चढने लगी—"थने या काई सूझी ? म्हारे पीहर ने उजाडे काई ? कमाई ने नही खाई सके वापडो, अणी वास्ते माग खावणियो सावुडो-वणवाने जाई रह्यो है ।" इम प्रकार गालियो की मीठी-मीठी वौछारें हुई और गाल पर दो-चार तमाचे अव भुआजी की ओर से ओर पडे ।

वैराग्य को उतारने का तरीका —

अव अग-अग मे व्याप्त उस कीरमिजी वैराग्य को समूल उतारने के लिए उन सगे-सम्वन्धियो ने नीमवृक्ष के पत्तो से उवले हुए जल से वैरागी प्रताप को नहलाया-धुलाया, पुरानी पोशाक फिकवाई गई, नई धारण करवाई और भी जो करने के थे—जादू-टोणे-टोटके वे सव ससारियो द्वारा किये—गये । लेकिन—"**न्यायात् पथ प्रविचलति पद न धीरा.**" अर्थात् धीर पुरुप धार्मिक नीति-नियमो का सुख तथा दुखावस्था मे कदापि त्याग नही करते हैं । चन्दन को काटे तो भी महक, घीसे तो भी खुशवू और पास मे खडे रहे तो भी सरस-सुगन्ध । इसी प्रकार प्रताप का वैराग्य उतरने की अपेक्षा और ज्यादा घर-घर गली-गली मे महक उठा, निखर उठा । मानो रगरेज ने कीरमिजी रग से रग दिया हो । वीर

प्रताप देवगढ तो अवश्य आया, परन्तु मन नही लगा। अतएव घर पर ही साधु की तरह त्यागमय जीवन विताने लगा। पारिवारिक सदस्यगण अपनी मनोकामना पूरी न होती देखकर निराश एव परेशान थे।

और चेतावनी मिली —

उभय काल जव धर्मप्रवृत्ति को करते देखा तव बुआजी झु झला कर वोली कि—"यदि अव विना पूछे घर से कही भी भाग गया तो, तुझे तालें मे वन्द कर दिया जायगा। अभी तो न वोलना, पढना-लिखना एव न कपडा पहनना ही आता है और दीक्षा लेने को उतावला हो रहा है? दीक्षा किसे कहते हैं? कैसे पाली जाती हैं? कुछ पता भी है?" इस प्रकार गरम-नरम अनेको प्रकार की डाट-फटकार दी और कही पुन भाग न जाय, इस कारण भुआजी स्वय पूरी-पूरी देख-रेख करने लगी। साथ ही साथ पारिवारिक सदस्यो ने गुप्त रूप से ऐसा विचार-विमर्श भी किया कि—"प्रताप के मजुलमय जीवन मे समय रहते विवाह-स्नेह का दीप प्रज्ज्वलित करवा दिया जाय, ताकि-स्नेह सम्वन्ध मे स्वत इसका पग वन्धन हो जायगा। वस्तुत फिर कही जाने का नाम तक नही लेगा।" मेवाड प्रान्त मे ही क्यो अनेको प्रान्तो मे लघु-अवस्था मे भी विवाह कर लिया करते है। यह रिवाज पहिले भी था और आज भी किसी न किसी रूप मे जीवित है। इसलिए भुआजी आदि सम्वन्धियो की दृष्टि मे विवाह का तरीका समयोचित ही था।

जीवन की मजबूती —

"**अभोगी नोवलिप्पइ**" अर्थात् वैरागी वीद उस लुभावने मन-मोहक स्नेह रागभाव मे वन्धने वाला कहाँ था? चूँकि-गुरु-प्रसाद से प्रताप को विष-अमृत एव सत्य-असत्य का भली-भाति भान हो चुका था। तथा यह भी ज्ञात हो चुका था कि—जव यह शरीर ही मेरा नही है तो भला! ये स्वार्थी वन्धु-वान्धव मेरे कव होंगे? यह तो चन्द दिनो का ही लाड-प्यार स्वप्न सा दृश्य रहता है। फिर वही ताडना-तर्जना की रफ्तार—इस कारण सचेत रहना और इस मकडी जाल मे मुझे कदापि मोहित नही होना चाहिए।

"**क्षमा वीरस्य भूषणम्**" तथा "**मौनिनः कलहो नास्ति**" गुरुदेव द्वारा दी गई उपरोक्त अमूल्य शिक्षाओ को वार-वार स्मरण करता हुआ वीर प्रताप उन कडवी कठोर सारी घूँटो को अपने परीक्षा का समय जानकर तथा अमृत मानकर पीता गया। किन्तु महान् मना प्रत्युत्तर मे केवल चुप और प्रसन्न चित्त! यह है महापुरुष वनने की अद्वितीय निशानी। कहा भी है—

धर्म वही है जो सकट की, घडियो में भग न हो।
सुख की मस्ती मे तो कहो, किसको धर्म का रग न हो?

● ●

प्रतिज्ञा-प्रतिष्ठापक

हाथ का जख्म और प्रतिज्ञा

प्रण है प्राण समान जो कि मुझको प्यारा ।
पालूगा मन-वच-काय जो कि मैंने धारा ।।

एकदा वैराग्यानन्दी प्रताप राणकपुर के सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर की यात्रा के लिए निकला । देवगढ से राणकपुर पर्वतीय मार्ग से अत्यधिक सन्निकट माना गया है । अतएव जल्दी पहुँचने की भावना से घोडे पर सवार होकर जा रहा था कि सहसा मार्ग मे घोडा विगड गया और धडाम से नीचे उसे दे पटका । पत्थरीली-ककरीली जमीन के कारण गिरते ही इतस्तत शरीर मे काफी चोटें आई और एक हाथ तो टूट सा गया । मार्गवर्ती मुसाफिरो ने घायल प्रताप को येन केन प्रकारेण घर पहुँचाया । हाथ का उपचार करने मे काफी जन जुट गये । लेकिन कोई भी इलाज लाभदायक सिद्ध नही हुआ । व्यथा से प्रताप पीडित था । अकस्मात् एक दिन मनो ही मन जिस प्रकार नमिकुमार ने आखो की पीडा को शमन करने के लिए ध्रुव प्रतिज्ञा की थी, उसी प्रकार विज्ञ प्रताप ने भी तत्काल अभीष्ट फलदायक निम्न अभिग्रह (प्रतिज्ञा) धारण कर ली कि--"यदि सात दिन की अवधि मे मेरा हाथ पूर्णत जुड जायगा तो निश्चयमेव मे किसी की एक न सुनता-हुआ न मानता हुआ सीधे गुरु भगवत के चारु-चरण कमलो मे पहुँच कर दीक्षा ले लूँगा ।" उपरोक्त प्रतिज्ञा घर वालो को भी कह सुनाई ।

चिकित्सक और उपचार :—

अभिग्रह करने मे देर ही नही हुई कि—उधर सयोगवशात् टूटी हड्डियो को जोडने मे कुशल-कोविद एक चिकित्सक आ निकला । मानो मानव परिवेश मे कही से कोई देव आगया हो । वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा—"पेट की दवाई, मात्थे का इलाज, टूटी हड्डियो का सागोपाग इलाज, आदि २ ।" उधर वेदना से कराहते हुए वालक प्रताप को भी देखकर वोल पडा कि—"मैं देखते-देखते इस वालक का हाथ ठीक करा देता हूँ ।" सचमुच ही पाच-छ दिन के उचित उपचार से हाथ काफी अच्छा हो गया और दर्द भी दिनो दिन कम होता गया । लम्बे समय से उपचार करवाने पर भी जो वीमारी पिड नही छोड रही थी, वह देव-गुरु धर्म प्रसाद से शीघ्र ही दूर होती चली गई । यह अभि-ग्रह के चमत्कार का ही परिणाम था ।

पारिवारिक वन्धुजनो ने भी पुन प्रताप को वहुत समझाया । परन्तु वेग वाहिनी नदी धार की तरह मनस्वी प्रताप को कोई नही लौटा सके और न कोई शक्ति ही रोक सकी । अन्ततोगत्वा सगे सम्वन्धियो ने भी अव विशेष आग्रह न कर **मौन स्वीकृतिलक्षणम्**" मान लिया ।

एक प्रेरक प्रसंग

जब दीक्षा की शुभसूचना देवगढ के कौन-कौन मे प्रसारित हुई, तब किसी ने हितकारी-कल्याणकारी माना तो किसी ने उदास चित्त होकर अनिष्टकारी भी माना । क्योंकि—सबके विचार-विभिन्न तरह के होते हैं—"भिन्ना वाणी मुखे मुखे" अथवा "Many men many minds" अर्थात्—जितने मुंह उतनी बातें होने लगी ।

गिरती-गिरती यह सूचना एक स्वपच (भगी) कुल तक भी जा पहुची । स्वपच गृहिणी आस-पास वालो से दीक्षा सम्बन्धित प्रताप की खबर सुनकर हक्की-बक्की सी रह गई । तेज गति से पैर उठाती हुई वैरागी प्रताप के द्वार पर आई और बिना किसी को चेताए वह गला फाड-फाड कर जोर-जोर से रोने लगी । द्वार पर होने वाले कोलाहल को सुनकर उसने बाहर आकर देखा कि—अपने गृह द्वार की सफाई करने वाली भगन मा अकारण रो रही है ।

"मा ! तुम क्यो रो रही हो ? क्या कही से अशुभ समाचार मिले हैं ?" सहजभाव से प्रताप ने पूछा ।

स्वपच गृहिणी मधुर भाषा मे बोली—"अन्नदाता ! कई पीढियो से हमारा सकल परिवार आपके घर की सेवा करता आया है । फलस्वरूप जन्म-मरण-परण के समय-समय पर वस्त्र-थाली-लोटे एव रुपये आदि का लाभ भी हमें खूब मिलता रहा है । परन्तु दुख है कि आज पडोसियो के मुह से मैंने सुना कि—अब आप सदा-सदा के लिए घर और गाँव छोडकर ढूंढिया महाराज बनरिया हो । इसलिए बहुत बडा दुख है कि—अब- हमारा सारा घर ही उठ रहा है । अन्नदाता ! दुख अब इस बात का है कि—वे बर्तन, रुपयें अब कहाँ से मिलेंगे ? किस घर से आयेंगे और कौन देगा ? आप घर पर विराजते तो जन्म-मरण-परण (विवाह) सब काम-काज होते ही और हमारी आवक भी यो की त्यो कायम रहती ।"

जब उस भगन मा की स्वार्थ भरी पुकार को सुनी व आखो के सामने देखी तो, तत्काल मेधावी प्रताप ने उसी की माग के अनुसार आशातीत ईनाम देकर विदा दी और कहा कि— 'अब तो बहुत मा !" "अरे ! गरीब निवाज ! आप की सुदृष्टि चाहिये ।" ऐसा कहकर मुस्कराती हुई वह भगन मा अपने घर की ओर चलती बनी ।

अब वीर प्रताप चिन्तन की दुनिया मे सोचने लगा कि—अहो ससार कितना स्वार्थी तत्त्वो से परिपूर्ण है । एक मामूली महिला भी अपने तुच्छ अधिकार को छोडना पसन्द नही करती है । अन्तत लेकर ही गई तो सब रोणा-धोना बन्द हो गया और तन-मन मे कितनी खुशहाली छा गई । अतएव ज्ञानियो ने ठीक ही कहा है कि सभी अपने-अपने मतलब को ही रोते रहते हैं । न कि परमार्थ को, इसलिए शुभ कार्य के लिए अब मुझे विलम्ब नही करना चाहिए ।

जैन दीक्षा माहात्म्य

साध्य को सफल करने का तरीका :—

"आत्मा सो ही परमात्मा" नन्ही सी यह युक्ति जन-जन की जिह्वा पर काफी प्रचलित एव काफी अशो मे सत्य ही नही बल्कि शतप्रतिशत सत्य है। क्योंकि-मोक्ष का अधिकारी आत्मा को ही माना गया है।

"मोक्ष किसके लिए ?" उत्तर मे सर्व धर्म ग्रन्थो का एक ही उद्घोष घोषित होगा कि— देही के लिए, चैतन्य के लिए, जीवधारी के लिए न कि जड वस्तु के लिए। अतएव जगत् के अधिकाश मानव समूह को प्रकट एव प्रच्छन्न रूप से यह शुभाकाक्षा अवश्य रही है—"हम परम चरमोत्कर्ष दशा, को प्राप्त करें।" परन्तु शुद्धावस्था पाने के लिए पर्याप्त सम्यक् परिश्रम, अन्तरग शुद्धि, आत्म-नियन्त्रण इन्द्रिय व मनोनिग्रह एव समूल कपाय-इति श्री के साथ-साथ महानता के प्रतीक नाना विध गुण रूपी गुल दस्तो से आत्मा की वास्तविक सजावट परमावश्यक मानी गई है। तदनतर ही साध्य (मोक्ष) सिद्धि की असीम-अनन्त-निधि-समृद्धि हाथो मे ही नही अपितु हृदय के प्रागण मे चमकने लगती है एव जीवन मे दमकने लगती है।

हा, तो साध्य की अक्षुण्ण-अखड सफलता के लिए रत्नत्रय (सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र) की आराधना प्रत्येक भव्य के लिए उतनी ही जरूरी है, जितनी रोगी के लिए औषधि और रक के लिए धन निधि। चूँकि-भव्यात्मा ज्ञान-विज्ञान की एक बहुत बडी प्रयोगशाला है। मोक्ष-साध्य के प्रयोग हेतु भव्य-मानस स्थली को सुरक्षित केन्द्र माना गया है। वही पर उपरोक्त प्रयोग-परीक्षण पुष्पित-पल्लवित एव फलित होता है। आत्मसाधना का पथ यद्यपि कटकाकीर्ण है, अनेकानेक कठिनाई एव तूफानो से घिरा हुआ है। जैसा कि—

हदि धम्मत्थ कामाण, निग्गथाण सुणेह मे।
आयारगोयरं भीमं, सयल दुरहिट्ठिय ॥

—दशवैकालिक सूत्र अ० ६ गा० ४

हे देवानुप्रिय! श्रुत चारित्र रूप धर्म और मोक्ष के अभिलाषी निर्ग्रन्थ मुनियो का समस्त आचार-विचार, जो कर्मरूपी शत्रुओं के लिए भयकर है तथा जिसको धारण करने मे कायर पुरुष घबराते हैं।

तथापि ऐसे दुरूह तथा कठोरातिकठोर साधना सुमेरु पर भी भारत के इक्के-दुक्के नही, किन्तु अनन्त-अनन्त वीर-धीर-त्यागी वैरागी योद्धागण सफल-सिद्ध हुए और हो रहे हैं।

साधना के दो मार्ग

जैनधर्म मे साधना के दो मार्ग बताये गये हैं—**"देश सर्वतोऽणु महती"**

—तत्वार्थसूत्र

अर्थात् अल्प अशो मे विरति को अणुव्रत और सर्वांशो मे विरति को महाव्रत कहा जाता है।

जैन भूगोल के आधार पर साधना का क्षेत्र पैंतालीस लाख योजन विस्तार वाला माना गया है। मुमुक्षु साधना को भले अणु रूप से स्वीकार करें किंवा अखण्ड रूप से अगीकार करे। साधना का मतलब है—आत्मा को यौगिक बनाना। योग का अर्थ है—जोडना। जो अपनी वृत्तियो को नियमोपनियम मे नियोजित एव रत्नत्रय की त्रिवेणी मे प्रवाहित करता है- बस, वही साधक और वही योगी है। इसका नाम जीवन-मुक्त दशा की खोज और मरते हुए भी अमरता की सच्ची अन्वेषणा है। इसका अर्थ यह होगा कि—वह यद्यपि सासारिक प्रवृत्तियो मे भाग ले रहा है। तथापि वह अनासक्त है। वह खाता-पीता है, किन्तु केवल जीवन निर्वाह के लिये। जैसा कि—"Eat to live and do't live to eat" अर्थात्—जीने के लिये खाओ, खाने के लिये मत जीओ।

अनासक्ति भाव आत्मीय सात्विक वृत्ति है। जो भव्य को अजरता-अमरता की ओर प्रेरित करती है। जब कि—आसक्ति भाव निविड सासारिक बन्धन है। जो प्रकाश से अन्धकार की ओर एव मानवता से दानवता की ओर घसीटती है। मानव यह अच्छी तरह जानता है कि—हिरण्य-सुवर्ण-द्विपद-चतुष्पद, चराचर सम्पत्ति मुझ से भिन्न वस्तु है। तथापि वह उनमे गृद्ध और गृद्ध भी उतना कि उसके मन-मदिर मे तुष्टि-पुष्टि का दुष्काल सा ही रहता है। यह है आसक्त मानव की दयनीय दशा! जब कि—अनासक्त साधक बाहरी वैभव रूपी झुरमुट को केवल जीवन निर्वाह का साधन मानता हुआ, मौका आने पर तृणवत् त्याग कर, वैराग्य युक्त होकर हर्षोल्लसित होता हुआ अकिंचनावस्था मे आ खडा होता है।

यहाँ से त्याग मार्ग की प्रशस्त दो सुवीथिकाएँ प्रारम्भ होती हैं। गृहस्थ साधक (अणुव्रती) और पूर्ण रूपेण सयमी साधक (महाव्रती)। दोनो प्रकार के साधको का लक्ष्य-उद्देश्य भिन्न नही, अभिन्न है, अनेक नहीं एक है—सिद्धालय तक पहुचना, कर्मों से मुक्ति पाना एव सत्य-स्वतन्त्र दशा को प्राप्त करना। अतएव महापुरुषो ने दोनो मार्गो को प्रशसनीय एव जीवन के लिये अनुकरणीय आदरणीय बताए हैं।

जैन (आर्हती) दीक्षा—

दीक्षा वही है, जो पूर्ण सयम की साधना का व्रत हो। वैराग्य सुधा मे ओतप्रोत बना हुआ मुमुक्षु सयमी प्रक्रिया को कैसे सम्पन्न करता है? यह बतलाने के लिये मे जैन-दीक्षा की कतिपय वरिष्ठ-विशेषताएँ यहाँ दर्शाऊँगा। क्योकि विभिन्न धर्मों की दीक्षा प्रणालियाँ विभिन्न हैं। अत. आवश्यक होता है कि—मैं आगतुक जैन-जैनेतर दर्शको को जैनधर्म की दीक्षा पद्धति से परिचित कराऊँ। जैन-दीक्षा का अर्थ है—"सर्व सावद्य योगो से निवृत्त होना।" अर्थात्—शुद्धावस्था के बाधक एव घातक सर्व क्रिया-काण्डो का परित्याग करना। इन्हें पाच विभागो मे बाटें गये हैं—

(१) हिंसा—परितापना, प्राणो से रहित करना, अपने स्वार्थ के लिए अन्य का सर्वस्व विनाश।

(२) असत्य—असत् भाषा का प्रयोग, मिथ्या आग्रह, भाव-कुटिलता और करनी-कथनी मे अन्तर।

(३) चोरी—परवस्तु उठाना, अधिकार छीनना एव ठगना।

(४) अब्रह्मचर्य—मन-वाणी-काय शक्ति का असयम मे प्रयोग।

(५) परिग्रह—ममत्वभाव एव मूर्च्छा भाव मे रमण।

दीक्षा का उम्मीदवार भाई तथा बाई अपने गुरु एव सैंकडो हजारो मानवो की साक्षी से

जीवन पर्यन्त उपरोक्त दुष्प्रवृत्तियो को त्यागने की भीष्म प्रतिज्ञा ग्रहण करता है और निम्नोक्त पाच महाव्रतो को स्वीकार करता हैं—कहा भी है—

अहिंस सच्चं च अतेणगं च, तत्तोय वभं अपरिग्गहं च ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्म जिण देसिय विऊ ।।

—उत्तराध्ययन २१

(१) अहिंसा—मैं आज से आजीवन मनसा-वाचा कर्मणा हिंसा न करूंगा, न कराऊँगा और करते हुए प्राणी को अच्छा भी न समझूंगा।

(२) सत्य—मैं आज से जीवनपर्यंत के लिए मनसा-वाचा-कर्मणा झूंठ न बोलूंगा न बोलवाऊँगा और बोलते हुए प्राणी को अच्छा भी न समझूंगा ।

(३) अचौर्य्य—मैं आज से जीवनपर्यंत के लिए मनसा वाचा-कर्मणा चोरी न करूंगा, न कराऊँगा और करते हुए प्राणी को अच्छा भी न समझूंगा ।

(४) ब्रह्मचर्य—मैं आज से जीवनपर्यंत के लिए मनसा वाचा-कर्मणा अब्रह्मचर्य (कुशील) का सेवन नही करूंगा, न कराऊंगा और सेवन करते हुए प्राणी को अच्छा भी न समझूंगा ।

(५) अपरिग्रह—मैं आज से आजीवन मनसा-वाचा-कर्मणा परिग्रह न रखूंगा न रखाऊँगा और रखते हुए प्राणी को अच्छा भी न समझूंगा ।

(६) रात्रि भोजन—मैं आजीवन मनसा-वाचा-कर्मणा रात्रि भोजन न करूंगा न करवाऊँगा और करते हुए प्राणी को अच्छा भी न समझूंगा ।

सुख शान्ति का शाश्वत मार्ग—

उपर्युक्त कठोरातिकठोर पाच महाव्रतो को स्वीकार करने मे एव पालने मे जैन साधु-साध्वी वर्ग पूर्ण रूपेण उत्तीर्ण हुए और हो रहे हैं। अतएव दीक्षा जीवन का महान आदर्श है। चिर सचित-अर्जित विपुल सस्कारो के विना इस ओर किसी का ध्यान ही नही जाता है। आज के भौतिक-वातावरण मे जहाँ चारों ओर वासनापूर्ति की होड लग रही है वहाँ कामना को ठुकराने वाले की मनोवृत्ति क्या महान् महत्त्व नही रखती है ? जरा ध्यान से सुनिए, पढिए एव जीवन मे उतारिए। इच्छा और आवश्यकताओ को ज्यो त्यो पूरा करना ही मानव अपना लक्ष्य मान वैठा है। ऐसी परिस्थिति में उन सव को कुचल कर सुख शान्ति से जीवन व्यतीत करने वाला सयमी क्या समष्टि एव व्यष्टि के लिये आदरणीय-सम्माननीय नही वनता ? अवश्य वनता है। क्योकि सुख शान्ति का इच्छुक वह मानव ठीक मार्गानुसारी वन सम्यक् परिश्रम करने मे दत्तचित्त है। जैसाकि—

कुप्पवयण पासडी सव्वे उम्मग्गपट्ठिआ ।
सम्मग्ग तु जिणक्खाय, एस मग्गे हि उत्तमे ।। —भ० महावीर

हे मुमुक्षु ! हिंसामय दूषित वचन वोलने वाले, वे सभी उन्मार्गानुसारी है। राग-द्वेष रहित और आप्त पुरुषों का वताया हुआ मार्ग ही एक मात्र सन्मार्ग है। वही मार्ग सर्वोत्तम-कल्याण को देने वाला है।

दीक्षा-साधना के पथ पर

सफलता का सूर्योदय—

पारिवारिक सदस्यो द्वारा सहर्ष मौन स्वीकृति मिल जाने पर वैरागी प्रताप अविलम्ब देवगढ से लसाणीगाव मे चला आया। जहाँ श्री हर्षचन्द्रजी महाराज आदि सतद्वय अपना वर्षावास विता रहे थे। काफी दिनो तक उनकी सेवा मे रहने का सौभाग्य मिला। फलत ज्ञान-ध्यान श्रमणोचित आचार-विचारव वैराग्यभाव, प्रत्याख्यान आदि को आशातीत वल भी मिला। सकल्प पर मेरु की तरह मजबूत रहने की मुनि श्री द्वारा सत्प्रेरणा भरी सुसीख भी मिलती रही। इस प्रकार प्रण-पालक प्रताप अहर्निश उस पवित्र वेला की प्रतीक्षा मे रहता था कि "वह शुभ-घडी पल कव आएगी ? जिस दिन मैं निर्ग्रन्थ के पद चिन्हो का अनुगामी वनकर सघ, समाज, गुरु एव गुरु भ्राताओ की महान् सेवा शुश्रूषा कर अपने जीवन को समृद्धिशाली वनाऊँगा—

जेही के जेही पर सत्य सनेहु। सो तेही मिला न कछु सदेहु।

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" शुभ भावना के अनुसार सिद्धि प्रसिद्धि तो साधक के चरणो का चुम्बन किया करती है। वस, ठीक वीर प्रताप विजय-दशमी के शुभ दिन दिग् विजय के शुभ सकल्प को मन मजूषा मे विराजित कर लसाणीग्राम से मदसौर के लिए चला आया। जहाँ महामहिम शासन प्रभाकर वादी मान-मर्दक गुरु प्रवर श्री नन्दलालजी म० शिष्य परिवार सहित सवत् १९७९ का चातुर्मास सम्पन्न कर रहे थे। विना पत्र-समाचार अकस्मात् प्रताप को आते देखकर मुनि-मण्डल विस्मित हुए और वस्तुस्थिति ज्ञात होने पर प्रसन्न चित्त भी हुए। नर-रत्नो के पारखी, गुरु-रूपी जौहरी ने सच्चे हीरे को पहिले से ही खूब टटोल एव देख-भाल कर रखा था। किन्तु सघ-समाज ने अभी तक कसोटी पर कसा नही था। ऐरे-गैरे ढोगी-धूर्त्त-नर-नारी विमल वैराग्य अवस्था को निज स्वार्थ के पीछे कलुषित कलकित किया करते हैं। एव वैराग्य का चोगा लटकाकर गुरु एव सघ की आखो मे धूल झोक जाते हैं। अतएव सघ की तरफ से कसौटी पर आना अत्यावश्यक ही था।

कसौटी के तख्ते पर प्रताप—

अव कसौटी करने के लिए स्थानीय सघ के सदस्यो ने वैरागी प्रताप को सन्निकट एकान्त मे वुलाकर कुछ-प्रश्न पूछे—"दीक्षा किस लिए लेते हो ? क्या साधु वनने मे ही मजा एव मोक्ष है ? गृहस्थावस्था मे भी तो जीवनोत्थान-कल्याण वहुतो ने किया हैं ? अतएव हमारा तो नम्र निवेदन यही है कि अभी हाल रुको, अथवा हमारे यहा पर ही नौकरी करो और सुख से कमाओ-खाओ।" प्रश्नो का मेधावी वालक ने साहस पूर्वक समयोचित उत्तर दिया। पृच्छको का मन-कोष-तोष से भर उठा। इसी प्रकार घरों मे भी खाद्य-पेय पदार्थों द्वारा दुवारा कसौटी और हुई। परन्तु शान्त मूर्ति प्रताप के मुख से एक शब्द तक नही निकला कि—यह कडुआ है, वह शीत है, यह उष्ण है, यह तीखा और वह कसैला है।" वल्कि समय पर जैसा 'असन-पान खाद्य-स्वाद्य थाली मे आया, वैसा खा-पीकर सतुष्ट रहे।

जन-जन की आंखो में—

सर्व परीक्षाओ मे उत्तीर्ण हो जाने के पश्चात् ही ससारी जन उस साधक की कीमत आकता है। ऐसा कौन होगा—जो सच्चे वैरागी आत्मा को लखकर उसका मन-मयूर नाच न उठता हो। बस, अविलम्ब मन्दसौर के इधर-उधर भागो मे विरक्त प्रताप के गुणो की भूरि-भूरि प्रशसा होने लगी। समाज के कार्यकर्ताओ को भी पक्का विश्वास हो गया कि ऐसे पवित्र हृदयी जन ही स्वपर का—उत्थान कर सकते हैं। सघ के कमनीय-रमणीय प्रागण मे भारी आनन्द हर्ष उमड पडा। घर-घर मे आनन्दोल्लास, मगलगान के फुव्वारे फूटने लगे। वैरागी बीद क्या आया, मानो हर्ष-प्रमोद एव सुख शान्ति का जादूगर आया हो। सर्वत्र सुखमय वातावरण का निर्माण हो चला।

और साथियो का मधुर मिलन—

"**अधिकस्य अधिक फलम्**" अर्थात् अत्यधिक उत्साह उमग बढने मे दूसरा कारण यह भी था कि—मन्दसौर निवासी श्री हीरालाल जी दूगड (प्र० श्री० हीरालाल जी म०) एव आप श्री के पूज्य पिता श्री लक्ष्मीचन्द जी दूगड (स्व० श्री लक्ष्मीचन्द जी महाराज) आप दोनो भी गुरु भगवन्त श्री नन्दलाल जी म० के पवित्र पाद पद्मो मे वैराग्यावस्था की साधना मे लवलीन थे। इस प्रकार बाप-बेटा और वैरागी प्रताप इन रत्नत्रय के आलोक से सघ-सुमेरु दिन-दुगुना और रात चौगुना आलोकित हो उठा और सघ के मधुर एव स्नेह भरे वातावरण से तीनो भाव साधक भी चमक-दमक उठे। ठीक ही कहा है कि—

चार मिले चौसठ खिले, बीस रहे कर जोड़।
सज्जन से सज्जन मिले, हुलसे सात्त् क्रोड ॥

तत्पश्चात् सघ एव गुरुदेव ने सुयोग्य पात्र समझकर ६५ दिन के पूर्वाभ्यास के बाद ही अर्थात्—मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा सवत् १९७९ की शुभ वेला मे अत्यन्त समारोह-शान्त वातावरण के क्षणो मे केवल वैरागी प्रताप को जैनेन्द्रीय दीक्षा प्रदान की।

जाए सध्दाए निक्खतो, परियायठाणमुत्तम।
तमेव अणु पालिज्जा, गुणे आयरिय सम्मए ॥

—भ० महावीर

हे जिज्ञासु! जो गृहस्थ जिस श्रद्धा से प्रधान दीक्षा स्थान प्राप्त करने को मायामय काम रूप ससार से पृथक् हुआ, उसी भावना से जीवन पर्यंत उसको तीर्थंकर प्ररूपित गुणो मे वृद्धि करते रहना चाहिए।

शास्त्रीय-अध्ययन

जीवन निर्माण में शास्त्रः—

तवो गुण पहाणस्स. उज्जुमइ खन्ति सजमरयस्स।
परिसहे जिणतस्स, सुलहा सोग्गई तारिसग्गस्स ॥

—दशवैकालिक सूत्र

मुमुक्षु! तपरूपी गुण से प्रधान, सरल बुद्धि वाले, क्षमा और सयम मे तल्लीन, परीषहो को जीतनेवाले साधु को सुगति अर्थात्—मोक्ष मिलना सुलभ है।

शास्त्र वह है—जिसमे जीवन की प्रत्येक गतिविधि का सम्पूर्ण चित्र मिले और जिसमे वैराग्य तथा सयम का मार्गदर्शन हो। शास्त्र का लाभ यही है कि—उससे मानव अपने विचारो को गति देता है। अपने को समाज के अनुकूल वनाता है और अपना समर्पण समाज और धर्म के प्रति करके अपने को पूर्णत लघुभूत वनाता है। अतएव मानव जीवन के नव-निर्माण मे शास्त्र-सिद्धान्त एक मौलिक निमित्त माने गये हैं। वस्तुत शास्त्र उभय जीवन सुधारने की कुजी व तत्त्व रत्नाकर है। **"जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पेठ"** की युक्ति के अनुसार साधक ज्यो ज्यो सिद्धान्तो की गहराई तक पहुँचता है, त्यों-त्यो उस अन्वेपक साधक को महा मूल्यवान द्रव्यानुयोग, कथानुयोग, गणितानुयोग व चरित्रानुयोग आदि नानाविध इष्ट अभीष्ट तत्त्व-रत्नो की प्राप्ति होती है। फलस्वरूप शास्त्ररूपी लोचन प्राप्त हो जाने पर वह मुमुक्षु इतस्तत मिथ्या अटवी मे न भटकता हुआ, निज जीवन मे सम्यक् ज्योति को प्रदीप्त करता है। साथ ही साथ राष्ट्र एव समाज जीवन को भी उसी प्रखर ज्योति मे तिरोहित करने का सुप्रयत्न करता है।

जैसे खाद्य एव पेय पदार्थ इस पार्थिव शरीर के लिए अनिवार्य है उसी तरह कर्म-कीट को दूर करने के लिए शास्त्र-स्वाध्याय एव पठन-पाठन प्रत्येक भव्यात्माओ के लिए जरूरी भी है। फलत विभाव परिणति की इति होकर भूल-भूलैया मे भ्रमित आत्मा पुन स्वधर्म-सुखानन्द मे स्थिर होकर परिपुष्ट, परिपक्व शुद्ध-साधना की ओर अग्रसर होती है। कहा भी है—

ससारविषवृक्षस्य, द्वे फले अमृतोपमे।
काव्याऽमृतरसास्वाद सगम सज्जनै सह ॥

अर्थात्—ससाररूपी विपवृक्ष के दो ही सारभूत फल माने गये है—एक तो स्वाध्यायामृत का रसास्वाद और दूसरा अमृत फल है—गुणी जना की सगति।

मिथ्या श्रुत—एक अधेरा—

श्रुत (शास्त्र) के दो विकल्प माने गये हैं—मिथ्याश्रुत और सम्यक्श्रुत। मिथ्याश्रुत एकान्तवादी असर्वज्ञ पुरुप प्रणीत माना गया है। सभव है—जिसमे कही त्रुटियाँ तो, कही राग द्वेप एव तेरे-मेरे की झलक स्पष्टत झलकती है। एक स्थान पर मडन तो कही अन्य स्थान पर उसी विपय का

उसी लेखक द्वारा खण्डन लिखा मिलता है। इस कारण उसे अनाप्त श्रुत या मिथ्याश्रुत की सज्ञा दी गई है। मिथ्या श्रुत स्व-पर जीवनोत्थान मे सहायक न बनकर बाधक एव रोधक है, तारक नही मारक है, ज्योति नही ज्वाला है और ज्यादा कहे तो मिथ्या श्रुत मृत्यु है, विष है, अशान्ति है, एव दुख का अथाह सागर है। अतएव शास्त्र मे कहा है "सव्वे उम्मग्ग पठ्ठिया" अर्थात् एकान्तवादी जन सभी उन्मार्ग मे चलने वाले होते हैं। अत "दूरओ परिवज्जए" अर्थात् उनका सहवास-उनकी मान्यता-मत पथ को विषवत् समझकर त्याग देना चाहिए।

सम्यक् श्रुत का कार्य क्षेत्र—

अत्थ भासइ अरहा, सुत्त गथति गणहरा निउण।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्त पवत्तेइ॥

अर्थात्—शासन के हितार्थ सूत्रो की प्ररूपणा हुई है—मूल अर्थो के प्ररूपक सर्वज्ञानी अरिहन्त हैं और सूत्रो के रूप मे गुफित करने वाले निपुण ज्ञान निधान गणधर माने गये हैं।

सूत्र का मूल प्राकृत शब्द क्या है? सूत्र को प्राकृत भाषा मे "सुत्त" कहते हैं। जिसका एक अर्थ होता है—सूत्र (सूत) यानी धागा। अभिप्राय है—जो उलझी हुई, बिखरी हुई चीज को एक जगह एक क्रम से जोड देता है। क्रमानुसार से रखी हुई वस्तुओ को पाना आसान होता है—उसमे काफी हद तक स्पष्टता रहती है। सूत्र का दूसरा अर्थ है—सूचना—'सूचनात् सूत्रम्' पाठक वृन्द को पूर्व सन्दर्भ एव अर्थो की ओर इशारा करता है। 'सुत्त' का अर्थ सोया हुआ भी किया गया है। राजस्थानी भाषा मे आज भी 'सुता' कहते हैं। अर्थात् शब्दो मे उसका आत्मा अर्थ एव भाव सोये हुए हैं। अतएव विस्तृत भाव व्यजना की अपेक्षा रहती है।

"आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसवेदनमागम"

—प्रमाणनय तत्त्वालोक

आप्त (सर्वज्ञ) के वचनो से होने वाले पदार्थो के ज्ञान को सम्यक् श्रुत कहा गया है। सर्वथा राग द्वेष के विजेता एव कही जाने वाली वस्तु स्वभावो को अच्छी तरह से सम्पूर्ण पर्यायो को जानता हो और जैसा जानता हो, वैसा ही कथन करता हो अर्थात् भूत-भविष्य व वर्तमानकाल के सर्वथा ज्ञाता हो उन्हे आप्त पुरुष माना गया है। **"तस्य हि वचनमविसंवादि भवति।"** अर्थात्—उस यथार्थ ज्ञाता और यथार्थवक्ता का प्रकथन ही विसवाद रहित होता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि—आप्त वाणी मे न कोई त्रुटि एव न पूर्वापर विरोध रहता है। क्योकि—उनकी शैली नय-निक्षेप प्रमाण आदि तत्त्व गर्भित एव अनवरत गति से बहने वाली समन्वय एव स्याद्वाद सुधा की स्रोतस्विनी रही है। जो समष्टि के कोने-कोने को आर्द्र करती हुई आगे बढती है। स्व-धर्म, एव पर धर्म का सागोपाग यथोचित स्थानो पर विश्लेषण किया मिलता है। हिंसा को हिंसा, पाप को पाप और मिथ्यात्व को मिथ्यात्व ही माना गया है। भले वे कृत-क्रिया कर्म, धर्म अथवा ससार के नाम पर हुए हो। परन्तु **"हिंसा नाम भवेत् धर्मो न भूतो न भविष्यति"** अर्थात्—हिंसा हिंसा ही रहेगी। यह है आगम की गारटी। इस प्रकार सम्यक्श्रुत की दृष्टि मे मानव मात्र को समानाधिकार है। जाति-कुल-परिवार को बढावा न देकर गुणो को मुख्यता दी है। भले उस पार्थिव शरीर पर किसी जाति कुल का सिक्का या मार्का क्यो न लगा हुआ हो! **"यत् सत्य तत् मम"** जीवन विकास के हेतुभूत जो सार तत्त्व हैं—वे मेरे हैं और समस्त समष्टि की बपौती है। यह सम्यक् श्रुत का अमर

उद्घोष और यह है निर्ग्रन्थ प्रवचन की विशेषता—सरलता एव निष्पक्षता । इसलिए—आचार्य समन्त भद्र की भाषा मे—'**सर्वापदामंतकर निरन्त सर्वोदयं तीर्थमिद तवैव**" अर्थात्—हे प्रभु ! आप के प्रवचन पावन तीर्थ मे आधि-व्याधियो का समूल अत हो जाता है । इसलिए सर्वोदय तीर्थ से उपमित किया गया ।

आप्त वाणी की दुर्लभता —

आप्त कथित आगम वाणी की प्राप्ति अतिदुष्कर मानी गई हैं चू कि—मिथ्या सिद्धान्त का फैलाव-पसार जल्दी जन-जीवन मे फैल जाता है । दूसरी वात यह भी है कि—नकली एव सस्ती वस्तु को मानव सत्वर स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है और स्वीकार करने के पश्चात् पुन उसे त्यागना और मुश्किल की चीज है । मिथ्यात्व एक ऐसी वीमारी है, एक ऐसा भयकर कर्दम है जिसके दल-दल मे मानव मक्खी की तरह उलझ जाता है कदाच् कोई धीर-वीर समझू जिज्ञासु ही उस मिथ्या श्रु त कर्दम मे से विमुक्त हो पाता है । इसलिए कहा है—

माणुस्स विग्गह लद्धु', सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
ज सोचा पडिवज्जति, तव खति महिसय ।।

—उत्तराध्ययन सूत्र ३ गा०८

हे जिज्ञासु ! मानव जन्म पा जाने पर भी उस सम्यक् श्रु त धर्म का सुनना दुर्लभ है । जिन वाक्यो को श्रवणगत करके तप क्षमा और अहिंसा धर्म अगीकार करने की अभिरुचि पैदा होती है । अतएव जन्म-जरा मरण की शृ खला को विच्छिन्न एव नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए निश्चयमेव आगम वाणी अचूक औषधि है जीवन है, अमृत है, अनन्त शान्ति-सुधा पूरित है, शुद्ध ज्योति है, जीवन को चमकाने वाला ओज है तेज है, अजेय शक्ति (Power) का श्रोत है, अनन्त वल है, ज्ञान-विज्ञान आदि सर्वस्व आनन्द की कु जी है एव सिद्ध गति का शाश्वत सोपान है ।

गुरु एव शिष्य का सुमेल—

सम्यकश्रु त एव वादीमानमर्दक गुरुप्रवर श्री नन्दलाल जी महाराज श्री का सुयोग मिलने पर तीव्र गति से आप (प्रताप गुरु) का विकास होने लगा । साधु का वाना धारण कर लेने मात्र से ही नव दीक्षित मुनि सन्तुष्ट होकर बैठे नही रहे क्योकि भली-भाति ऐसा आपको ज्ञात था कि—"**यस्मात् क्रिया प्रति फलति न भाव शून्या**" अर्थात्—भावात्मक साधना विना आचरित क्रिया काण्ड के केवल संसारवर्धक माने गये हैं । अतएव वेश-भूषा, रजोहरण-मु हपत्ति व पात्र आदि उपकरण तो मेरी आत्मा ने पहिले भी निमित्त पाकर अनेको वार अगीकार कर लिया है किन्तु इष्ट मनोरथ की पूर्ति हुई नही । वस्तुत अमूल्य इन क्षणो मे अव मुझे ज्ञान एव क्रिया का अभ्यास इस तरह करना है, ताकि—'**पुनरपि जनन पुनरपि मरण**" का चिरकालीन चला आ रहा सिलसिला अवरुद्ध सा हो जावे । ऐसा प्रशस्त चिन्तन-मनन कर आप प्रमाद किये विना ही ज्ञानाभिवृद्धि मे इस तरह जुट गये, मानो कही प्राप्त हुआ काल यो ही वीत न जाय । जैसे किसी को खजाना वटोरने को कह दिया हो । उसी प्रकार विनय-विवेक-एव भक्तिपूर्वक गुरुप्रदत्त ज्ञाननिधि वटोरने मे नव-दीक्षित मुनि जी सलग्न हुए ।

गुरु भगवन्त भी ऐसे-वैसे शिष्य रूपी पात्रो मे ज्ञानामृत नही उडेला करते हैं । निम्न गुणो से ओत-प्रोत पात्र को ही ज्ञानामृत का सुस्वादन-पान करवाते हैं —

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई।
अहस्सिरे सया दते, न य मम्ममुदाहरे॥
नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीलेत्ति वुच्चई॥

—भ० महावीर—उत्त० अ० ११। गा० ४-५

"जो अधिक नही हसनेवाला, इन्द्रियो का सदैव दमन करने वाला, मर्म भरी वाणी का उपयोग न करने वाला, शुद्धाचारी, विशेष लोलुपता रहित, मन्द कषायी, और सत्यानुरागी-शिक्षा शील सम्पन्न हो।" उपर्युक्त सर्व गुण हमारे चरित्र नायक के जीवन मे ज्यो के त्यो हरी खेती की तरह लह-लहा रहे हैं।

गुरुदेव सचमुच ही ऐसे विनयशील-विवेकी अन्तेवासी के लिए अपना विराट् विमल-विपुल हृदय निधान विना सकोच किये उघाडकर उस शिष्य के सामने रख देते हैं। गुरु प्रवर का सचित-अर्जित अखण्ड ज्ञान-विज्ञान भण्डार ऐसे ही अन्तेवासी पात्रो के लिए सर्वदा सुरक्षित रहता है—**"सपत्ति विणीयस्स।"**

साहित्य में प्रवेश —

गुरुदेव की महती कृपा से दीक्षोपरान्त आपने जैनागम तथा जैन-दर्शन साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया। त्वरिता गति से दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, सूत्रकृताग एव आचाराग सूत्र आदि-आदि कई शास्त्र कठस्थ कर लिए गये और समयानुसार हिन्दी साहित्य मे भी साहित्य रत्न पदवी तक की उच्चतरीय योग्यता अतिशीघ्र प्राप्त कर ली। तत्पश्चात् सस्कृत साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया। जिसमे श्रीयुत् स्व० मान्यवर श्री कन्हैयालाल जी भण्डारी इन्दौर वालो का पूरा पूरा सहयोग रहा। अनुदिन भण्डारी सा० की ओर से उत्साहवर्धक पवित्र प्रेरणा मिलती रही—"आप पढते हुए आगे वढते रहे। आप की व्याख्यान शैली और विद्वत्ता अधिकाधिक निखर उठेगी।" फलस्वरूप सस्कृत व्याकरण, कोष, काव्य-न्यायदर्शन एव अन्य सहायक साहित्य का चित्त लगाकर अवलोकन किया। देखते ही देखते आप एक अच्छे व्याख्याता-मनीषी के रूप मे समाज के सम्मुख आ खडे हुए।

करे सेवा पावे मेवा—

स्व० पू० श्री मन्नालाल जी म० त्याग शिरोमणि स्व० पू० श्री खूबचन्द जी म०, स्व० दि० श्री चौथमल जी म० स्व० पू० श्री सहस्रमलजी म० स्व० उपाध्याय श्री प्यारचन्द जी म०, एव दीर्घ जीवी गुरु प्रवर श्री कस्तूरचन्द जी म० आदि अनेकानेक वरिष्ठ मुनिवरो के ससर्ग से आप कुछ ही वर्षों मे एक सफल वक्ता एव विश्लेषण कर्त्ता के रूप मे वनकर अद्यप्रभृति समाज मे एक अनूठा-अनुपम कार्य कर रहे हैं। जो प्रत्येक श्रमण साधक के लिए अनुकरणीय एव जैन समाज के लिए अति गौरव का विषय है। इस प्रकार हमारे चरित्र नायक के भाग्योदय का सर्वस्व श्रेय वादी मान-मर्दक गुरु नन्दलाल जी म० को है। जिनकी महती कृपा से प्रताप एक धर्मगुरु प्रताप वन गया।

समय की मांग—

आज के इस तर्कवादी युग मे सम्यक्-श्रुत स्वाध्याय की महती आवश्यकता है। शास्त्रीय-ज्ञान के अभाव मे आज-समाज, परिवार एव राष्ट्र के वीच अशान्ति की चिनगारियाँ फूटती है। गृह

क्लेश छिडते हैं, दानवता मानव के मस्तिष्क पर छा जाती है और उन्मार्गी भी बनने मे देर नही लगती है। वस्तुत वह साधक एव वह समाज अपने अभीष्ट मार्ग तक न पहुँच पाते हैं और न वास्तविक तत्त्वो का उपचयन भी कर पाते हैं। चूँकि-सम्यक्ज्ञान के अभाव मे मानव सूझता हुआ भी अधा, पगु एव लुला-लगडा माना गया है। अधा-अज्ञानी नर-नारी पग-पग और डग-डग पर ठोकरें खाता हुआ यदा-कदा खूना-खूनी भी हो जाता है। इसलिए भ० महावीर के उद्घोप की ओर ध्यान देना प्रत्येक के लिए जरूरी है—

तम्हा सुयमहिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठगवेसए।
जेणप्पाण परं चेव, सिद्धि सपाउणेज्जासि ॥

—भ० महावीर—उत्तराध्ययन अ० ११। गा० ३२

अतएव मोक्षाभिलापी मुमुक्षुओ को चाहिए कि—उस श्रुतज्ञान को सम्यक् प्रकार से समझे और पढें—जो निश्चयमेव अपनी और दूसरो की आत्मा को अपवर्ग (मोक्ष) मे पहुँचाने वाला है।

गुरुवर्य की परिचर्या

गुरु नन्द का स्थिरवास —

"विहार चरिया इसिण पसत्था" यद्यपि विहारचर्या मुनिजन को अति अभीष्ट है और तदनुसार श्रमण-श्रमणी विहार करते हुए गाव-नगर-पुर-पाटनावासियो मे धार्मिक चेतना-जागृत करते हैं। इस महान् उद्देश्य को लेकर उनका पर्यटन-परिभ्रमण हुआ करता है। शास्त्रविधान का स्पष्टत उद्घोष यही बताता है कि—"मुने! तू पानी के स्रोत की तरह विशुद्धाचारी बनकर आस-पास के जन-मानस को ज्ञान पथ से प्लावित करता हुआ आगे से आगे बढना। तेरी सयम यात्रा का पवित्र प्रवाह निरन्तर प्रवाहमान रहे। चूँकि—तेरे जीवनाश्रित जन-जन का हित निहित है।" तथापि श्रमण, जीवन पर्यंत के लिए विशेष शारीरिक कारण वशात् किसी एक सुयोग्य स्थान पर रुक भी सकता एव रह भी सकता है। कारण यह है कि—साधन (शरीर) जीर्ण-शीर्ण अवस्था को पहुँच चुका है। अतएव एक स्थान पर रुके रहना, यह भी शास्त्रीय मर्यादा और सर्वज्ञ-आदेश की परिपालना ही है।

इसी नियमानुसार गुरु भगवन्त श्री नन्दलाल जी म० भी शारीरिक अस्वस्थता के कारण काफी अर्से तक रतनपुरी (रतलाम) नीमचौक जैन स्थानक मे विराजते रहे। लघु शिष्य के नाते श्री प्रतापमुनि जी को भी गुरु-परिचर्या एव अधिकाधिक ठोस शास्त्रीय अध्ययन करने का सुअवसर सहज मे ही हाथ लगा।

गुरु का वात्सल्य —

शिष्य के लिए गुरु का वात्सल्य जीवनदायिनी शक्ति के समान होता है। उनके बिना शिष्यत्व न पनपता है और न विकास-प्रकाश पाकर फलदायी ही बन सकता है। शिष्य की योग्यता गुरु के स्नेह को पाकर धन्य-धन्य हो जाती है। और गुरु का वात्सल्य शिष्य की योग्यता पाकर कृत कृत्य होता है। गुरु के प्रति शिष्य आकृष्ट हो, यह कोई विशेष बात नही है। किन्तु जब शिष्य के प्रति गुरु प्रवर आकृष्ट होते हैं, तब वह विशेष बात बन जाती है। गुरुदेव श्री नन्दलाल जी म० के पास दीक्षित होकर तथा उनका सान्निध्य पाकर आपको जो प्रसन्नता प्राप्त हुई थी, वह कोई आश्चर्य जनक बात नही थी। परन्तु आपको शिष्य रूप मे प्राप्त कर स्वय गुरुदेव को जो प्रसन्नता हुई थी, वह अवश्य ही आश्चर्यजनक थी। आप ने गुरु प्रवर का जो वात्सल्य पाया था, वह निःसन्देह असाधारण था। एक ओर जहाँ वात्सल्य की असाधारणता थी, वहाँ दूसरी ओर नियन्त्रण तथा अनुशासन भी कम नही था। कोरा वात्सल्य उच्छृखलता की ओर घसीटता है, तो कोरा नियन्त्रण वैमनस्य की ओर ले जाता है, पर जब जीवन मे वात्सल्य, नियन्त्रण एव ज्ञान तीनो के सुन्दरतम समन्वय की त्रिवेणी हिलोरें मारने लगती हैं तथा जीवन मे प्रत्येकवस्तु-विज्ञान का नाप-तोल एव सन्तुलन सुयोग्य रहता है तब वह सन्तुलन ही जीवन के हर क्षेत्र मे साधक को, शिष्य को और सन्तान को उन्नति के शिखर पर पहुँचाता है।

सिद्धान्त की तह मे —

सिद्धान्त में विनीत अन्तेवासी उसी को अभिव्यक्त किया है—"जो अधिक से अधिक ज्ञान निधि पाकर विनम्र रहता है, ससार में वह यशस्वी होता है। जिस प्रकार पृथ्वी पर असख्य प्राणी आश्रय पा लेते हैं उसी प्रकार नम्र व्यक्ति के हृदय में सद्गुण आश्रित होते हैं।"

—उत्तराध्ययन १।४

"जो गुरुजनो की सेवा और विनय करता है, उसकी शिक्षा मधुर जल से सींचे गए वृक्ष की तरह अच्छी तरह फलती फूलती है।" —दशवैकालिक ६।१२

"जिन गुरुजनों के चरणो में बैठकर ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उनका सदा आदर और सम्मान-सत्कार करना चाहिए, वाणी से भी और व्यवहार से भी।" —दशवै० ६।१२

प्रसन्न चित्त होकर प्रकृति देवी ने स्वभावत ही विनय गुण हमारे चरित्र नायक के जीवन मे इस तरह कूट-कूट कर भर दिये हैं। मानो विनय गुण की साक्षात् मुस्कराती प्रतिमा ही हो। आप जव अपने गुरुदेव अथवा वडे-वुजर्ग मुनिवरो की वैयावृत्य करने मे तन्मय हो जाते हैं, तव आप को अतुलित आनन्द, अपार शान्ति-प्रसन्नता की अनुभूति होती है। मेरा समय, मेरा जीवन सफल हुआ, ऐसा मानते हुए वार-बार अपने भाग्य को सराहते रहते है—अरे प्रताप! **"सेवाधर्म परमगहनो योगिनामप्यगम्य"** अर्थात्—सेवा धर्म परम गहन है, योगी जन भी जिसका किनारा पाने मे यदा-कदा हार जाते हैं वह शुभावसर तुम्हे मिला है। जो साक्षात् आनन्द का नन्दनवन, कल्पतरुवत् सर्व मनोरथ पूरक, सर्व चिन्ताओ को शमन करने मे चिन्तामणि रत्न से भी ज्यादा है, सर्व गुण रत्नाकर और सन्तोष का अक्षय कोप है। अतएव गुरु परिचर्या-सेवा सरिता मे डुवकी लगाकर जीवन-चद्दर को क्यो न धो लिया जाय ?" सचमुच ही महा मनस्वियो का मिलाप पूर्व पुण्य का प्रतीक माना गया है। उसी प्रकार शान्त-स्वभावी गुरु और विनीत अन्तेवासी का मेल भी एक महान कार्य का द्योतक है। **"रमए पण्डिए सासं, हय भद्द व वाहए"** जिस प्रकार उत्तम घोडे का शिक्षक प्रसन्न होता है, वैसे ही विनीत शिष्य को ज्ञान देने मे गुरु भी प्रसन्नचित्त होते हैं।

गुरु प्रवर का शुभाशीर्वाद —

योग्य विनीत-वैयावृत्त्यसम्पन्न विद्वद् व्याख्याता शिष्य की गुरु को सदैव चाहना रही है। हमारे चरित्रनायक द्वारा की जाने वाली सेवा भक्ति मे आकृष्ट होकर गुरु भगवन्त श्री नन्दलाल जी म० सदैव प्रभावित-प्रफुल्लित रहते थे और "प्रताप" नाम से न पुकार कर "कूका-कूका।" इस प्रकार सीधी सादी मीठी मृदु भापा मे ही पुकारा करते थे। इससे स्वत मालूम हो जाता है कि—गुरुदेव की अनन्य-अद्वितीय कमनीय कृपा आप (प्रताप गुरु) पर रहती थी। फलस्वरूप किसी खास कारण के अतिरिक्त सदैव आप को अपनी सेवा मे ही रखते थे। ऐसे महामहिम निर्ग्रन्थ गुरु के सान्निध्य मे रहने से तथा अनेकानेक मनस्वी० मुनि वरिष्ठो के शुभाशीर्वाद से दिन दुगुनी और रात चौगुनी आप की प्रगति अविराम होती रही।

"आणाए धम्मो आणाए तवो" शास्त्रीय नियमानुसार गुरु एव तत्कालीन शासन शिरोमणि आचार्य प्रवर के अनुशासन में रहना, उनके वताए हुए आदर्श-आदेशो को मनसा-वाचा-कर्मणा कार्यान्वित करना, सच्ची सेवा, वास्तविक धर्म की सज्ञा एव शासन के प्रति वफादारी का सबल सवूत

विहार और प्रचार

वहता पानी निर्मला

वहता पानी निर्मला, पडा गदीला होय ।
साधु तो रमता भला, दोष न लागे कोय ॥

वहता हुआ पानी का प्रवाह निर्मल होता है, वहती हुई वायु उपयोगी मानी है, कलित-चलित झरने मानव मन को आकृष्ट करते हैं, एव गतिमान नदी-नाले मानव और पशु-पक्षियो के कलरवो से सदैव गुंजित व सुहावने-सुरम्य प्रतीत होते हैं। उसी प्रकार सूर्य-शशि भी चलते-फिरते शोभा पाते हैं। अर्थात्—विश्व-वाटिका के अचल मे उदयमान तत्त्व जितने भी विद्यमान हैं, वे सव के सव जहाँ तक उपकार एव सेवा के विराट् क्षेत्र मे रमते रहते है वहाँ तक दुनिया के सिर मोड के रूप मे सर्वत्र आद्रित एव सम्मानित होते हैं।

उसी प्रकार साधु-सस्था भी जहाँ तक सामाजिक, धार्मिक, आत्मिक कार्यों मे जुडी हुई रहती है एव उनका गमनागम इधर-उधर चालू रहना है, वहाँ तक मानव-समाज मे साधु-जीवन के प्रति मान-सम्मान-प्रतिष्ठा-प्रभाव ज्यो का त्यो रहता है। साधक-जीवन मे शिथिलता न आकर सयम मे सुदृढता रहती है। वस्तुत उपेक्षा के वदले जन-जन मे सदैव अपेक्षा (चाहना) वनी रहती है। दीर्घ उत्ताल तरग मालायें, सतप्त वालुकामय मरु-प्रदेश, कटकाकीर्ण विजन पथ, ऊँचे नीचे गिरि-गह्वर उनके पाद विहार को नही रोक सके। जनहित तथा आत्म-कल्याण की भावना ने उनको विश्व के सुदूर कोने-कोने तक पहुचाया। उनका यह अभियान स्वर्ण खानो की खोज के लिये अथवा तैल कूपो की शोध के लिये या कही उपनिवेश स्थापित करने के लिये नही हुआ था। परन्तु हुआ था अशान्त विश्व को शान्ति का अमर सन्देश देने के लिये, द्वेप-दावानल मे झुलसते ससार को भ्रातृत्व के एक सूत्र मे बाधने के लिये और अज्ञानान्धकार मे भटकती जनता को सत्पथ प्रदर्शित करने के लिये। अद्यावधि वही विहार क्रम गतिमान है। आधुनिक यातायात के ढेरो साधन सुगमतापूर्वक उपलब्ध होने पर भी जैन साधु पाद विहार करते हुए देश के एक कोने से दूसरे कोने मे पहुच जाते हैं। उनकी इस निस्पृह सेवा की भावना समूचे जगत के लिए आदर्श है।

हाँ तो, सवत् १९९३ के रतलाम चातुर्मास के वीच गुरुदेव श्री नन्दलाल जी म० का स्वर्गवास होने के पश्चात् आपने भी अपना वर्षावास पूर्ण किया और साथ ही साथ अन्यत्र क्षेत्रो की ओर विहार प्रचार करने का निश्चय भी किया। क्योकि जो श्रमण-श्रमणी वर्ग भ्रमण करने मे सर्वथा-समर्थ एव सव दृष्टि मे योग्य होते हुए भी धर्म-प्रचार एव मानवीय सेवा करने मे आलस्य का सहारा लेते हैं, आँखें चुराते एव न्याती-गोती-पारिवारिक सदस्यो के व्यामोह के जाल मे उलझे रहते हैं, वे साधक अवश्यमेव दुष्प्राप्य सयमी-जीवन मे प्रगट किंवा प्रच्छन्न रूप से दोष लगाते हुए यदा-कदा सयम सुमेरु से इतो भ्रष्ट [illegible] भी हो जाते हैं।

प्रचार का प्रथम चरण —

निश्चयानुसार आप अपने सहपाठी-सह विहारी मस्तयोगी मुनि श्री मनोहरलाल जी म० को साथ लेकर मालवे के अनेकानेक सर सब्ज क्षेत्रो को पुन जिनवाणी से प्लावित करते हुए जन-मानस मे शुद्ध श्रद्धा के भाव प्रस्फुटित करते हुएँ एव जहाँ-तहाँ सुप्त-ससारियो को उद्वोधन देते हुए खानदेश-स्थली मे प्रविष्ट हुए।

भगवद्वाणी से भूखी-प्यासी खानदेशीय जनता आप मुनिद्वय की मधुर वाणी का सश्रद्धा पान करने लगी एव स्थान-स्थान पर व्याख्यानो का सुन्दर आयोजन जनता द्वारा होने लगे। वस्तुत घर-घर मे चर्चा ने वल पकडा—"ये दोनो मुनि क्या आए है, मानो रवि-शशि के मानिन्द चमक-दमक रहे हैं और वाणी का प्रवाह भी इतना लुभावना एव जन-मानस को खीचने मे जादू सा प्रतीत हो रहा है। मानो शशि प्रताप मुनि जी है, तो मार्तण्ड मनोहर मुनि जी म० की किरण-ललकार है।" इस प्रकार मुनिद्वय के जहाँ-तहाँ गुण-गौरव गान गूँजने लगे और मुनियो की निर्लोभता, ऋजुता एव नि स्पृहता को देखकर इतर जन समूह भी श्रमण जीवन की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगा।

निस्पृहता की महक: —

वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो निस्पृहता-निस्वार्थता पूर्वक जैन भिक्षु जितना विश्व का भला कर सकता है, उतना अन्य साधु-सन्यासी-यति आदि कोई नही कर पाते है। कारण कि—अन्य के पीछे सासारिक राग-वन्धन वधे रहते है, कई प्रकार की समस्याएँ, एव उलझने-उपाधियाँ मुँह फाडे खडी रहती हैं। जो केवल धन सम्पत्ति से ही पूर्ण हो सकती है। **"माया को निवारी फिर माया दिल धारी है"** इस कवितानुसार वे साधक जिस कार्य मे हाथ डालते है, तो उनके पीछे लोभ-लालच का प्रावल्य छाया रहता है। तत्कार्य की पूर्ति के लिये धन की चाहना ज्यो की त्यो सदैव बनी रहती है। फिर उन्हीं कार्यों की पूर्ति के लिये जनता की खुशामद, गुलामी, एव दानवीर पुण्यवान्-भाग्यवान् आदि बिना मूल्य के न जाने कितने ही विशेपणो को लगाकर उस विशेष्य को सजाना पडता है।

उपर्युक्त वीमारी से जैन श्रमण निर्लिप्त रहा है। अतएव जैन श्रमण के तपोमय जीवन की सौरभ सर्वत्र ससार मे प्रसारित है। मुझे अच्छी तरह स्मरण है—अनेको वार स्व० प० नेहरू एव आचार्य विनोवा भावे ने भी कहा था कि—"पाद-विहार द्वारा जितना जन कल्याण एव पथ-दर्शन जैन-मुनि कर सकते हैं। उतना अन्य साधक कदापि नही कर पाते हैं।" यही मौलिक कारण है कि—जैन श्रमण के प्रभाव से भावुक-भद्र जनता शीघ्र ही आकृष्ट-आनन्दित एवं धर्म के सम्मुख होती है।

आचार्य प्रवर के दर्शन —

इसी समुज्ज्वल वृत्ति के अनुसार आपने अपनी सफल यात्रा तय करते हुए भुसावल नगर को पावन किया। जहाँ पर सशिष्य मडली स्व० श्री मज्जैनाचार्य पूज्य श्री सहस्रमलजी म० अपनी सहस्र ज्ञान किरणो से स्थानीय समाज को आलोकित कर रहे थे। आप दोनो मुनिगण भी आचार्य भगवन्त की पावन सेवा मे आ पहुँचे। दर्शन एव आवश्यक विचार-विमर्श के पश्चात् स० १९९४ का चातुर्मास सर्व मुनि मडल ने आचार्य श्री जी की पावन सेवा मे ही जलगाव सघ के अत्याग्रह पर जलगाव मे ही बिताया। आचार्य प्रवर एव हमारे चरित्रनायक के प्रेरक प्रवचनो के प्रभाव से आशातीत चतुर्विध सघ मे धर्म प्रभावना हुई। कई भव्यात्माओ ने समकित लाभ को प्राप्त किया। तदनुसार स० १९९५ का वर्षावास सारी मुनि मडली का हैदराबाद व्यतीत हुआ। वहाँ पर भी अपूर्व धर्म जागृति हुई और कई प्रकार की साधक समस्याएँ आचार्य प्रवर के कर कमलो से सुलझी। इस प्रकार आचार्य देव की अनुमति लेकर सैंकड़ो मील की पाद यात्रा तय करते हुए पुन आप दोनो मुनि रतलाम पधार गये। ●

माना गया है। वह पुत्र एव शिष्य किस काम के जो अपने पिता एव गुरु के रग-रूप स्वभाव, वाणी, एव विद्वत्ता की दिल-खोल कर मुक्तकठ से प्रशसा के पुल तो बान्धते हैं किन्तु उनके बताए हुए मार्ग एव सिद्धान्तो का तनिक भी न चिन्तन, न मनन एव न उन पर चलने की कोशिश करते हैं बल्कि खुलमखुला आदेशो की अवहेलना-उपेक्षा करते हैं। यद्यपि वह गुणो की तारीफ करता है, किन्तु आज्ञा की सम्यक् प्रकार से परिपालना न करने से वह शिष्य कुशिष्य, वह श्रमण पापी श्रमण एव वह पुत्र कुपुत्र माना गया है। "मुहरी निक्कसिज्जइ' अर्थात् सर्वत्र अपमान का भाजन बनता है। हमारे चरित्र नायक सदैव अनुशासन के अनुगामी एव पक्के हिमायती रहे हैं।

असिधारा-सेवा व्रत—

यद्यपि सेवा-धर्म के अनेकानेक विकल्प है—जैसे शारीरिक सेवा, आहार-विहार-निहार सेवा, अनुदिन चरण सेवा मे ही रहना, एव मन-वच-काय त्रिकोणात्मक शक्ति-भक्ति से अनुशासन की परिपालना आदि सेवा-धर्म के मुख्य अग हैं।

आपके जीवन मे सेवा का गूँजता स्वर है, एक तडपन है। एक लग्न है अतएव गुरुराज्ञा को आप सदैव शिरोधार्य करते आए हैं। आपके जीवन का कण-कण और अणु-अणु सेवा सुधारस से ओत-प्रोत है। गुरु भगवन्त की सेवा—शुश्रूषा के साथ-साथ आप सघ-समाज सेवा मे भी उसी प्रकार दत्त चित्त हैं जिस प्रकार लोभी द्रव्य कमाने मे लगा रहता है। आपने अपना मूल मन्त्र सेवा मन्त्र बनाया है। मानो सेवा-भित्ति पर ही आपके पार्थिव देह का निर्माण हुआ हो। शास्त्र मे भी सेवा-धर्म का महान् महत्त्व दर्शाया है जैसा कि—

"अनन्त सुख रूप मोक्ष को प्राप्त करने का पहला मार्ग है—गुरुजनो और वृद्ध पुरुषों की सेवा'—"तस्सेस मग्गो गुरु-विद्ध सेवा।"

—उत्तराध्ययन ३२।३

जो विशुद्ध हृदय से दूसरो की सेवा करता है, वह महान् पुण्य करता है। सेवा की उत्कृष्ट भावना के कारण वह तीर्थंकर गोत्र भी बाध लेता है। "वेयावच्चेण तित्थयर नाम गोत्त कम्म निबन्धइ।"

—उत्तराध्ययन २९

जिसका कोई नहीं है। उसका खुद बनकर उसे धैर्य दें, सभाले और उसकी यथोचित सेवा की व्यवस्था करें। जैसा कि—"असगहिय परिजणस्स सगहिता भवइ।"

—श्री स्थानाग और दशाश्रुत स्कन्ध

वृद्ध और रुग्ण आदि के साथ मधुर वचन बोलना और उनकी इच्छा के अनुसार प्रवृत्ति करना, सेवा सहायता है।" "सव्वत्थेसु अपडिलोमया सत सहिल्लया।"

—दशाश्रुत स्कध ४

आज का तकाजा—

आज इस पवित्र सेवाधर्म से मानव आख चुराता है। उपहास करता है एव उपेक्षा भरी निगाह से निहारता है। कही शरीर थक न जाय। कही धन मे हरजाना न पड जाय एव कही विपरीत फल की प्राप्ति न हो जाय। इस प्रकार मानव एव साधक मौका आने पर भी सेवा कार्यो से आख चुराते हैं। वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो सेवा ही जीवन है, यह शरीर-प्राण इन्द्रियाँ एव यह विपुल धन-सपदा जीवन नही, ये जीवन निर्वाह के साधन मात्र है। जीवन तो उपर्युक्त सर्व साधनो द्वारा सेवा-सौरभ प्राप्त करने का नाम है। दर्शित सर्व साधन प्राप्त होने पर भी जो नर-नारी एव जो साधक सेवा-धर्म से खाली रहते हैं उनसे और क्या आशा रखी जाय ?

स्वाभाविक सुन्दरता (Natural Beauty)

सेवा-धर्म की स्वाभाविक सुन्दरता (Natural Beauty) से हमारे चरित्रनायक जी म० का जीवन महक उठा है। इस कारण सेवा-धर्म से उनके जीवन को पृथक् करना एक असाध्य काम है। आपकी साधना का विशाल-विराट् दृष्टिकोण एक सेवाधर्म एव अध्ययन-अध्यापन पर ही टिका हुआ है। ऐसे महा-मनस्वियो का जीवन वसुन्धरा के लिए वरदान स्वरूप माना है।

हा तो, गुरु प्रवर श्री नन्दलाल जी म० का सवत् १९९३ के वर्ष मे रतलाम नगर मे स्वर्गारोहण हुआ। उस समय आप (प्रताप गुरु) का वर्षावास जावरा नगर मे था। वस्तुत अन्तिम गुरु पाद-परिचर्या करने का महामूल्यवान अवसर हाथ नही लगा। तथापि काफी समय आपका गुरु भगवन्त की सेवा-भक्ति मे ही बीता है।

सेवा का पथ जगतीतल पे, बडा कठिन बतलाया है।
सेवा व्रत असिधारा सा, रिषि मुनियो ने गाया है।

दिल्ली का दिव्य चातुर्मास

"परोपकाराय सता विभूतय' तदनुसार सवत् १९९९ का वर्षावास सघ के हितार्थ रतलाम मे ही सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् मन्दसोर निवासी श्रीमान् वसन्तीलाल जी दुगड (तपस्वी श्री वसतिलालजी म०) की भागवती दीक्षा आपके पावन चरणो मे सम्पन्न हुई। फिर क्रमश दिल्ली, सादडी-मारवाड, ब्यावर, जावरा, शिवपुरी, कानपुर मदनगज, इन्दौर, अहमदाबाद, पालनपुर, एव बकाणी आदि क्षेत्रो मे चिर स्मरणीय चातुर्मास पूरा करने के पश्चात् सकल सघ दिल्ली के श्रावक समाज के अत्याग्रह पर गुरु प्रवर श्री प्रतापमलजी म० तत्त्व महोदधि प्रवर्त्तक श्री हीरालालजी म० तरुण तपस्वी मुनि श्री लाभचन्द जी म० तपस्वी श्री दीपचन्द जी म० तपस्वी श्री वसतिलाल जी म० एव नवदीक्षित श्री राजेन्द्र मुनि जी म० आदि मुनिवरो ने महती कृपा कर सवत् २००८ के चातुर्मास की स्वीकृति चान्दनी चौक दिल्ली श्रावक समाज को प्रदान की। यह चातुर्मास अनेक महत्त्वो को लेकर ही निश्चित हुआ था।

सयोग वशात् उस वर्ष दिगम्बराचार्य स्व० श्री सूर्य सागर जी म० एव श्वेताम्बर तेरापथ के आचार्य तुलसी जी म० का चातुर्मास भी इस वर्ष दिल्ली मे ही मजूर हुआ था। अतएव स्था० सघ ने आप मुनिवरो का यह वर्षावास दिल्ली करवाना अति महत्त्वपूर्ण समझा। तदनुसार विनती स्वीकृति की सूचना सकल समाज मे फैलते ही जहाँ-तहाँ हर्ष-खुशी का वातावरण छा गया। घर-घर मे अपूर्व चेतना अगडाई लेने लगी। मानो उमगोल्लस की त्रिवेणी-फूट पडी हो। स्थानकवासी-समाज मे एक ही चर्चा चल पडी थी कि—आचार्य प्रवर श्री खूबचन्द जी म० के विद्वद्वर्य गुरु भ्राता श्री प्रतापमलजी म० एव प० रत्न श्री हीरालाल जी म० अपनी सशिष्य मडली के साथ पधार रहे हैं। पूज्य प्रवर पहले अनेकों वर्षों तक चान्दनी-चौक के भव्य-रम्य स्थानक मे शारीरिक कारण वशात् विराज चुके थे। वस्तुत उन के त्याग-तपोमय जीवन की अखण्ड-अमिट छाप दिल्ली के प्रतिष्ठित श्रावको के मन-स्थली पर ही नही, अपितु अबाल वृद्ध भक्त मण्डल के दिल-दिमागो पर ज्यो की त्यो उन दिनो मे थी और आज भी है। इसलिए सघ मे सन्तोष-शान्ति की मदाकिनी बहना स्वाभाविक ही था। इस प्रकार काफी जन समूह के साथ आप मुनिवृन्दो का नगर प्रवेश सम्पन्न हुआ।

चातुर्मास प्रारम्भ के पूर्व ही व्याख्यानो की धूम-सी मच गई। हृदयस्पर्शी उपदेशो के प्रभाव से चारो ओर से जनप्रवाह उमड घुमड कर आने लगा। कुछ दिनो बाद आ० सूर्य सागर जी म० से भेंट हुई। ये मुमुक्षु वे ही थे—जो पहले कोटा के विशाल प्रागण मे श्रद्धेय दिवाकर श्री जी महाराज और आप (आ० सूर्यसागर जी म०) का कई बार प्रेममय साधु मिलन व कई बार व्याख्यान भी साथ हो चुके थे। दिल्ली-सघ के इतिहास मे भी शायद यह प्रथम घटना ही थी कि—दिगम्बराचार्य एव स्थानकवासी साधु इस प्रकार सस्नेह मिल-जुल कर सघ-समाज हिताय सुखाय बातचीत, विचारो का आदान-प्रदान करें व नवीनतम सामूहिक योजनाओ का श्री गणेश भी। बस, दोनो समाजो के बीच मैत्री-प्रमोद भावनाओ का सूत्रपात हुआ। एक दूसरे, एक दूसरे के सन्निकट आये एव नाना प्रकार की मिथ्या-भ्रातिया भी दूर हुई।

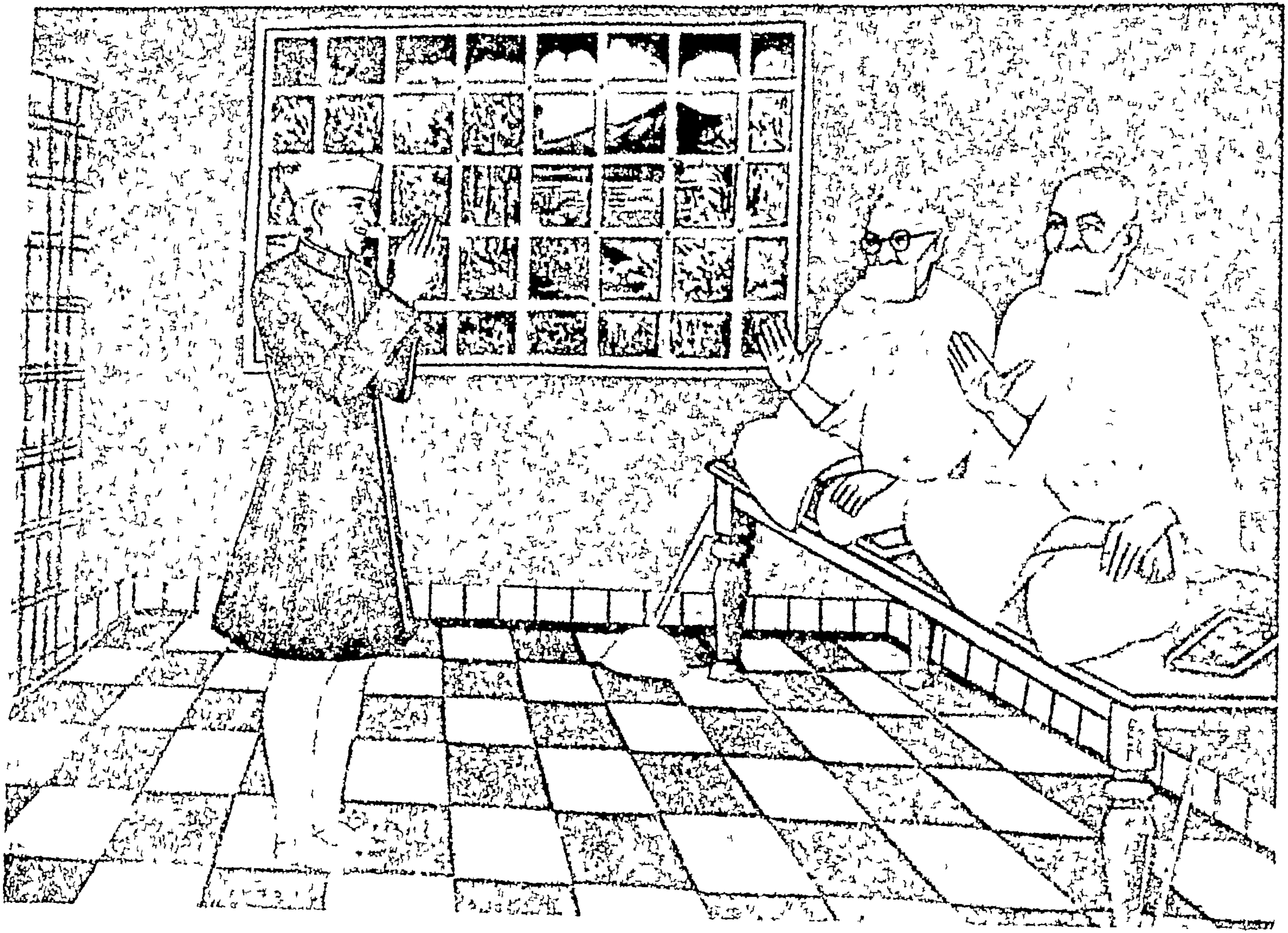

मेवाडभूषण श्रीप्रतापमलजी महाराज एव प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज
भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू को धर्मोपदेश करते हुए ।

तत्पश्चात् उभय सघो के भागीरथ सत्प्रयत्नो से गुरुप्रवर श्री प्रतापमल जी म० शास्त्रवारिधि पडितवर्य श्री हीरालाल जी म० एव आ० श्री सूर्य सागर जी म० के 'श्री हीरालाल हायर सेकेन्डरी स्कूल' मे हजारो जन मेदिनी के समक्ष सम्मिलित व्याख्यान हुए। जिससे जैन धर्म की महती प्रभावना हुई।

इस वर्ष तेरापथ सप्रदाय के आचार्य तुलसी का भी दिल्ली मे ही चातुर्मास था। जनता मे साम्प्रदायिक भेद-भावनाये जागृत हो उठी थी। गुरुप्रवर आदि मुनिवरो ने वहुत वुद्धिमानी तथा विवेक के साथ स्थिति को सभाला, जिससे कोई अनिष्ट घटना न हुई। शान्ति के साथ चातुर्मास सम्पूर्ण होना आप की सूझ पूर्ण तथा व्यावहारिक वुद्धि का ही परिणाम था।

विविध कार्यक्रम

इस वर्ष दशलक्षणी (पर्युपण) पर्व वडे ही ठाट-वाट के साथ मनाया गया। क्योकि—दोनो (दिगम्बर और स्थानकवासी) मुनियो के छ स्थानो पर सम्मिलित भापण हुए। वस्तुत जनता तथा समाज पर वहुत अच्छा प्रभाव पडा। तथा जैनमात्र एक है, ऐसा अनुभव कर सभी प्रसन्न हुए।

विश्व-मैत्री-दिवस

दशलक्षणीपर्व के उपरान्त ही क्षमापना के दिन समस्त जैन समाजो की ओर से काका कालेलकर की अध्यक्षता मे एक विश्व मैत्री दिवस मनाने का आयोजन किया गया। इस विशाल महत्त्व-पूर्ण आयोजन मे गुरुप्रवर श्री प्रतापमल जी म०, प० श्री हीरालाल जी म० एव आचार्य श्री तुलसी भी सम्मिलित थे जिसमे हजारो जनता की उपस्थिति थी।

विश्व कल्याण-जपोत्सव

सात अक्टूवर रविवार को वारहदरी मे एक विश्व-कल्याण जपोत्सव मनाया गया। उसका उद्घाटन ससद के डिप्टी स्पीकर श्री अनन्तशयन आयगर ने किया था। इस उत्सव मे आचार्य सूय सागर जी म०, गुरुप्रवर श्री प्रतापमल जी म० प० रत्न श्री हीरालाल जी म०, प्रसिद्ध साहित्यिक जैनेन्द्र जी तथा अक्षयकुमार जी एव नगर के अन्य गण्य मान्य अनेकानेक सज्जन उपस्थित थे।

इस प्रकार मुनित्रय के नाना विपयो पर पीयूपवर्पी प्रवचन होते रहे। हजारो नर नारी इस प्रकार के अपूर्व उत्सवो को देख-भाल कर अपने को धन्य मानते थे। अन्य और भी वात्सल्यपूर्ण धर्म प्रचारार्थ किये गये आयोजनो से इस वर्प का यह वर्पावास आशातीत सफल रहा। जिसका विस्तृत विवरण एक स्वतन्त्र पुस्तिका के रूप मे अन्यत्र प्रकाशित हो चुका है।

सफल चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् मुनिमण्डल का चादनी चौक से प्रस्थान हुआ। श्रद्धेय श्री हीरालाल जी म० अपनी शिष्य मण्डली को लेकर पजाव की ओर पधारे और गुरु प्रवर श्री को कुछ दिनो तक दिल्ली के उप नगरो मे ही रुकना पडा। कारण कि आप के सान्निध्य मे ९ दिसम्वर ५१ को टाऊन हाल मे श्री जैन दिवाकर प० रत्न श्री चौथमल जी महाराज के अवसान दिवस पर सर्व धर्म सम्मेलन का आयोजन किया गया था। जिसका सफल नेतृत्व हमारे चरित्रनायक जी ने ही किया। इस सम्मेलन मे समस्त धर्मो के समन्वय का सराहनीय प्रयत्न किया गया तथा विभिन्न धर्मानुयायी विद्वानो के सार गर्भित भापण हुए। भारतीय विद्वानो के साथ-साथ सम्मेलन मे कुछ विदेशी विद्वान भी सम्मिलित थे।

कानपुर की ओर कदम

इस प्रकार दिल्ली के पवित्र प्रागण मे अनेकानेक प्रेरणादायी धार्मिक उत्सव सम्पन्न हुए और हो ही रहे थे कि—श्रद्धा-भक्ति का उपहार लेकर कानपुर सघ का एक प्रतिनिधि मडल गुरु भगवत की सेवा मे आ पहुचा। परोपकारी गुरुवर्य ने भी समयानुसार क्षेत्र स्पर्शने की मजूरी फरमाई और तत्काल उत्तर-प्रदेश की ओर प्रस्थान भी कर दिया।

उत्तर प्रदेश अनेक महामनस्वी तीर्थकरो की एव मुनिपुगवो की जन्म एव पावन विहार स्थली रही है। एतदर्थ उस भूमि का कण-कण पवित्र हो, उसमे आश्चर्य ही क्या? उस प्रदेश मे काफी लम्बे-चौडे समतल मैदान पाये जाते हैं। भारत-प्रसिद्ध गगा यमुना नदियां उस प्रदेश के ठीक बीचो-बीच उछलती-कूदती हुई बहती है। वस्तुत सरिताओ के इत और उत कूलो पर बडे-बडे नगर शहर बसे हुए हैं। जल की अधिकता के कारण जहां-तहां देश सर-सब्ज एव हरा-भरा है। आगतुक यात्रियो की दृष्टि को सहज ही आकृष्ट-आनन्दित करता है। जन-जीवन भी भारतीय-सस्कृति एव धार्मिक सस्कारो के अनुरूप दृष्टिगोचर होता है। 'अतिथि सत्कार' उस देशीय नर-नारी का मुख्य एव आदरणीय गुण है। विद्या-विनय-विवेक त्रिवेणी का सुन्दरतम सगम उत्तर प्रदेशीय जनता को सहज मे ही उपलब्ध हुआ है। अतएव जनता अधिकरुपेण सुशिक्षित-सुविचारी एव मधुरभाषी है। उपर्युक्त गुणो का अनुभव करते हुए गुरुप्रवर, मुनि मडली सहित आगरा पधारे।

यहां पर पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्र जी म० एव प० रत्न श्री प्रेमचन्द जी म० आदि मुनिवरो के दर्शन हुए। पारस्परिक सौहार्द स्नेहता पूर्वक विचारो का आदान-प्रदान हुआ। इतने मे पजाब की ओर पधारे हुए प्र० श्री हीरालाल जी म० आदि सन्तो का शुभागमन भी यही हो गया। सर्व मुनि मण्डल का वह मधुर मिलन, समाज को सुसगठन की ओर प्रेरित कर रहा था। काफी दिनो तक आगरा विराजे। स्थानीय सघ मे कई शुभ प्रवृत्तिया हुई, तत्पश्चात् आए हुए छहो मुनियो ने कानपुर की ओर कदम बढाए।

कानपुर भारत के मुख्य नगरो मे से आठवां नगर और उत्तर प्रदेश का प्रथम वैभव सम्पन्न औद्योगिक नगर माना गया है। जहाँ लाखो जन आबादी की गडगडाहट, वाणिज्य-व्यापार की विस्तृत मडी एव छोटे-मोटे सैकडो कल कारखाने सचारित होकर नगर को घेरे हुए हैं। भारी परिश्रम पूर्वक स्व० श्रद्धेय गुरुदेव श्री चौथमल जी म० ने यहाँ चातुर्मास करके रत्नत्रय के पवित्र पय से इस क्षेत्र का पुन सिचन किया था। उसी समय स्थानकवासी जैन सघ की जडें जमी, सघ मे नई स्फूर्ति अगडाई लेने लगी, नया सगठन हुआ एव अनेक मुमुक्षुओ ने शुद्ध मान्यता के मर्म को समझकर समकित-प्रतिज्ञा स्वीकार की थी। इसीलिए स्थानकवासी जैनो के घर घर मे श्रद्धेय दिवाकर जी म० के प्रति वही श्रद्धा-भक्ति आज भी ज्यों की त्यो विद्यमान है।

गुरु प्रवर श्री प्रतापमल जी म० का भी एक चातुर्मास पहिले यहाँ हो चुका था और कई प्रकार की उलझी हुई साधिक समस्याएँ भीआप की बलवती प्रेरणा से ही हल हुई थी। अतएव जो

श्रद्धा जो भक्ति स्व० श्री दिवाकर जी म० के प्रति थी वही पूज्य भक्ति आपके प्रति भी थी और है। अतएव कानपुर स्था० सघ का आवाल वृद्ध गुरु प्रताप के मधुर व्यवहार से भली-भाति परिचित रहा है।

इस प्रकार कुछ ही दिनो मे मुनिमण्डल का कानपुर नगर मे पर्दापण हुआ। सैंकडो नर-नारियो ने आप के स्वागत समारोह मे भाग लिया। जहाँ-तहाँ आप के जाहिर भाषण हुए। अक्षय तृतीय समारोह भी आपके नेतृत्व मे शानदार ढग से सम्पन्न हुआ। इसी शुभावसर पर स्थानीय सघ के अत्याग्रह से आप छहो मुनिवरो ने स० २००६ के चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान की। सकल सघ के सदस्यो मे आनदोल्लास का वातावरण छा गया।

चातुर्मास लगने मे अभी काफी दिन शेष थे। इस कारण सन्तवृन्द धर्म-प्रचार-विहार करता हुआ लखनऊ आया। यहाँ पर दिगम्बर जैन धर्मशाला मे कई सफल जाहिर प्रवचन, केश लोचन एव सकल जैन समाज की ओर से मुनिवरो के सान्निध्य में 'अहिसा दिवस' भी मनाया गया। वस्तुत स्थानीय सैंकड़ो-हजारो जैन-जैनेतर नर-नारी लाभान्वित हुए। विशेष तौर पर उत्तर प्रदेश के विधान सभा के अध्यक्ष श्री ए० जी० खेर की उपस्थिति मे मुनिवरो के अहिसा और जैन धर्म पर ओजस्वी भाषण हुए। जिनकी उपस्थित मानव मेदिनी ने दिल खोल कर प्रशसा की एव दैनिक पत्रो मे भी ।
इस प्रकार सफल आयोजन की सौरभ को पत्र-पत्रिकाओ द्वारा सुनकर राज्यपाल ने भी श्रद्धा भरा एक आमन्त्रण स्वरूप पत्र मुनिवरो की सेवा मे भेजा, वह निम्न प्रकार था—

Governer's Camp
Uttar Pradesh
January 8, 19ɔ3

Dear Sir,

With reference to your lether dated Janubary 7, 1953, I am desired to infoim you that Shri Rajyapal will be glad to See Jain Muni Shri Pratapmalji at II A M. on Saturday January 17, 19ɔ3 at Raj Bhawan, Lacknow Please inform him accordingly and acknowledge receiht of this letter

Your's Faithfeelhy
For Secrey to the Governer
Uttar Pradesh

To

Shri Pravin lal
Pravin Lal & Company
Lacknow

उपर्युक्त आमन्त्रणानुसार गुरुप्रवर आदि मुनि श्री उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी जी के यहाँ राज्य भवन पधारे। 'अहिसा' पर काफी गहरा विचार विमर्श हुआ।

इस प्रकार लखनऊ की सभ्य जनता ने धर्म-प्रचार मे आशातीत सहयोग प्रदान किया कइयो ने नशीली वस्तुओ का परित्याग भी किया। चातुर्मास काल सन्निकट आ चुका था। अतएव सन्त मडली

को पुन कानपुर पधारना पडा। चातुर्मासिक दिनो मे अच्छी धर्मोन्नति-प्रगति हुई। और सानन्द यह वर्षावास भी व्यतीत हुआ।

चातुर्मासोपरान्त विचरण करते हुए मार्ग मे विभिन्न आचार-विचार वाली उस ग्राम्य जनता को एव स्व० प० नेहरू की जन्म भूमि इलाहबादीय जनता को उद्बोधन करते हुए 'काशी' (वाराणसी) पधारें। प्राप्त प्रमाणो के अनुसार यह निर्विवाद सत्य है कि—काशी नगर सदैव से जैनधर्म का केन्द्र रहा है। खास काशी के कमनीय प्रागण मे तेवीसवें तीर्थंकर प्रभु पार्श्व एव भदैनी घाट समीपस्थ सातवे तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का जन्मकल्याण माना गया है। इसी प्रकार यहाँ से अठारह मील दूर चन्द्रपुरी मे आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभुजी का जन्म, ग्यारहवे श्री श्रेयास प्रभुजी का जन्म और भी अनेकानेक मुनि-मनस्विया के पवित्र पादरजो से यह नगरी गौरवान्वित हो चुकी है। आप मुनिवरो का शुभागमन भी एक महत्त्व पूर्ण ही था।

अवकाशानुसार सारनाथ, पार्श्वनाथ विद्याश्रम एव विश्व विद्यालय आदि-आदि ऐतिहासिक स्थानो का अवलोकन किया गया। चारो सप्रदाय के जैन वन्धुओ ने आपकी अध्यक्षता मे महावीर जयन्ति का विशाल आयोजन सम्पन्न किया। इसी शुभावसर पर झरिया श्री सघ का एक प्रतिनिधि मडल मुनिवरो की सेवा मे वगाल विहार प्रातो को पावन करने हेतु उपस्थित हुआ। मार्गीय कठिनता के विषय मे पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् स्वीकृति फरमाई। तदनुसार विहार प्रान्त की ओर प्रस्थान भी हो गया।

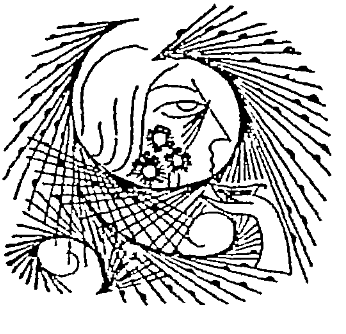

पावन चरणों से वंग-विहार प्रांत

इस प्रकार झरिया सघ का भक्तिभरा डेप्युटेशन (प्रतिनिधि मडल) एव विहार प्रान्त मे विराजित वयोवृद्ध तपस्वी श्री जगजीवन जी म०, प० रत्न श्री जयतिलाल जी म० एव गिरीश मुनिजी म० की वलवन्ती प्रेरणा से छहो मुनिवरो ने वनारस नगर से विहार प्रान्त की ओर प्रस्थान किया। जैन परिवारो की अल्पना के कारण मार्गवर्ती कठिनाइयो का आना स्वाभाविक ही था। तथापि **"मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दु ख न च सुखम्"** तदनुसार परोपकारी मुनि वृन्द भी भावी उपकार की दीर्घ दृष्टि को आगे रखकर खान-पान सम्वन्धित आने वाली अनेक कठिनाइयो की कुछ भी परवाह न करते हुए धीर-वीर एव भावी परिपहो के प्रति वज्रवत् वनकर मुगलसराय व कर्मनाशा स्टेशन तक पहुचे। यहाँ से उत्तर प्रदेश सीमा की समाप्ति और विहार प्रदेश की शुरुआत होती है।

मजदूर वर्ग और सतमडली—

विहार प्रान्त पिछडा हुआ हिस्सा होने के कारण आसपास के ये निवासीगण लूखे-सूखे, नीरस अल्पज्ञ एव रिक्त भक्ति मन वाले जान पड रहे थे। फिर भी मुनिमडली **'चरैवेति-चरैवेति"** वेद के वाक्यानुसार खाद्य समस्या को गौण मानकर कदम आगे से आगे वढाते चले जा रहे थे। येन-केन प्रकारेण टालमिया नगर तक की मजिल तय हो ही गई। यहाँ कल-कारखानो की वजह से इधर-उधर के आए हुए काफी दिगम्वर जैन परिवार वसे हुए है। उद्योग पति सेठ साहू शान्तिप्रसाद जी जैन ने गुरुदेव आदि मुनिवरो के पावन दर्शन किये। जैन-धर्म महात्म्य, अहिंसा एव मानव के कर्तव्य आदि विपयो पर अनेक जाहिर प्रवचन भी करवाए। वस्तुत जैन-जैनेतर समाज काफी प्रभावित हुआ और जिसमे मजदूर वर्ग ने तो काफी सख्या मे उपस्थित होकर गुरु महाराज के समक्ष मद्यमास एव नशीली वस्तु सेवन न करने का नियम स्वीकार किया। इस प्रकार उद्योगपति एव मजदूर वर्ग की ओर से अत्यधिक विनती होने पर कुछ दिनो तक और विराजे फिर आगे कदम वढाए।

विहार-वासियो के लिये नवीनता—

विहारी जनता के लिए स्थानकवासी जैन मुनि नये-नये से जान पड रहे थे। जिस प्रकार, राम-लक्ष्मण वन में जाते समय जनता आखें फाड-फाड कर निहारती थी उसी प्रकार मार्ग मे जहाँ-तहाँ वस्तियाँ आती थी, वहाँ के निवासीगण कही दूर तो कही नजदीक इकट्ठे हो-होकर विस्फारित नेत्रो से देखा करते थे। "अरे! ये कौन हैं? एक सी वेश-भूपा वाले, जिसके मुह पर कपड़ा लगा हुआ है, कधे पर एक श्वेत गुच्छा, पैर नगे एव सौम्य आकृति जान पड रही है। क्या पता ये वोलते हैं कि—नही?" इस प्रकार पारस्परिक वे जन वार्त्तालाप करते थे। कोई-कोई भावुक एव सुशिक्षित विहारी पास मे आकर करवद्ध होकर पूछ भी लेता था "आप कौन हैं? आप की ख्याति, परिचय हम लोग जानना चाहते हैं। आगे आप की यह मडली किधर जा रही है।"

"हम प्रभु पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर के शिष्य-श्रमण (भिक्षु) हैं। आगे हमारी यह

मडली सम्मेद शिखर अर्थात् पार्श्वनाथ हिल्स होती हुई कलकत्ता तक जायगी।" मुनिवरो द्वारा तव यह सरल समाधान पाते ही—वे पृच्छकगण वहुत ही प्रभावित होते। लम्बे के लम्बे मुनि चरणो मे ज्यो के त्यो नो जाते और उठकर यही वोलते कि—"आप तो हमारे देश के गुरु हैं। क्योंकि भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीर स्वामी तो हमारे देश मे ही हुए हैं। इसलिए आप हमारे गुरु और हम आपके शिष्य हैं। हमे शुभाशीर्वाद प्रदान करें और आज हमारे गाव मे रुक कर हमे सन्तवाणी एव भोजन सेवा का लाभ प्रदान करें।"

भक्ति का दिग्दर्शन—

हम वहुत दिनो से केवल इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठो पर लिखित अक्षरो को ही पढते व सुनते थे कि—जैन भिक्षु रात्रि मे न खाते, न पीते हैं, न पैरो मे जूतियाँ व चलने-फिरने मे न किसी तरह की सवारी का उपयोग ही करते हैं। पूर्ण रूप मे ब्रह्मचारी, सदाचारी, सुविचारी, क्षमा के धनी एव जीवदया हित सदैव मुखपर मुख-वस्त्रिका वाधे रहते हैं।" किन्तु इन जीती जागती, चलती-फिरती-मधुर भाषी सौम्य सुन्दर विभूतियो के दर्शन तो हमे गुरुजी ! आज ही हुए हैं। इस प्रकार यत्र-तत्र जनता की भारी भीड विस्मृत सस्कृति का पुन-पुन स्मरण कर भक्ति भाव मे विभोर हो उठती थी। मानो काफी अर्से के परिचित हो, ऐसे जान पड रहे थे। सचमुच ही सच्ची मानवता के दर्शन इन विहार वासियो के जीवन से हो रहे थे। विना कहे कहलाये ही अपने आप समझदार जनता कही पाठशालाओ मे तो कही मन्दिर मठो मे व्याख्यानो का अनुपम आयोजन करती चली जा रही थी, इस प्रकार सैकडो विहार-निवासी मुनियो के सम्पर्क मे आए। अनेको ने हिंसा-मद्य-मास का उपयोग न करने की प्रतिज्ञा स्वीकार की एव अनेको ने विस्मृत जैनधर्म के मौलिक जीवनोपयोगी सिद्धान्तो को पुन स्वीकारा।

उपदेशों का असर—

कई दिनो के पश्चात् मुनिमडल ने मार्ग मे सडक के किनारे पर उवलते हुए जल से भरा एक कुण्ड देखा उसका नाम सूर्यकुड था। इसी सूर्यकुण्ड पर सयोगवश गहलोत राजपूतो की एक जाति-सुधार सभा हो रही थी। इस सभा मे अनेक सज्जनो के सुधार विषयक जोशीले भाषण हो रहे थे। अचानक मुनिवृन्द भी वहाँ जा पहुचा। उपस्थित जन समूह के अत्याग्रह पर मुनियो ने भी अपने भाषण दिये सीधे सरल हृदय-स्पर्शी उपदेशो मे मुनि मडल ने कहा कि—समाज-सुधार तभी सभव है, जव आप सभी मद्य-मासादि सप्त व्यसनो का त्याग करदे। तभी आप के समाज की उन्नति हो सकती है और तभी आप का स्तर ऊँचा उठ सकता है केवल लच्छेदार-भाषणो से नही। समय का ही प्रभाव था कि—उन तामसी प्रवत्ति वाले पुरुषो की भी वुद्धि पलट गई और वे एक स्वर से वोल उठे "हमे स्वीकार है ! हमें स्वीकार हैं।

तत्काल लगभग पाचसौ से अधिक उपस्थित सज्जनो ने मद्य-मासादि का त्याग कर दिया एव सम्मिलित रूप मे एक लिखित प्रतिज्ञा पत्र मुनिवृन्द के चारु-चरणो मे समर्पित किया। वह निम्न पक्तियों मे इस प्रकार है—

प्रतिज्ञा-पत्र—

आज ता० ३०-४-५३ को हमारी गहलोत राजपूतो की जाति सुधार की विशाल सभा हुई।

जिसमे जैन मुनि श्री प्रतापमल जी महाराज और मुनिश्री हीरालाल जी महाराज के मद्य-मांस निषेध पर प्रभावशाली भाषण हुए। जिसको सारी सभा ने मान लिया और महाराज-महात्मा जी को हमारी सभा कोटिश धन्यवाद अर्पण करती है—

सही—
मास्टर बुधनसिह गहलोत
प्रेमचन्द सिंह-अध्यक्ष

मुकाम—सूर्यकु ड
पोस्ट—वरकट्ठा
थाना—वरही
जिला—हजारी बाग

झरिया नगर की झांकी—

क्रमश मार्ग मजिल को पार करते हुए एव प्राचीन ऐतिहासिक जैन जगत सुविख्यात सम्मेद-शिखर शैलावलोकन करते हुए सन्त प्रवर झरिया नगर के सन्निकट पधारे। झरिया शहर व्यापार और विद्या मे विकासोन्मुखी केन्द्र रहा है। अन्य नगरो की तरह यह भी प्रगति के पथ पर आगे बढ रहा है। भूमिगत यहाँ से लाखो टन कोयले प्रतिदिन देश के कोने कोने मे निर्यात होते हैं। इस कारण कोयलो का घर माना गया है। भौगोलिक दृष्टि से और मेरी पावन दीक्षा-स्थली होने के कारण धार्मिक दृष्टि से भी इस नन्हे नगर का वहुत महत्त्व है, इसमे आश्चर्य ही क्या ? सर्व प्रकार की सुविधा-सुगमता के कारण काफी गुजराती जैन परिवार वसे हुए हैं। जिनका सुवलिष्ठ सुगठित अपनी शानी का अनुपम श्री श्वेताम्वर स्थानकवासी जैनसघ वना हुआ है और सघ-विकास की वागडोर कर्मठ एव श्रद्धालु कार्यकर्ताओ के कमनीय कर-कमलो मे प्रगतिशील हो रही है।

मुनियो के शुभागमन की सूचना पाते ही जन-जन मे आनन्दोल्लास का स्रोत उमड पडा। चूंकि मार्गीय कठिनाइयो की वजह से बिहार प्रात मे स्थानकवासी मुनियो का पदार्पण दुर्लभ ही हुआ करता है। इसलिए सैकडो शताब्दियो से तिरोहित उस पवित्र परम्परा का प्रवाह पुन गतिमान हो उठा। सैकडो भावुक मडली ने आपके हार्दिक स्वागत समारोह मे भाग लिया। मानो जैन धर्म की लुप्त-गुप्त शाखा की जगमगाती ज्योति पुन जाग उठी हो। इस प्रकार जय-विजय नारो से अनन्त आकाश गूंज उठा।

काफी दिनो तक मुनिप्रवर विराजे, पर्व सा ठाठ-वाट रहा। दिनो दिन जनता की अभिवृद्धि होती रही। संघ के विकास मे सघ के सदस्यो को नवीन मार्ग दर्शन मिला। कई जाहिर प्रवचनो से वहाँ के नागरिक काफी लाभान्वित भी हुए। इन्ही दिनो कलकत्ता का वृहद् सघ, जिसमे सयुक्त सघ के मुख्य-मुख्य श्रावक मडली सवत् २०१० के चातुर्मास की विनती पत्र लेकर झरिया उपस्थित हुए और इधर झरिया सघ का भी अत्याग्रह था। परन्तु परोपकारी मुनियो को अति विवश होकर कलकत्ता श्री सघ को ही वर्षावास की मजूरी फरमानी पडी। वस, अविलम्ब रानीगज, आसनसोल मे रहे हुए जैन परिवारो को लाभान्वित करते हुए वर्धमान नगर को पावन किया।

भ० महावीर की तपोभूमि वर्धमान—

'वर्धमान' इस शव्द मे एक प्राचीन परम्परा-इतिहास का समावेश है। आचाराग सूत्र मे भी स्पष्ट प्रमाण है कि—यह प्रदेश भ० महावीर की तपोभूमि एवं पवित्र विहार स्थली रही है। जिन्होंने इस प्रदेश मे लगभग वारह वर्ष तक कठोराति कठोर तप तपा था। एतदर्थ सूत्र मे इस प्रदेश को "लाढ"

प्रदेश माना गया है और इतिहास भी इस प्रदेश को "लाढ" प्रदेश के नाम से स्वीकार करता है। भ० महावीर की यह साधना-स्थली थी। इसलिए इस प्रदेश के साथ घनिष्ट सम्बन्ध हो इसमें आश्चर्य ही क्या ? जिसका सबल और स्पष्ट प्रमाण भ० वर्द्धमान के नाम पर जनता द्वारा रखा हुआ—"वर्द्धमान नगर" है। इतिहासकारों का अनुमान भी यह बताता है कि—यह प्रदेश वर्द्धमान नाम से सुविख्यात इसलिए हुआ कि—यहाँ भ० वर्द्धमान स्वामी ने घोरातिघोर तपाराधना सम्पन्न की थी।

चीनी यात्री ह्वेनसांग का उल्लेख—

प्रसिद्ध चीनी यात्री 'ह्वेनसांग' ने भी अपनी भारत-यात्रा वर्णन में ऐसा संकेत अवश्य किया है कि— "यह "लाढ" देश तीर्थंकर वर्धमान की तपोभूमि थी। जहाँ धन धान्य वैभव की विपुलता के कारण जन-जीवन सुखी था। जहाँ-तहाँ जैन धर्म का प्रभाव अधिक दृष्टि गोचर हो रहा था। इस कारण उस देश की भूमि अहिंसा धर्म से महक रही थी और हिंसामय प्रवृत्तियाँ बन्द सी जान पड रही थी।"

कलकत्ते में नव जागरण

शहरी जीवन का दिग्दर्शन—

कलकत्ता हुगली नदी के किनारे पर व समुद्री तट से जुड हुआ, वगाल प्रात का एव भारत के सर्व प्रमुख नगरो मे से प्रथम नगर के साथ-साथ विश्व का पाचवा नगर भी माना गया है। जहाँ सत्तर लाख से भी अधिक मानव समूह निवास करता है।

गगनचुम्बी उन्नत इमारतो से सजा हुआ, सैंकडो कल-कारखानो की गड गडाहट से सदैव शब्दायमान, विशाल-विराट् राजमार्गों की एकसी कतारें, जो विपुल नर-नारियो की भीड-भगदड से भरी-पूरी, मोटरें, तागे, रिक्शे, साइकलें, एव ट्रामो की दौडा-दौड से जो सचमुच ही यदि नवागतुक नर-नारी थोडी सी भी गफलत कर जाय, तो नि सन्देह जीवन से हाथ ही धोना पडे एव वह चमकीली-दमकीली उन्नतोन्मुखी हावडाब्रिज (Bridge), मानो मेधावी मानव के मन मस्तिष्क ने मृत्यु-लोक से स्वर्गापवर्ग पर्यन्त पहुचने के लिए एक अनोखी निस्सरणी नियुक्त की हो, ऐसा जान पडता है। इस प्रकार भौतिक वैभव-विभूति के साथ-साथ आत्मिक-धार्मिक वैभव से भी यह विराट नगर लदा हुआ जान पडता है। जहाँ मारवाड से आये हुए— अग्रवाल, पोरवाल एव महेश्वरी आदि हजारो लाखो राम और श्री कृष्ण के उपासक हैं, तो दूसरी ओर मारवाड, गुजरात, पजाव एव मेवाड राजस्थान से आये हुए व्यापारार्थ करीव-करीव पच्चीस हजार से ज्यादा सुसम्पन्न जैन नर-नारी भी वास करते है। अपनी आत्मानुसार धर्म-साधना-आराधना के लिये जिनके पृथक-पृथक भव्य-भवन खडे है। जहा वे मुमुक्षुगर्ण आत्मचिन्तन, मनन एव आत्मानन्द का आलिंगन करते हुए भाव लक्ष्मी की अर्चा-अभ्यर्थना करते हैं।

सराक जाति का परिचय—

वगाल देश मे जहा आज भी मद्य-मास मत्स्य आदि पाच मकारो का खूब प्रचार है, वहाँ जहाँ तहाँ काफी तादाद मे एक ऐसी मानव जाति भी पाई जाती है। जो "सराक" के नाम से प्रसिद्ध है। "सराक" शब्द शायद "श्रावक" का ही रूपान्तर होना चाहिए। ये जन कृषि, दुकानदारी एव कपडा बुनना आदि निर्वद्य अर्थात अल्प पाप क्रिया वाले व्यवसाय करते हुए अपनी आजीविका चलाते हैं। तत्त्व-वेत्ताओ का अटल अनुमान है कि—ये जन उन प्राचीन जैन श्रावको के वशज है, जो जैन जाति के अवशेप रूप हैं। यह जाति आज प्राय हिन्दुधर्मानुगामी हो चुकी है। तथापि ये पक्के शाकाहारी हैं। यहाँ तक कि "काटना" "चीरना" "फाडना" आदि कठोर शब्दो का प्रयोग भी दैनिक व व्यावहारिक जीवन मे नही करते, ऐसा सुना जाता है। अद्यावधि कही-कही ये लोग अपने आप को जैन एव प्रभु पार्श्वनाथ के उपासक भी मानते हैं। इस जाति के विपय मे अनेक पाश्चात्य एव पौर्वात्य विद्वान् लेखको ने भी पर्याप्त उल्लेख करते हुए— स्पष्टत सिद्ध किया है कि यह जाति पहले सम्पूर्ण रूपेण जैनधर्मा-वलवी थी। वग-विहार मे हम इस जाति के निकट सपर्क मे आये और उसे अपने वशानुगत प्राचीन सस्कारो की याद दिलाई।

प्रवेश समारोह—

हाँ तो, इस प्रकार गुरुवर्य आदि छहो मुनियो का अनेक भव्य भक्तो के साथ-साथ रामपुरिया

स्नेह-सम्मेलन—

जैन सभा द्वारा आयोजित पर्युषण-पर्वव्याख्यानमाला के अन्तिम दिन मुनिवरो के दिगम्बर जैन भवन मे तप व क्षमा पर भाषण हुए, तत्पश्चात श्री सोहनलाल जी दुगड एव धर्मचन्द जी सरावगी के भी प्रभावशाली भाषण हुए।

इसी दिन कलकत्ते के इतिहास मे एक अभूत पूर्व कार्य हुआ। वह था एक प्रीतिभोज। इस प्रीतिभोज की विशेषता थी कि सभी स्थानकवासी सज्जन प्रान्तीयता एव जातियता का भेदभाव छोडकर इस प्रीतिभोज मे सम्मिलित हुए। प्राय धर्म ग्रन्थो मे सहधर्मियो का प्रीतिभोज प्रेम का कारण बताया गया है। आज इस सत्य का भी अनुभव हुआ। विभिन्न प्रान्तो के निवासियो ने एक साथ भोजन कर एव एक स्थान पर मिलकर बडे ही आनन्द का अनुभव किया। वह वेला भी बडी सुहावनी थी।

क्षमतक्षमापना-सम्मेलन—

समस्त जैन समाजो की ओर से ता० २७-९-५३ को एक सामूहिक क्षमतक्षमापना-दिवस मनाने का आयोजन किया गया। इसमे सभी दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरह पथी, मूर्तिपूजक आदि उपस्थित थे। इस अवसर पर मुनियो के क्षमा के महत्त्व पर भाषण हुए। इस आयोजन मे मुनिवर वल्लभ-विजय जी न्यायविजय जी, साध्वी श्री कचनश्री जी, शीलवती जी, मृगावती जी आदि भी उपस्थित थी, उन्होने भी सगठित रहने की अपील की।

निर्वाणोत्सव—

ता० ७-११-५३—आज भगवान् महावीर का निर्वाण दिवस था, इस उपलक्ष्य मे प्रात शास्त्र विशारद प० मुनिवर हीरालाल जी महाराज ने जैन सभा मे भगवान् महावीर की अन्तिम-वाणी उत्तराध्ययन सूत्र का स्वाध्याय किया। इसी अवसर पर सघ मत्री श्री केशवलाल भाई ने प्रमुख साहब का सन्देश पढकर सुनाया —

"वीर सम्वत २४८० नु मंगल प्रभात"

पूज्य महाराज जी श्री प्रतापमल जी महाराज, महाराज श्री हीरालाल जी महाराज तथा अन्य मुनि महाराजो उपस्थित बन्धुओ तथा बहिनो!

आजे आपणा परम तीर्थंकर श्री श्री महावीर प्रभुना निर्वाण वर्ष सम्वत २४८० ना मगल प्रभाते आपणे पूज्य महाराज श्री पासे श्री श्री महामगलकारी मागलिक श्रवण तथा नूतन वर्षाभिन्दन माटे माल्या छीये।

आपना श्री सघना महाभाग्योदये ज्यारथी आपणु विशाल-उपाश्रय नुँ निर्माण थयूँ छे त्यार थी आपना श्री सघ ने विद्वान मुनि महाराजो ना चातुर्मासनो लाभ मल्यो छे।

गत वर्ष तपस्वी श्री जगजीवन जी महाराज तथा बालब्रह्मचारी श्री जयन्ति लाल जी महाराज ना चातुर्मास दरम्यान घणो आनन्द मगल वर्षायो अने चालु वर्ष पण बहु सरल स्वभावी पूज्य महाराज श्री प्रतापमल जी महाराज, श्री हीरालाल जी महाराज आदि ठा० ६ मा चातुर्मास मा आपणा स्वधर्मी राजस्थानी बन्धुओ तथा पजाबी बन्धुओ नो आपण ने सारो सहकार मल्यो छे।

परम पिता श्री तीर्थंकर देवनी आपना श्री सघनी उपर सतत आर्शीवाद रहो तेवी आपणी नम्र प्रार्थना छे।

आजना मगलमय प्रभाते महाराज श्री ना मागलिक श्रवण वाद आपणे आस-पास नूतन वर्षाभिनन्दन करशु ! आ नवु वर्ष आपणा श्री सघमा खूब आनन्द अने मगलकारी नीवडे अने श्री सघमा सगठन तथा परस्पर सद्भावना, एकता खूब फलो-फूलो तेवी आपणी परम कृपालु परमात्मा पासे आजना आ शुभ दिने प्रार्थना छे ।

हू छूँ श्री सघनो सेवक
कान जी पानाचन्द

प्रमुख—श्री कलकत्ता जै० श्वे० स्था० (गुजराती) सघ
(भाइ बीज) ता० ८-११-५३ रविवार

श्री लक्ष्मीपत सिंह दुगड हाल, श्री जैन भवन कलाकार स्ट्रीट मे एक विशाल स्नेह-सम्मेलन हुआ, जिसमे उक्त मुनियो एव साध्वी श्री जी मृगावती जी म० आदि वक्ताओ के भाषण हुए। आज सभा के अध्ययक्ष सेठ सोहनलाल जी दुगड थे ।

इसी दिन मध्यान्ह मे राय साहब लाला टेकचन्द जी के सुपुत्र लाला अमृत लाल जी की अध्यक्षता मे पजाबी भाइयो का एक स्नेह-सम्मेलन हुआ। उसमे उक्त मुनिवरो ने सगठन विषय पर प्रवचन किए। फलस्वरूप महावीर जैन सभा की स्थापना हुई।

लोकाशाह-जयन्ति महोत्सव—

ता० १८ तथा १९ नवम्बर को पण्डित मुनिवर प्रतापमल जी महाराज व पण्डित मुनिवर हीरालाल जी महाराज के तत्त्वावधान मे "लोकाशाह जयन्ति" मनाने का आयोजन किया गया। सभापति पद पर क्रमश १८ व १९ को श्री सोहनलाल जी दुगड तथा पश्चिमी बगाल के स्वायत्त शासन मत्री श्री ईश्वरदास जी जालान ने ग्रहण किये। ता० १९ को १००८ सामायिको का आयोजन किया गया था। इस दिन विशाल जन-समूह के समक्ष मुनिवरो के ओजस्वी भाषण हुए। तत्पश्चात श्री जालान ने अहिंसा पर अपने विचार प्रकट किये तथा जैन मुनियो के त्यागमय जीवन पर श्रद्धा व्यक्त करते हुए देश और समाज की उन्नति के लिये आवश्यकता प्रकट की। इस अवसर पर आपने अहिसा एव त्याग पर बहुत ही जोर दिया।

राज्यपाल भवन मे पादार्पण—

ता० ५-१२-५३ को २॥ बजे पण्डित मुनिवर श्री प्रतापमल जी म० व पण्डित मुनिवर हीरा लाल जी म० आदि मुनिगण राज्यपाल श्री एच० सी० मुखर्जी के आमन्त्रण पर राज्यपाल भवन पधारे। मुनिवरो के आगमन से राज्यपाल महोदय अत्यन्त प्रसन्न हुए एव वहाँ उपस्थित अन्य सज्जन जैन मुनियो की चर्या को जानकर अत्यधिक प्रभावित हुए। वहा पर शान्ति पाठ किया गया जिसमे सभी उपस्थित सज्जनों ने भाग लिया। तदनन्तर मँगल सूत्र के बाद मुनिवर वापिस लौट आये। इस अवसर पर राज्यपाल को निर्ग्रन्थ-प्रवचन व जैन साधु आदि ग्रन्थ भेंट किये गये।

दिवाकर-चरमोत्सव—

ता० १३-१२-५३ को जस्टिस रमाप्रसाद मुखर्जी के सभापतित्व मे प्रसिद्धवक्ता जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज की निधन तिथि मनाई गयी जिसमे मुनिवरो के मुनि-जीवन व लोक-

कल्याण पर भाषण हुए। उपस्थिति सन्तोपजनक थी। इसी अवसर पर भारत सरकार के उप-अर्थ मन्त्री श्री मणिभाई चतुरभाई की धर्म पत्नी श्री सरस्वती देवी एव उनके सुपुत्र श्री शरत्कुमार जैन भी उपस्थित थे।

जैन-सस्कृति-सम्मेलन—

१० जनवरी ५८ को, २७ पोलोक स्ट्रीट जैन स्थानक मे पण्डित मुनि श्री प्रतापमल जी महाराज व पण्डित मुनि श्री हीरालाल जी महाराज के सानिध्य मे एक जैन सस्कृति सम्मेलन मनाने का विशाल आयोजन किया गया। इसका सभापतित्व वगाल के माननीय राज्यपाल श्री एच० सी० मुखर्जी कर रहे थे। सम्मेलन मे अनेक इतिहासज्ञो एव पुरातत्त्वविदो ने जैनधर्म एव सस्कृति पर प्रभाव शाली भाषण दिये जिससे जैन धर्म के अधकारमय इतिहास और प्राचीनता पर अच्छा प्रकाश पडा। सम्मेलन मे उपस्थित जनता के अतिरिक्त नेपाल के प्रधानमन्त्री श्री मातृकाप्रसाद कोइराला, डा० कालिदास नाग तथा बौद्ध भिक्षु श्री जगदीश काश्यप का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रकार के सम्मेलनो से जैन-धर्म और सस्कृति पर अच्छा प्रभाव पडता है तथा अन्य विद्वानो के इस विषय मे क्या मत हैं, उनका भी पता लगता है। जैन-धर्म व सस्कृति के उद्धार-कार्य मे इस प्रकार के सम्मेलनो का वडा भारी हाथ है।

कान्फ्रेन्स की शाखा का उद्घाटन—

२५ जनवरी को मुनिवरो के तत्त्वावधान मे सेठ अचलसिह एम पी आगरा द्वारा श्री श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स की शाखा का उद्घाटन किया गया। कलकत्ता जैसे विशाल नगर मे कान्फ्रेन्स के कार्यालय का अभाव वहुत ही खटकता था अत इसकी शाखा का उद्घाटन कर एक वडी भारी कमी की पूर्ति की गई।

वगाल गर्वनर और मुनिगण—

वडे-वडे उद्योगपति आप के सम्पर्क मे आये। वगाल के गर्वनर एस० सी० मुखर्जी भी अवसर पाकर आप के दर्शनार्थ सेवा मे उपस्थित हुए और जैन श्रमण के आचार विचार एव तपोमय सयमी जीवन को देख सुनकर काफी प्रभावित और सन्तुष्ट भी हुए। यहा तक कि—जहा कही अन्यत्र ये सभा सोसाइटी मे जाते थे वहा भारी जैनेतर मेदनी के वीच जैन श्रमण के महान् जीवन की तारीफ करते हुए कहते थे कि—"जिनके भक्तगण एडी से चोटी तक सोना पहनते हैं, उच्चातिउच्च महलो मे वास करते हैं और खान-पान परिधान भी वैसा ही रखते हैं, किन्तु उनके गुरुओ का हाल सुनिए, वे नगे सिर एव नगे पैर पाद यात्रा करते है। न रुपये पैसो की भेंट लेते हैं और न किसी के सामने दीनतापूर्वक हाथ ही पसारते हैं। अहा! कितना महान् त्याग। ऐसे सच्चे सन्त महत ही विश्व का कल्याण कर सकते हैं। यदि मुझे पुनर्जन्म मिले तो मैं भगवान से ही प्रार्थना करता हू कि—ऐसे पवित्र जैन परिवार मे मुझे दे। और ऐसे ही त्यागी वैरागी जैन साधुओ का सुयोग भी मिलें, ताकि—मैं अपने भावी जीवन को सर्वोत्तम वना सकूँ।"

मैं भी (रमेश आ टपका—

विशेष सकल सघ के खुशी का कारण मैं भी एक था चातुर्मास उठते-उठते मैं (रमेश) भी वैरागी का वाना पहनकर कलकत्ता आ टपका। यद्यपि मेरा जन्म एक भरे-पूरे सम्पन्न ओसवाल जैन

परिवार मे अवश्य हुआ था। किन्तु जैन आचार-विचार मे मैं सर्वथा अनभिज्ञ ही था। फिर भी मन में एक ही तमन्ना, एक ही लगन और एक ही धुन थी —बस सर्व सासारिक सावद्य प्रवृतियो से मुख-मोडकर गुरु भगवत श्री प्रतापमल जी म० एव पण्डित रत्न श्री हीरालाल जी म० के साहचर्य मे आर्हती दीक्षा शिघ्रातिशीघ्र ले लेना ही उपयुक्त रहेगा। इस महान् मनोरथ को मन-मजूषा मे सुरक्षित रखता हुआ, गुरु प्रवर श्री की पवित्र सेवा मे हाजिर हुआ।

इस प्रकार सर्व आयोजन शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुए। कलकत्ता सघ की सेवा-भक्ति सराहनीय एव अनुकरणीय थी। यह वर्षावास भी अपनी शानी का अनोखा था।

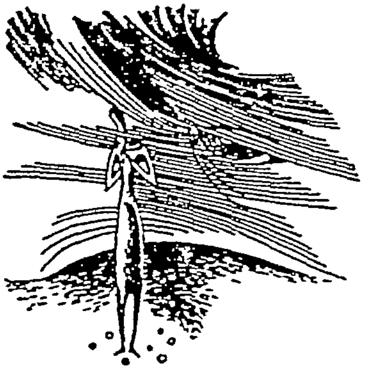

झरिया में दीक्षोत्सव

विदाई समारोह और विहार —

वगाल की राजधानी कलकत्ता का ऐतिहासिक वर्षावास सम्पन्न होने के पश्चात् सर्व मुनि मण्डल का हजारो नर-नारी नागरिको द्वारा विदाई समारोह सम्पन्न हुआ। उस समय का दृश्य दर्शनीय व अनोखा था। अधिकाश नर-नारी वियोग-वेदना से व्याकुल एव उदासीनता की आधी से पीडित-दुखित जान पड रहे थे। "गुरुदेव! पुन दर्शन की कृपा शीघ्र करें, गहरे गर्त मे गिरे हुए इस क्षेत्र को भूलें नही, हम तो केवल धनार्थी है, न कि धर्मार्थी। अतएव हमारी विनती सदैव आप के झोली-पात्र मे ही नही, अपितु मन-मजूपा में रहे।" इस प्रकार कलकत्ता निवासी जनता की व्यथित वाणी बार-बार अनुनय अनुरोध कर रही थी।

सरस्वती का सदन शान्ति-निकेतन —

शस्य-श्यामला वगाल धरातल को पावन करते हुए तथा इर्दगिर्द निवासियो को जैन श्रमण-जीवन का परिचय, उपदेश वाणी विज्ञापन पत्रो द्वारा करते हुए विश्व विख्यात शान्ति निकेतन (वोलपुर) पधारे। यह नगर सचमुच ही शान्ति एव सरस्वती का जीता जागता सदन माना गया है। इस विराट सस्था के सचालक कुलपति कर्मठ कार्यकर्ता आचार्य क्षिति मोहन सेन थे। जहा भारतीयो के अलावा इरानी, चीनी, नेपाली वर्मी एव लका निवासी आदि नाना देशो के सैकडो विद्यार्थी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार दर्शन-भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि विषयो का अध्ययनाध्यापन किया करते हैं। सचमुच ही यह केन्द्र भारतीयो के लिए गौरव का प्रतीक है और भारतीय सस्कृति के लिए भी।

आचार्य क्षितिमोहनसेन स्वय अनेक होनहार छात्रो को सग लेकर दर्शनार्थ आए। जैन-दर्शन, प्राचीन जैन इतिहास एव जैन साहित्य श्रमण-जीवन के विषय मे काफी तात्विक चर्चाएँ हुई। उपस्थित जिज्ञासु विदेशी विद्यार्थियो ने भी श्रद्धा भक्ति एव जिज्ञासा पूर्वक दुभाषियो के माध्यम से 'मुँहपत्ति' 'रजोहरण' 'केश लोचन' एव पादयात्रादि विषयक प्रश्नो का सम्यक् समाधान प्राप्त किया। इस प्रकार काफी प्रभावित व प्रसन्न चित्त होकर लौटे और दूसरे दिन "जैन दर्शन" पर उसी सस्था के विशाल हाल मे प्रवचन भी करवाया व सस्था द्वारा मुनिवरो को अभिनन्दन पत्र भेंट किया। जो आगे दिया गया है और सस्थाओ के सर्व विभागो का अवलोकन भी करवाया गया।

मुनियो का मागलिक मिलन —

यहा से श्रमण गण सैंथिया आए। जहा वयोवृद्ध तपस्वी महा भाग्यवान् श्री जगजीवन जी म०, प्रखरवक्ता श्री जयन्ति लालजी म० एव श्री गिरीश मुनि जी म० सानन्द विराज रहे थे। उदार मन मुनियो का पारस्परिक व्यवहार अत्यधिक प्रेम भरा एव सौहार्द स्नेह पूर्ण था। आप मुनिवरो के सान्निध्य मे यहा एक सर्व धर्म सम्मेलन भी हुआ, जो सैंथिया नागरिको के इतिहास मे नवीन ही था। यहाँ आशातीत धर्म-प्रभावना एव धर्मोन्नति हुई। यद्यपि घरो की सख्या से यह क्षेत्र लघु था तथापि

पारस्परिक सगठन-सहयोग के प्रभाव से अत्यधिक वल मिला। काफी दिनो तक विराज कर सर्व मुनि मण्डल ने झरिया की राह पकडी। जहा मेरे (रमेश) दीक्षोत्सव का गुजराती स्थानक वासी जैन समाज की ओर से एक अभूतपूर्व आयोजन का श्री मगल होनेवाला था।

दीक्षा का शखनाद —

झरिया सघ एक सुसम्पन्न अनुभवी, दीर्घदृष्टि-दर्शक एव शुद्ध स्थानकवासी परम्परा श्रद्धा का सदैव अनुगामी रहा और है। जहा सौ से भी ज्यादा सुखी-सुयोग्य जैन परिवारो का वास है। दीक्षा की शुभ सूचना का शख शम्मेदशैल से ही इतस्तत प्रसारित हो चुका था। एतदर्थ झरिया निवासियो मे वेहद उत्साह-उमग उल्लास का वातावरण छा गया, जिसमे वहिनो मे तो मानो खुशी का पारावार ही उमड पडा था। वहुत से जैन वाल व युवको ने आर्हती दीक्षा के अद्यावधि दर्शन तक नही किये थे और दूसरा कारण यह भी था--कि विहार प्रात मे काफी शताब्दियो से जैन दीक्षा का सिलसिला अवरुद्ध था। इसलिए पुन इस शुद्ध मार्ग का गुरु भगवत द्वारा उद्घाटन हो रहा था अतएव हर्ष भरा वातावरण होना स्वाभाविक ही था।

मैंने उत्तर दिया —

मेरी ज्ञान, ध्यान साधना को देखकर सघ के सदस्यगण वहुत ही प्रभावित हुए। मेरे परिवार के विषय मे भी सघ ने पूरी पूछ-ताछ की। यद्यपि अनेको पारिवारिक जन मौजूद थे और है। लेकिन भावी कठिनाइयो के भय से मैंने निश्चयवाद की शरण ली —जैसा कि—

कोना छोरु ने कोना वाछरु कोना धाय ने वाप।
अन्तकाले जावु एकलु साथे पुण्य ने पाप॥

सवो को मेरा एक ही उत्तर था—जो उत्तर गुरुदेव को था वही उत्तर सघ को, और वही अन्य मानवों को भी—'मेरे कोई नही है, मेरी आत्मा अकेली आई और अकेली ही जायेगी।" वस, विश्वासपूर्वक झरिया श्री सघ ने मुझे अपना ही लाडला मानकर, तथा तत्र विराजित मुनिवरो की जन-मानस को झकझोरने वाली वाणी ने सघ मे नया प्राण फूंका, नई चेतना पनपाई एव नया जोश-तोष का सूत्रपात किया।

हर्ष ही हर्ष —

जहा देखो वहा हसी खुशी के फव्वारे फूटने लगे, जहा देखो वहां गाजे-वाजे, गीतो की मन-लुभावनी सुरीली तान, जहा देखो वहाँ शासन-शोभा की वाते, जहा देखो वहा आत्मीक वीणा की सुमधुर तान एव जहा देखो वहा धार्मिक प्रतिष्ठा के शुभ दर्शन होने लगे।

गुजराती-रीति-रिवाज के मुताविक दीक्षोत्सव प्रारम्भ हुआ। कई दिनो तक सम्मिलित प्रीतिभोज तो दूसरी ओर रजोहरण पात्र, शास्त्र एव वस्त्रो की वोलिया पर वोलिया लगना शुरु हुई। जिसको गुजराती भाषा मे "उच्छवणी" कहते हैं।

थोडे ही समय मे सघ के रमणीय प्रागण मे हजारो रुपयो का ढेर सा लग गया। मानो कुवेर प्रसन्न चित्त होकर नभ से वरस पडा हो। इस प्रकार आगन्तुक हजारो दर्शको ने इस अभूत पूर्व समारोह मे भाग लिया दर्शन किया और अपने को कृत-कृत्य मानते हुए जैन श्रमण के आचार विचार की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे।

इस प्रकार वैशाख शुक्ला सप्तमी की शुभ-मगल वेला मे मैं (रमेश मुनि) गुरु प्रताप के पवित्र पूजनीय पाद चिन्हो पर चलने के लिए श्रमण धर्म मे प्रविष्ट हुआ।

इन्दौर चातुर्मास : एक विहंगावलोकन

त्रिवेणी का सुन्दर सुसगमः—

सवत् २०२० का यशस्वी चातुर्मास उदयपुर का सम्पन्न कर गुरुवर्य श्री प्रतापमल जी म० प० रत्न, वक्ता श्री राजेन्द्र मुनि जी म० श्री सुरेश मुनि जी म० एव इन चन्द पक्तियो का लेखक (रमेश मुनि) आदि मुनि हम चारो निम्वाहेडा होते हुए नीमच आए और इधर आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषि जी म० एव तरुण तपस्वी प्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री लाभचन्द जी म० अपना ऐतिहासिक वर्षावास साजापुर का सम्पन्न कर एव चिरस्मरणीय चातुर्मास खाचरोद का पूर्ण कर मालवकेशरी श्री सौभाग्य मल जी म० सा० आदि अनेकानेक मुनि-महासतियो का एक सुन्दर स्नेहमय त्रिवेणी सगम जुडा। जो सचमुच ही एक लघु सम्मेलन की ही झाँकी प्रस्तुत करता था।

भावी सम्मेलन विपयक एव आचार-विचार व्यवहार सम्बन्धी काफी अच्छे ढग से विचारो का विनिमय हुआ। एक दूसरे के दर्शन कर साधक मन फूले नही समा रहे थे। नीमच सघ के सदस्यो के मुख-मन एव जीवन-जीह्वा पर श्रमण सघ एव आचार्य प्रवर के प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति झलक रही थी। जो आज के प्रत्येक स्थानकवासी सघो के लिए एक अनुकरणीय पौष्टिक नवनीत है। होने वाली भावी सम्मेलन की पक्की रूप रेखा का सूत्रपात् एव शुभस्थान अजमेर-निश्चय की सूचना भी तार द्वारा यहा आ पहुँची।

मालवकेशरी और गुरु प्रवर —

सध्या की सुन्दर सुहावनी अचल मे सर्व मुनि-मण्डल विराजित था। मालव केशरी जी म० ने गुरु प्रवर श्री प्रताप मल जी म० को एक तरफ बुलाकर परामर्श दिया कि—अगला चौमासा अर्थात २०२१ का जहा मैं कहू—वही करना होगा और वह स्थान है इन्दौर। सगठन एव ऐक्यता की दृप्टि से इन्दोर सकल-सघ की सेवा करना आप के लिए तथा बनेगा तो मेरे लिए भी जरूरी है। अत भले आप सम्मेलन मे पधारें किवा अन्यत्र विचरण करें। परन्तु जहा तक इन्दौर सघ का विनती पत्र आप की सेवा मे न पहुच जाय, वहा तक आप अन्य किसी सघ को आश्वासन-स्वीकृति प्रदान न करें। वस, भले इसको भावना-कामना समझे कि आज्ञा।"

गुरु भगवत के जीवन मे यह भी एक खास विशेपता रही है—आप सदैव वडे वुजुर्ग गुरुओ के अमृत वचनो को सम्मानपूर्वक सिर चढाते आए हैं। दूसरी वात यह भी थी—कि—शात स्वभावी एव गहरे अनुभवी ऐसे मालवकेशरी जी म० की पवित्र स्वभाव की शीतल छाया मे रहने का अनायास ही यह सु अवसर हस्तगत हुआ। ऐमा दीर्घ दृप्टि से सोचकर गुरुदेव वोले कि—"आप मेरे गुरुदेव तुल्य है। मैं स्वप्न मे भी भवदाज्ञा का अतिक्रमण अवहेलना कैसे कर सकता हू ?" अत आप के आदेशानुसार ही मैं कदम रखूँगा। वस, आचार्य प्रवर आदि मुनिवरो ने अजमेर की दिशा ली, और हमने नीमच से मन्हारगढ की दिशा नापी।

इन्दौर सघ का डेप्युटेशन —

जहा वैरागी वाल ब्रह्मचारी नाथूलाल (नरेन्द्र मुनि) विलौदा वाले और वैरागीन गट्टु वाई (ज्ञानवती जी) देवगढ निवासी की दीक्षा का मगलमय कार्य सम्पन्न करना था और उपरोक्त कार्य गुरु भगवत के कमनीय कर कमलो से ही सभव था। अतएव मल्हारगढ को पावन करना जरूरी हुआ। मल्हारगढ सघ ने भी गुरु प्रवर के कथनानुसार सहर्ष-श्रद्धा एव निर्भयता पूर्वक होने वाले धार्मिकोत्सव को सादगीपूर्ण ढग से सम्पन्न किया।

उपरोक्त कार्य सिद्धि के पश्चात पाँचो मुनि-मण्डल रामपुरा, चवलडेम, भानपुरा, रायपुर, वकाणी व झालरापाटन आया। जहा इन्दौर सघ की ओर से सवत २०२१ के वर्षावास का विनती पत्र लेकर कतिपय अग्रगण्य श्रावक आ पहुचे। इन्दौर का सकल स्थानकवासी सघ गुरु भगवत पर अगाढ श्रद्धा भक्ति रखता आया है। गुरुदेव की प्रभावशाली वाणी के प्रभाव से ही यहा "सेवा सदन" (आयविल खाता) नामक सस्था का सवत २००४ के चौमासे मे निर्माण हुआ था। आज तो यह सस्था काफी सवल, वलिष्ट व प्रसिद्धि प्रख्याति मे वहुत आगे वढ चुकी है। इसका कार्य क्षेत्र वहुत ही विशाल वन चुका है। विन्दु का सा लघुरूप आज सिन्धु मे परिणित होता दृष्टिगोचर हो रहा है। अतएव इसकी शानी की सवल सस्था राजस्थान, खानदेश, उत्तरप्रदेश और मालवा भर मे शायद नही होगी। जिसमे प्रतिवर्ष हजारो भावुक जन सप्रेम लाभान्वित होते हैं। उपरोक्त शुभ प्रवृत्ति के मार्ग दर्शक हमारे चरित्र नायक ही रहे है।

राजधानी की ओर कदम —

काफी अनुरोध आग्रह के पश्चात गुरुदेव ने शास्त्रीय विधानानुसार सम्वत २०२१ के चौमासे की इन्दौर सघ को स्वीकृति फरमाई। अभी समय की काफी वचत थी। अत परोपकारी मुनि-मण्डली नल खेडा, वडा गाव, सुजालपुर आदि छोटे मोटे नगर-निवासियो को दर्शन देते हुए मध्य प्रदेश की वैभव सम्पन्न राजधानी भोपाल पधारे। मुनि शुभागमन से स्थानकवासी सघ भोपाल मे आशातीत जागृति आई, नव चेतना का शख वुलन्द हुआ और सघ की डावाडोल जडो मे गुरु-उपदेशामृत ने ठोस कार्य किया। जो काफी दिनो से स्थानीय सघ वाटिका उजडी जा रही थी। भोपाल सघ की ओर से यद्यपि इसी चौमासे के लिए अत्यधिक आग्रह था। लेकिन ऐसा न हो सका। चौमासे के दिन निकट भागे आ रहे थे। इसलिए आषाढ वदी तक मुनि मण्डल इन्दौर के उप नगरो मे आ पहुँचा और उधर सम्मेलन मे पधारे हुए मालवकेशरी जी म० इन्ही दिनो मे भण्डारी मिल मे आ विराजे। वस आषाढ शुक्ला तृतीया के शुभ मगल प्रभात मे हजारो नर-नारियो के अभिनन्दन-समारोह के साथ-साथ मुनि मण्डल (दसठाणा) का इन्दौर नगर मे प्रवेश हुआ जो वडा ही अनूठा अनुपम दृश्य था।

साहित्य व सस्कृति का केन्द्र इन्दौर —

इन्दौर केवल भौतिक-विकास वैभव का ही केन्द्र नही अपितु सस्कृति, साहित्य, इतिहास, कल कारखानें व धर्म की सुन्दर शोभनीय सगम भूमि भी है। जैन समाज के लिए तो सचमुच ही यह सगम जगम तीर्थ सा वना हुआ है। क्योकि यहा श्रमण सस्कृति के प्रतीक दिगम्वर श्वेताम्वर एव स्थानकवासी त्रिधारा का सुन्दर सगम है। जो हमेशा अन्य सघो के लिए एक उज्ज्वल प्रेरणा का प्रतीक रहा है।

हा, तो जन-मानस मे श्रमण सघीय मुनिवरो के प्रति अटूट श्रद्धा भक्ति के साथ-साथ जहाँ तहाँ उन्माद के मधुर स्रोत भी फूट रहे थे। सैकडो हजारो भव्यात्माए व्याख्यानामृत पान करने लगी।

उत्साही युवको द्वारा प्रत्येक रविवार को एक विशेप आयोजन कभी राजवाडे मे महावीर भवन मे होता। श्रावण-भादवे के दिनो मे जैसे वसुन्धरा का विशाल प्रागण हरा-भरा सरसब्ज दृष्टि पथ होता है उसी प्रकार गुरु भगवत की वागतियश प्रभावेण भव्य मानस भूमि सरसब्ज स्वच्छ निखर उठी। एव जप-तप-शील सन्तोप श्रद्धा की अपूर्व उन्नति के साथ-साथ वाहरी दर्शनार्थी मुमुक्षुओ का भी एक ऐसा स्रोत प्रवाहित हुआ, जो इन्दौर स्थानकवासी सघ के इतिहास मे अद्वितीय था। इस प्रकार पर्युपण पर्वाराधना एव लोकाशाह, दिवाकर जयन्ति महोत्सव आदि भी उत्साहपूर्वक सपन्न किये गये।

सघ सचालको की दूरदर्शिता —

चारो मास पर्यन्त सघ सदन मे स्तुत्य शान्ति-सगठन एव स्नेह की वीणा वजती रही। जो सचमुच ही अनुकरणीय ही थी। यद्यपि इस वर्पावास मे विद्वेप विद्रोह के अनेको ऐसे नैमित्तिक तत्त्व अभिमुख थे जो थोडी-सी विफलता पर राई का पर्वत एव तिल का ताड खडा कर दें। किन्तु सघ के जाने-माने विद्वद् वर्ग एव गुरुदेव प्रताप और सौभाग्य की वेजोड़ शान्ति-क्रान्ति ने ऐसा छिटकाव किया कि—वे साम्प्रदायिक कटु तत्त्व भी सूल के फूल वन विछ पडे।

सघ मे पर्याप्त शात वातावरण रहा। यह सर्व श्रेय सचालको के सिर पर रहता है उनमे से प्रथम श्रेय के धनी हमारे चरित्रनायक और श्रद्धेय मालव केशरी श्री सौभाग्य मल जी म० है। जिनकी स्मित मुख मुद्रा पर आठो पहर शान्ति अठखेलियाँ करती है। जिनकी वाक्-शक्ति मे अद्वितीय भक्ति माधुर्य का सागर लहलहाता है। जो विनोदी को तो क्या पर विरोधी को भी आकृष्ट किये विना नही रहता। जिनकी व्याख्यान शैली जहाँ भव्य मानस को वैराग्य से भीगोती है, तो दूसरी ओर जीवन को झकझोरने वाली वही फटकार और ललकार। जहा हास्य एव वीर रस से श्रोताओ के मन-मुख एक साथ ही वाग-वाग हो जाते हैं। तो दूसरी ओर यदा-कदा करुणारस परिपूर्ण आपकी वाणी द्वारा सुनने वालो की आँखो मे श्रवण-भादवा भी छा जाता है। इस प्रकार मुख्य रूपेण 'आत्मधर्म' विपय के अन्तर्गत ही उपरोक्त विभिन्न स्रोत आप के मुख हिमाचल से नि सृत होते रहते हैं। थोडे मे कहे तो सचमुच ही आप एक अनोखे जादू के अवतार हैं जो रुष्ट-तुष्ट एव योगी-भोगी आदि सभी को अपना अनुगामी वना ही लेते हैं।

स्व० श्री किशनलाल जी म० के प्रति आपकी भक्ति व श्रद्धा वेजोड मालूम पडी। एव सर्व साधुओ को निभाने एव पुकारने की कला का तरीका भी एक अनूठा देखने को मिला—ईश्वर! भगवान! कृपालु पधारो! आदि-आदि आपके सम्बोधन के मुख्य सुमधुर चिन्ह हैं। आपका दिल जितना विशाल है, उतना ही मस्तिष्क विराटता को लिए है और वाणी मे भी उतनी ही मधुरता का वास है। जो छोटे-मोटे सभी यात्रियो को साथ मे लेकर चलने की क्षमता रखते हैं। श्रमण-सघ के प्रति आप के जीवन का कण-कण एव रोम-रोम वफादार प्रतीत हुआ। कई वक्त आपने फरमाया भी था कि—"क्या करूँ? मेरे धुटनो मे अव वह शक्ति नही रही, अन्यथा श्रमण सघ के लिए गुजरात, पजाव आदि प्रान्तो मे एक चक्कर लगा आता और अन्य सतो को भी मिलाने का भरसक प्रयत्न करता।" ऐसा भी देखने, सुनने मे आया कि—आप के प्रत्येक व्याख्यानो मे श्रमण-सघ पुष्टि के उद्गार स्फुरित होते रहते थे। अत नि सन्देह सघ-स्तम्भ के आप एक सफल सरक्षक सुभट प्रतीत हुए। ऐसे गुण रत्नाकर एव श्रमण-सघ के चमकते-दमकते रत्न युग-युग तक आत्मदर्शक के रूप मे विद्यमान रहे वस यही मन की शुभाकाक्षा है।

आपकी स्नेहमयी शीतल छाया मे रहने का यह प्रथम अवसर था। स्व० माध्वाचार्य, स्व० श्री

किशनलाल जी म० एव आप (सौभाग्यमल जी म०) के अतीत जीवन की नित नई झाँकियाँ सुनने को एव सीखने को मिली।

इस प्रकार सभी दृष्टियो से यशस्वी, यह चातुर्मास इन्दौर के स्थानकवासी इतिहास मे अद्वितीय एव सफल रहा। विहार-वेला मे भी हजारो नर-नारियो ने उसी श्रद्धा-भक्ति पूर्वक विदाई समारोह मे भाग लिया। और आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी म० श्री सौभाग्य मल जी म० एव गुरु प्रवर श्री प्रताप मल जी म० की जय-जयकारो से वह अनन्त आकाश मण्डल गूज रहा था।

● ●

आयावयति गिम्हेसु, हेमतेसु अवाउडा।
वासासु पडिसलीणा, सजया सुसमाहिया॥

— आचार्य शय्यभवसूरि

प्रशस्त समाधिवत सयमी मुनि ग्रीष्म ऋतु मे सूर्य की आतापना लेते हैं हेमन्त ऋतु मे—शीत-काल मे अल्प वस्त्र रखते है और वर्षा ऋतु मे कछुए की तरह इन्द्रियो को गोपन करके रहते हैं।

● ●

मजल गांव में महान्-उपकार

सरस शात प्राकृतिक सुषमा की गोद मे वसा हुआ मजल ग्राम मेरी मातृभूमि है जहाँ ओसवाल समाज के पच्चास से भी अधिक सुसम्पन्न परिवार वास करते हैं। जिनका विदेशी व्यापार-विनिमय से खासा सम्वन्ध है और प्राय सवके सव अच्छी हालत मे विद्यमान हैं। धार्मिक व सामाजिक जीवन भी जिनका स्तुत्य रहा है। देव, गुरु धर्म के प्रति जिनकी अच्छी श्रद्धा भक्ति व मान्यता हैं। सवके सव आज से ही नही, अपितु काफी समय से शुद्ध मान्यता के धनी 'स्थानकवासी' जैन समाज के अनुगामी रहे हैं। अत-एव यदा-कदा सती गण के चौमासे भी हुआ ही करते है। वस्तुत श्रमण सस्कृति के आचार-विचार व्यव-हार आदि धार्मिक सस्कारो से यहा के वाशिदे सर्वथा अनभिज्ञ नही रहे हैं। धर्म-साधना-आराधना के लिए एक भव्य स्थानक और कौमुदी को भी मात करने वाला सकल सघ का एक जिनालय भी वाजू मे ही खडा है। जो मजल गाँव की शोभा प्रतिष्ठा मे अभिवृद्धि कर रहा है।

गुरुप्रवर श्री प्रतापमल जी म० सा०, मैं (रमेश मुनि) प्रियदर्शी श्री सुरेश मुनि जी, श्री नरेन्द्र मुनि जी, श्री अभय मुनि जी, श्री विजय मुनि जी, श्री मन्ना मुनि जी एव सती जी श्री छोग कुवर जी म०, श्री मदन कुवर जी म० एव श्री विजय कुवर जी म० आदि साधक गण का इस रमणीय-कमनीय गाँव मे यह प्रथम प्रवेश था।

मुझे दीक्षित हुए काफी वर्ष वीत गये। लेकिन मातृभूमि के महामहिम दर्शन से मैं दूर था और मातृभूमि के सपूत जन भी गुरु भगवत आदि मुनि महासती मण्डल के दर्शनो से वचित थे। यद्यपि भक्ति से ओत-प्रोत विनती का सिलसिला कई महिनो से निरन्तर चालू था। परन्तु अनुकूल वाता-वरण के अभाव मे उधर पग फेरा न हो सका।

जेही के जेही पर सत्य सनेहु। सो तेही मिल हु न काहु सदेहु।

वस भावुक जन की भक्ति ने जोर पकडा और उधर सकल सघ-जोधपुर की विनती को मान्य-कर मालवरत्न गुरु प्र० श्री कस्तूरचन्द्र जी म० सा० ने सम्वत् २०२४ के चौमासे की आज्ञा प्रदान कर दी। वस, 'एक पथ अनेक काज' के अनुसार कई गाँव नगरो को पार करते हुए जोधपुर का चिर स्मर-णीय वर्षावास भी व्यतीत किया और मार्गवर्ती सगे सम्वन्धी जन को दर्शन देते हुए, गुरु भगवत आदि सप्त ऋषियो का मजल के पवित्र प्रागण मे पधारने का शुभ दिन भी सन्निकट आ खडा हुआ।

प्रवेश समारोह भी अपनी शानी का अनोखा था। स्वागतार्थ आए हुए भाई-वहिनो मे अथाह उमगोल्लास का प्रवाह फूट-फूट कर जयकारो के वहाने वह रहा था। व्याख्यान वाणी मे भी जैन जैनेतर अति भाव पूर्वक ठीक समयानुसार सुवह्-दोपहर मे एकत्रित होकर गुरु प्रवर के, टूटे-फूटे कुछ विचार-कण मेरे व सुरेश मुनि जी के उन नपे-तुले निखरे असरकारक शव्दो को एकाग्रता पूर्वक सुना करते थे। आवाल-वृद्ध आदि मजल के मेधावी मानव शासन चमकाने-दमकाने दीपाने मे व सेवा भक्ति मे किसी

अन्य सघो मे पीछे नही थे, वल्कि एक कदम आगे ही रहते थे। मत मण्डली को मालूम नहीं हुआ कि यह रेगिस्तान है कि—माँ का पेट मालवा देश ! सभी मुनियो का यह प्यारा नारा वन गया था।

'मजल-मण्डली महान् है।
जिन शासन की शान है।"

मजल के प्रत्येक मघ मदस्यो ने अपनी जान से तो सेवा-भक्ति मे किसी वात की कमी नही रखी। अर्थात् मकल सघ ने व आदीश्वर सेवा मण्डल के सदस्यो ने अपना पूरा-पूरा उत्तरदायित्व अदा किया। उपरोक्त गुण गरिमा के वावजूद भी जिस प्रकार प्रकृति की वेढगी चाल ने रसदार गन्ने मे गठानो की भरमार, गुलाव मे काटो की कतार, चन्दन पर सर्पों का वास, रत्नाकर समुद्र मे खार जल का व चन्द्रमा मे कलक का होना पाया जाता है। उसी प्रकार मजल के मकल मघ मे भी सगठन व एकात्मभाव की कमी खटक रही थी। अर्थात् माघिक शक्ति दो विभागो (घडो) मे वटी हुई थी। यद्यपि व्याख्यान-वाणी मे व सत को लाने पहुँचाने मे सव एक मत अवश्य थे। तथापि फूट के चगुल मे वुरी तरह जकडे हुये थे। इस वटे-घडे को काफी वर्ष हो चुके थे। वस्तुत एक कहावत भी है कि—लडाई मे लड्डू नही वँटा करते हैं।' तदनुसार फूट-फजीती-कलह-क्लेश व वैर-विरोध भीतर ही भीतर सुलगता हुआ सीमा लाघ रहा था और सघ की विकासोन्मुखी भावी योजनाओ पर तुषारापात-सा हो गया था। मानो किसी स्वार्थी कायर ने मघ रूपी रथ को आगे वढने मे ब्रेक लगा दिया हो। जो योजना सामूहिक-वैचारिक दृष्टि से चलाई जाती है, वे योजना, वे कार्य सत्वर फलदायी सिद्ध होते हैं और जहाँ सगठन ही विघटन का चरण चूम रहा है वहा नवीन योजना का प्रश्न तो दूर ही रहा, परन्तु पूर्ववर्ती योजनायें भी खटाई मे पडना स्वाभाविक है। वस यही स्थिति मजल के श्री सघ की थी। अतएव किसी उत्तम पुरुष के निमित्ति की अव आवश्यकता महसूस हो रही थी। चू कि-फूट की इति श्री होने का काल परिपक्व हो चुका था।

इस अवसर पर गुरु भगवत का शुभागमन मानो शुष्क व मूर्छित उद्यान मे अमृत वृष्टिवत् था। जन-मानस को झकझोरने वाली वाणी की वरसात होनेलगी। वाणी मे कर्कशता-कठोरता व मर्म भेदी वाण नही थे- अपितु वाणी प्रवाह मे एक ओज था, आकर्पण था, जादू था व जोश-तोप से परिपूर्ण वह मीठा आपरेशन अवश्य था। जो दर्दनाक वीमारो को मिटा दे ? लेकिन जन-मानस को पीडा कारक नही जैसा कि—

यह उपदेश नहीं गोलियाँ हैं, जो रोगी को दी जाती हैं।

वस जादूभरी वाणी के प्रभाव से सकल मघ मे स्वच्छ शान्ति का वातावरण वना, सडी-गली-गुजरी मन-मजूषा मे छुपी ग्र थियाँ ढीली हुई, खुली भी और पिघल-पिघल वहने लगी। सच्चे मन से एक दूसरे के निकट व गले मे गले मिले, गई गुजरी पूर्व सर्व वातो को वही जाजम के नीचे दफना दी गई, तत्काल गुरु भगवन के समक्ष ही पारस्परिक क्षमा का आदान प्रदान हुआ। जो सचमुच ही भीतरी मन से था। गली-गली और घर-घर मे तो क्या किन्तु कोसो दूरवर्ती वाले उन गावो मे भी खुशी हर्ष के फव्वारे फूट पडे थे। सव के मुँह पर मुस्कान अठखेलियाँ कर रही थी। गुरु प्रवर के सफल प्रयास की यत्र-तत्र सर्वत्र भूरि-भूरि प्रशसा होने लगी।

सुखद स्नेह की सरिसरी स्फुटित होने के पश्चात मकल मजल श्री सघ एव धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री

श्रीमान् भीमराज जी लक्ष्मीचन्द जी के अत्याग्रह पर उज्जैन निवासी ओसवाल श्री छोगमल जी के सुपुत्र वैरागी भाई श्री वसन्त कुमार जी को भागवती दीक्षा की गुरु भगवत ने स्वीकृति फरमाई ।

ता० ७-४-६८ चैत्र शुक्ला नवमी रविवार की शुभ वेला मे दीक्षा का मगल महोत्सव मजल श्री सघ के पावण प्रागण मे उल्लास के क्षणो मे सम्पन्न हुआ । आस-पास के हजारो श्रद्धालु मुमुक्षुओ के अलावा कई अधिकारी कर्मचारी भी इस उत्सव मे सम्मिलित हुए थे । मजल के इतिहास मे अपनी शानी का प्रथम यह धार्मिक अनुपम आयोजन था । इस महोत्सव से जैनधर्म की आशातीत प्रभावना हुई । कई जैन-जैनेतर नर-नारियो ने दीक्षोत्सव देखकर अपना जीवन सफल किया ।

इस समारोह का सर्वश्रेय मजल सघ एव श्री भीमराज जी लक्ष्मीचन्द जी को है जिन्होंने उदार चित्त से चतुर्विध सघ की महान् सेवा कर विपुल लाभ उपार्जन किया ।

आज मजल के सकल सघ सदस्य एक माला के रूप मे गुम्फित हैं । सभी सहोदर की तरह मिलते-जुलते-विचारते व प्रत्येक कार्य मे सहयोगी बन हाथ बटाते हैं । घर-घर मे वहाँ आज प्रेम-मैत्री स्नेह की मीठी रसदार गगा बह रही है । जिसमे वहाँ के निवासीगण डुबकी लगाकर शुद्ध-विशुद्ध हो रहे हैं । उपदेश-सन्देश के प्रभाव से वहाँ नूतन सगठन का निर्माण हुआ । अतएव गुरु प्रताप का प्रताप वहाँ के वासियो पर युग-युगान्तर अमर-अमिट रहे इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

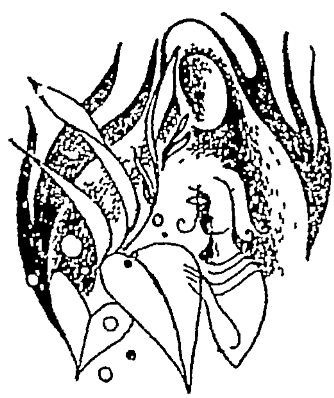

शिष्य-प्रशिष्य परिचय

१—तपस्वी श्री वसन्तलाल जी महाराज :—

आप मदसौर निवासी स्व० श्री रतनलाल जी ओसवाल दुगड के सुपुत्र हैं। स्व० सती शिरोमणि श्री हगाम कुवर जी महाराज की सत्प्रेरणा से आप को ज्ञान गर्भित वैराग्य उत्पन्न हुआ। तदनुसार ता० २१-२-४० को रतनपुरी (रतलाम) मे गुरु प्रवर के चरण कमलो मे प्रथम शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त किया। यथा बुद्धि हिन्दी-सस्कृत-एव जैनागम का पठन-पाठन पूर्ण किया। ज्ञान-ध्यान एव स्वाध्याय मे आप की रुचि अधिक रही है। वस्तुत काफी वर्षों से आप लवा आसन अर्थात् न दिन मे और न रात मे शयन करते हैं। कभी एकान्तर, कभी वेले-तेले इस प्रकार निरन्तर रग-रगीली तपाराधना के साथ-साथ वहुधा मौन एव ज्ञान-ध्यान मे वाधा न पड़े, इस कारण जन कोलाहल से दूर रहना ही आप की अन्तरात्मा को अभीष्ट है।

गुरुदेव एव घोर तपस्वी खद्दरधारी स्व० श्री गणेशलाल जी महाराज का साहचर्य पाकर आप की साधना अधिकाधिक सवल-सफल एव चमक उठी एव जन-जीवन के लिए श्रद्धा का केन्द्र वनी हुई है।

कई महा मनस्वी मुनियो की महान् चरण सेवा कर अपने महा मूल्यवान सयमी जीवन को लाभान्वित कर चुके हैं। अद्यावधि आप ने मालवा, उत्तरप्रदेश, विहार, वगाल, नेपाल, खानदेश, राजस्थान, गुजरात, पजाव, आध्र और कन्नड प्रातो की हजारो मील की पद यात्रा तय कर चुके हैं। आप श्री की वक्तृत्व शैली सीधी-सादी श्रोताओ के हृदय को छूने वाली है। अभी आप खानदेश-महाराष्ट्र मे विचरण करते हुए शासन की प्रभावना वढा रहे हैं।

२—श्री राजेन्द्र मुनि जी महाराज शास्त्री —

आपका जन्म पीपलु (म० प्र०) ग्राम मे क्षत्रियकुल भूपण सोलकी गोत्रीय श्री लक्ष्मणसिंह जी की धर्मपत्नी सौ० श्री सज्जन देवी की कुक्षी से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन हुआ था। शैशव काल से ही आप की प्रवृत्ति धार्मिक कार्यों मे विशेष रही।

एकदा अहमदावाद मे आपको गुरु प्रवर श्री प्रतापमल जी महाराज के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। 'जैसा सग वैसा रग' तदनुसार गुरुदेव की अमृत वाणी सुनकर आपके हृदय सागर मे वैराग्य की गगा फूट पडी। साथ ही साथ जैन मुनि-महामतियो के प्रति प्रगाढ श्रद्धा उत्पन्न हुई और धार्मिक अध्ययन भी प्रारम्भ कर दिया। स्वल्प काल मे ही आशातीत सफलता मिली और वैराग्य भाव पुष्ट वने। अतत वि० स० २००८ वैशाख शुक्ला ८ की शुभघडी मे खण्डेला (जयपुर) मे पू० श्री रघुनाथजी महाराज एव गुरुदेव श्री प्रतापमल जी महाराज आदि मुनि सघ की उपस्थिति मे दीक्षाव्रत स्वीकार किये।

दीक्षोपरात गुरुदेव के नेतृत्व मे हिन्दी-सस्कृत-प्राकृत भापाओ का अच्छा ज्ञान उपलब्ध किया एव धार्मिक शास्त्री तक की परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण की। स्वर की माधुर्यता के कारण आपकी व्याख्यान शैली

१

तपस्वी मुनि श्री बसन्तीलालजी

२

श्री राजेन्द्र मुनि जी मा

३

श्री रमेश मुनि जी मा

११

श्री कान्ति मुनि जी मा.

卐 मेवाड़ भूषण धर्म सुधाकर पण्डितरत्न 卐

पूज्य गुरुदेव श्री प्रताप मल जी महाराज सा की जय

४

श्री सुरेश मुनि जी मा

१०

श्री प्रकाश मुनि जी मा

५

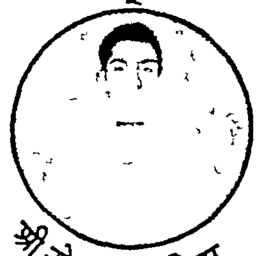

श्री नरेन्द्र मुनि जी मा

९

श्री बसन्त मुनि जी मा

८

श्री मन्ना मुनि जी मा

७

श्री विजय मुनि जी मा

६

तपस्वी मुनि श्री म्रमप मा

रोचक है। आप द्वारा हिन्दी मे अनुवादित वर्धमान भक्तामर काफी आदरणीय वनी है। अभी आप एव साथी मुनि वीरपुत्र श्री सोहन मुनि जी महाराज खानदेश एव महाराष्ट्र प्रातो मे धर्म की अपूर्व सेवा कर रहे हैं।

३—श्री रमेश मुनि जी महाराज, सिद्धान्त आचार्य, साहित्य रत्न :—

मजल (मारवाड) निवासी श्रीमान् सेठ वस्तीमल जी की धर्मपत्नी श्रीमती आशा वाई कोठारी के भरे-पूरे सुसम्पन्न परिवार मे आपका जन्म हुआ। वाल्य एव किशोरावस्था विद्यार्जन व व्यापार मे वीती। सहसा आपको अन्त करण प्रेरणा एव महासती श्री वालकुवँर जी महाराज की वैराग्य भरी शिक्षाओ ने आप को प्रतिबोधित किया। तभी आप की अन्तरात्मा अपने परिवार को कहे विना ही दुष्प्राप्य पथ की खोज मे निकल पडी।

उस वक्त गुरु भगवन्त श्री प्रतापमल जी महाराज आगम विशारद प० श्री हीरालाल जी महाराज ठा० ६ का चातुर्मास कलकत्ता में था। येन-केन प्रकारेण आप वहाँ पहुँचे और अपनी वैराग्य भावना प्रगट की। तीक्ष्ण बुद्धि के कारण कुछ ही दिनो मे अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। तव सुयोग्य समझ-कर झरिया श्री सघ ने ता० ९-५-५४ की मगल प्रभात मे विशाल जन समारोह के साथ दीक्षोत्सव सम्पन्न किया। अर्थात् गुरुप्रवर का आपने शिष्यत्व स्वीकार किया। दीक्षोपरान्त गुरुदेव एव गुरु भ्राताओ के सहयोग से साहित्य रत्न, सस्कृत विशारद, जैन सिद्धान्त आचार्य आदि उच्चतम परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। आप लेखक, वक्ता कवि की श्रेणी मे गिने जाते है। आप द्वारा लिखित कई कृतियाँ विद्यमान हैं—प्रताप कथा कौमुदी १, २, ३ जीवन दर्शन, वीरभानउदयभान चरित्र, गीत पीयूष, विखरे मोती निखरे हीरे, आदि। आप की वक्तृत्व शैली आत्मिक तत्वो से प्लावित एव श्रोताओ के मानस स्थली को छूने वाली है।

४—प्रियदर्शी श्री सुरेश मुनिः—

आप जाति के जयशवाल दिगम्वर जैन सम्प्रदाय के मानने वाले थे। श्री गया प्रसाद जी जैन एव माता ज्ञान देवी की कुक्षी से जन्म हुआ था। व्यापारी क्षेत्र मे जल्दी उतर जाने के कारण शैशव-काल मे विद्याध्ययन सीमित ही रहा। वम्वई एव कानपुर मे आप व्यवसाय कर रहे थे।

सम्वत् २०१६ का चौमासा गुरदेव आदि मुनिवरो का विले पारले (वम्वई) मे था। पीपी-गज निवासी त्रिलोक चन्द जी के साथ-साथ आप भी दर्शनार्थ उपस्थित हुए। जैन मुनियो के आचार विचार से आप अत्यधिक प्रभावित हुए। वस, एकदम जीवन मे भारी परिवर्तन ले आए और दुकानदारी को समेट कर गुरुप्रवर को सेवा मे अर्ज की कि—आप अपना शिष्य वनाकर मुझे भी धन्य वनावे। विहार यात्रा मे साथ हो चले और आवश्यक ज्ञान साधना भी शुरू कर दी गई। सुयोग्यता देखकर सम्वत् २०१६ माघ शुक्ला १३ की मगलवेला मे श्री घोटी सघ ने दीक्षोत्सव का अपूर्व लाभ उपाजन किया। दीक्षा का सर्वश्रेय श्रद्धेय प०रत्न श्री कल्याण ऋषि जी महाराज आदि मुनिवरो को है। जिनकी वल-वन्ती प्रेरणा घोटी श्री सघ को मिलती रही।

दीक्षाव्रत अगीकार करने के पश्चात् गुरुप्रवर के सान्निध्य मे हिन्दी, सस्कृत एव धार्मिक अभ्यास पूण किया। आप की व्याख्यान शैली वहुत ही मथर गति से चलती है। भाषा मजी हुई एव सरल सुवोध होने के कारण श्रोताओ के मन को आकर्षित कर लेती है। चन्द ही वर्षों मे आपने अपने जीवन मे धीर वीर गम्भीर एव धीमेपन गुण को काफी विकसित किया है। यही कारण है—कि आप

साथी मुनियो को निभाना अच्छी तरह जानते हैं। सत एव सती मडल को साफ स्पष्ट सलाह देने मे भी प्रवीण हैं। गुरु भक्ति मे पक्के निष्ठावान हैं। प्रथम प्रशिष्य के रूप मे अलकृत किया गया।

५—श्री नरेन्द्र मुनि जी महाराज —

मेवाड प्रात मे स्थित 'विलोदा' आप की जन्म स्थली है। श्रीमान् भेरूलाल जी एव सौ० धूलि देवी की कुक्षी से आपका जन्म हुआ। तात-मात की तरह वालक का जीवन भी सुसस्कारो से ओत-प्रोत रहा। फलस्वरूप साधु-जीवन के प्रति प्रगाढ अनुराग स्वाभाविक था। कोई भी सत-सती विलोदा गाँव मे पहुचते ही, वालक नाथूलाल सेवा मे हाजिर होकर विना कहे आहार पानी की दलाली मे जुट जाता।

विलोदा होते हुए हमारा मुनि सघ उदयपुर पधार रहा था। उस समय वावू नाथूलाल अपने मात-पिता से पूछकर मुनियो के साथ हो गया और रुचि-अनुसार धार्मिक एव सामाजिक अध्ययन भी शुरू कर दिया। इस प्रकार उदयपुर का वर्षावास पूर्ण होने के पश्चात् श्रीमान् भेरूलाल जी ने नीमच के जैन स्थानक मे दीक्षा का आज्ञा पत्र लिखकर गुरुदेव श्री के कर कमलो मे समर्पित किया। तदनुसार स० २०२० माघवदी १ की शुभ घडी मे मल्हारगढ के मगल प्रागण मे दीक्षा समारोह सपन्न हुआ। आप को गुरुप्रवर के प्रशिष्य के रूप मे घोषित किया गया।

अव आप अध्ययन कार्य मे रत हैं। चन्द ही वर्षों मे आपने अच्छी योग्यता प्राप्त की है। व्याख्यान शैली का प्रवाह भी धीरे-धीरे निखर रहा है। प्रकृति से आप शीतल-शात एव समताशील हैं। मातृभाषा हिन्दी-अध्ययन मे आपकी अभिरुचि अधिक है। गुरु-भक्ति मे आप पूर्ण श्रद्धावान् साधक हैं। गुरुदेव श्री के आप प्रशिष्य के रूप मे घोषित किये गये।

६ – तपस्वी श्री अभय मुनि जी महाराज —

आप की जन्मस्थली 'काकरोली' मेवाड है। स्व० श्रीमान् चुन्नीलाल जी स्व० श्रीमती नाथीवाई सोनी गोत्रीय ओसवाल परिवार मे आपका जन्म हुआ है। वाल्यकाल सघर्षमय रहा। तथापि जीवन आशा से ओत-प्रोत रहा। साधु जीवन के प्रति प्रगाढ स्नेह था। कई महा मनस्वियो की सेवा कर जीवन को सुसस्कारी वनाया। प्राय उज्जैन मे आप व्यवसाय किया करते थे।

महासती श्री छोग कुवरजी, श्री मदनकुवरजी, श्री विजय कुवरजी ठा० ३ स० २०२२ का चौमासा नयापुरा उज्जैन था। तव महासती जी के सदुपदेश से आपकी अन्तरात्मा जागृत हुई और अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री भेरुलाल जी से पूछ कर सीधे रतलाम चले आये। जहाँ मालव रत्न गुरु श्री कस्तूरचन्द जी म० एव प० रत्न श्री रमेश मुनि जी म० का वर्षावास था। सेवा मे पहुचकर धार्मिक साधना शुरू करदी।

आवश्यक ज्ञान होने के पश्चात प्रतापगढ की रम्यस्थली मे स० २०२२ माघवदी ३ के मगल प्रभात मे आपका दीक्षा समारोह सपन्न हुआ। गुरुदेव श्री प्रताप मलजी म० का शिष्यत्व आपने स्वीकार किया।

मुख्य रूपेण आप का परम ध्येय-सत-सेवा एव तपाराधना ही रहा है। विनय-अनुनय एव भक्ति मे आप का जीवन ओत-प्रोत है। अभी तक आप ८ ६ ११ १५ २१ तक की लम्बी तपाराधना कर चुके हैं।

७—श्री विजय मुनि जी महाराज 'विशारद' —

उदयपुर निवासी श्रीमान् कोठारी मनोहरसिंहजी एव सौ० श्रीमती शातादेवी की गोद से वि० स० २००८ माघ सुदी १० मगलवार की शुभ घडी मे जन्म हुआ था। मात-पिता की ओर से पुत्र विजय कुमार को सस्कार अच्छे मिले। प्रारम्भ मे ही कोठारी जी की इच्छा थी कि—हम अपने विजय और वीरेन्द्र कुमार को धर्म-सेवा मे समर्पित करेंगे। तदनुसार स० २०२० का चातुर्मास गुरुदेव आदि मुनिवृन्द का उदयपुर था। मुनियो के मधुर व्यवहार से प्रसन्न होकर मान्यवर कोठारी जी ने अपने पुत्र विजय कुमार को साधनामय जीवन के लिए गुरुदेव के वरद हाथो मे सौंप दिया। तत्काल धार्मिक अध्ययन प्रारम्भ कर दिया गया।

उपयोगी ज्ञान साधना एव परिपक्व वैराग्य के होने पर स० २०२३ मृगसर वदी १० की शुभ वेला मे मन्दसौर के रम्य-भव्य स्थली मे दीक्षोत्सव सम्पन्न हुआ। इस उत्सव मे काफी साधु-साध्वी एव हजारो मुमुक्षु ने भाग लिया था। यह समारोह भी अपनी शानी का अनुपम था। गुरुप्रवर श्री के प्रशिष्य के रूप मे आप घोषित किये गये।

दीक्षोपरान्त विनय-विवेक-विद्याध्ययन का अच्छा विकास किया। हिन्दी-सस्कृत-और प्राकृत अध्ययन मे रत हैं। व्याख्यान शैली जोशीली व रुचिवर्धक है। कवित्त कला एव लेखन कला मे आपकी प्रशसनीय गति है। श्रोताओं को पूर्ण विश्वास है कि भविष्य मे आप अच्छे मनस्वी एव व्याख्यान दाता वनेंगे।

८—आत्मार्थी श्री मन्ना मुनि जी महाराज -

स २०२४ का वर्षावास गुरुदेव आदि सप्त ऋषियो का जोधपुर था। उस समय आप वोटाद गुजरात प्रात की ओर से दीक्षा की शुभ भावना को लेकर इधर आए हुए थे। लिखित प्रश्नो का गुरुदेव के मुखारविन्द से उचित समाधान प्राप्तकर आप काफी प्रभावित हुए और दीक्षा की भावना व्यक्त की। आप मुझे भागवती दीक्षा प्रदान कर धन्य बनावें। अच्छा सयम पालने की मेरी रुचि आप का शिष्यत्व पाकर सुदृढ वनेगी और रत्न त्रय की अच्छी सवृद्धि होगी।

तदनुसार स० २०२४ मृगसर वदी १० के मगल प्रभात मे जोधपुर के पवित्र प्रागण मे दीक्षोत्सव सम्पन्न हुआ।

आप को दशवैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र एव कई थोकडे भी कठस्थ हैं। सदैव ज्ञान-ध्यान मे निमग्न रहते हैं। यदा-कदा तपाराधना भी किया करते हैं। हिन्दी एव गुर्जर भाषा मे व्याख्यान भी फरमाते है। गुरुदेव के निश्राय मे आपको वनाये गये हैं।

९—श्री वसन्त मुनि जी महाराज स० —

आप उज्जैन के ओसवाल श्रीमान् छोगमल जी के सुपुत्र है। स० २०२४ का जोधपुर चातुर्मास था। जोधपुर मे दर्शन के निमित्त से आए हुए थे। उन्ही दिनों सन्तो के आप अधिक सम्पर्क मे आए और एकदम भावना मे परिवर्तन ले आए। तदनुसार अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री माणिक लालजी एव मातेश्वरी की अनुमति प्राप्तकर स० २०२५ माघसुदी १५ के दिन भागवती दीक्षा आपकी मजल नगर मे सम्पन्न हुई। प्रशिष्य के रूप मे आपको घोषित किया गया। सदैव रत्नत्रय की अभिवृद्धि के आप अभिलाषी एव सन्त-सेवा भी किया करते हैं। हिन्दी प्राकृत-सस्कृत अध्ययन मे रत हैं।

१०—श्री प्रकाश मुनिजी म० साहित्यरत्न -

वि० स० २००६ माघशुक्ला ११ रविवार के दिन श्रीमान् नाथूलालजी धर्म की पत्नी श्रीमती सोहन वाई गाग की कुक्षि से जन्म हुआ। शैशव काल सुख शान्ति के क्षणो मे वीता। येन-केन-प्रकारेण मुनि-महासती वर्ग का सम्पर्क मिलता रहा। जीवन मे सुप्त सस्कार फूलझडी की तरह विकसित होते रहे। फलस्वरूप प्रभुलाल की अन्तरात्मा धर्म-रग से ओत-प्रोत हो उठी। पारिवारिक विघ्न घटा से उत्तीर्ण होने के पश्चात् स० २०२५ माघ शुक्ल १५ की मगल प्रभात मे भीम नगर के सघ द्वारा विशाल पैमाने पर दीक्षोत्सव सम्पन्न किया गया। इस धार्मिक महोत्सव मे स्थानीय एव वाहर के हजारो मुमुक्षुओ ने लाभ प्राप्त किया।

साधना मार्ग पर आरूढ होने के पश्चात् गुरुदेव का साहचर्य पाकर श्री प्रकाश मुनि जी अध्ययन रत हैं। विनय-विवेक विद्याध्ययन एव सेवा गुण को दिन प्रतिदिन विकसित कर रहे हैं। समाज को ऐसे नवयुवक सन्त से काफी आशा है। आपने गुरु प्रवर का शिष्यत्व स्वीकार किया।

११-१२ - श्री सुदर्शन मुनि जी म० एव श्री महेन्द्र मुनि जी म० सा० —

अमृत शहर के गढका ग्राम के आप निवासी है। अग्रवाल जाति म जन्म लेकर राजवैद्य नाम को खूब ही चमकाया है। वैद्य-कला मे आप (श्री सुदर्शन मुनि जी) अतीव निपुण एव अनुभवशील रहे हैं। ससारी पक्ष की दृष्टि से आप दोनो पिता-पुत्र हैं। गुरु प्रवर एव मुनिमण्डल का माधुर्य भरा व्यवहार एव प्रशस्त आचार सहिता को देखकर दोनो अत्यधिक प्रभावित हुए। इन्दौर एवं उज्जैन मे उपस्थित होकर अनुरोध किया कि—आप हमे अपने चरण कमलो मे स्थान दें। ताकि हमे स्व-पर के कल्याण का सुनहरा अवसर मिल सके।

आपके अत्याग्रह पर परोपकारी गुरुदेव ने वि० स० २०२६ जेठ वदी ११ को हसन पालिया मे निराडम्वर तरीके से दीक्षा व्रत प्रदान किया। साधना मय जीवन का परिपालन करते हुए जिनशासन प्रभावना की अभिवृद्धि मे सलग्न हैं।

१३—श्री कांति मुनि जी म० सा० —

उज्जैन निवासी श्रीमान् अनोखीलालजी, श्रीमती सोहनवाई पितलिया की कुक्षि से वि० स० २० ७ वैशाख सुदी ४ (चौथ) के दिन जन्म हुआ। शैशवकाल अध्ययन एव मुनियो की सेवा मे व्यतीत हुआ। 'जैसा सग वैसा रग' तदनुसार गुरुप्रवर श्री कस्तूर चन्दजी म० सा० की सेवा मे काफी वर्षो तक रहे। धार्मिक सस्कार, अध्ययन एव आवश्यक अनुभव सीखते रहे। तत्पश्चात् वैराग्य भाव परिपुष्ट होने के वाद मात-पिता की अनुमति प्राप्त कर स० २०२७ माघ शुक्ला ५ रविवार की मगल प्रभात मे छायन ग्राम के सघ द्वारा भागवती दीक्षोत्सव सम्पन्न किया गया। गुरुदेव का शिष्यत्व स्वीकार किया। अव रत्नत्रय की अभिवृद्धि एव साधना मे दत्तचित्त है।

उपसंहार :—

"To love one that is great is almost to be great oneself" अर्थात् महान् आत्मा के प्रति अनुराग करना स्वय को महान् वनाना है।

यद्यपि पवित्र पुरुषो का सारा जीवन ही गुण सुमनो से ग्रन्थित, गर्भित, गुम्फित एव सुप्रेरणा

का पवित्र प्रतीक माना गया है। जीवन का प्रत्येक कण और प्रत्येक क्षण परोपकार-महक से महकता है, सेवाधर्म से दमकता है और शील सदाचार से चमकता रहता है।

इसलिए एक सामान्य साधक द्वारा एक महामहिम मनस्वी के सयमी जीवन का सागोपाग एव सुष्ठुरित्या वर्णन-विश्लेपण करना असाध्य ही नही अपितु एक दुष्कर कार्य भी है। चूँकि गुण तो इतस्तत विखरे हुए असीम हैं और लेखक की वही एक जिह्वा और वही एक लेखनी जो उस समय मे एक ही गुण का कथन व चित्रण कर पाती है।

मैंने भी अपने भीतर मे उभरते हुए मनोभावो की वलवती प्रेरणा से प्रेरित होकर चन्द शव्दो द्वारा परम प्रतापी यमनियमनिष्ठ, जैनोज्वल मणि, महामहिम गुरुप्रवर श्री प्रतापमलजी म० के ज्योतिर्मय सयमी जीवन की झिलमिलाती झाँकी विद्वद् वृन्द के कमनीय कर कमलो मे अर्पित की है। पर्याप्त सामग्री अनुपलव्ध होने के कारण तथा पूरी जानकारी के अभाव मे यद्यपि जहाँ तहाँ त्रुटिया एव यत्रतत्र प्रासगिक भाव आदि छूट भी गये हैं। तथापि इस सम्यक् परिश्रम के लिये मैं अपने आपको शतवार भाग्यशाली मानता हूं कि—एक यशस्वी ओजस्वी आत्मा के प्रति मुझे कुछ लिखने का सौभाग्य मिला है। जो हर एक लेखक एव वक्ताओ के लिये दुष्प्राप्य सा रहा है। इस परिश्रम की सफलता का श्रेय भी मेरे उन्ही श्रद्धेय गुरु देव को है, जिन्होंने मुझे वास्तविक सावना के मगलमय महामार्ग का दर्शन करवाया है।

जिस प्रकार गुलाव मानव के दिल-दिमाग को ताजगी एव स्फूर्ति प्रदान करता है उस प्रकार गुरु भगवत का जीवन भी भव्यात्माओ के मनमस्तिष्को मे सत्य, शिव, सुन्दरम् की शीतल मन्द सुगन्ध प्रस्फुरित करता रहेगा। अतएव कहा है कि—महापुरुषो के गुणानुवाद करना मानो अपने आप को महान् वनाना है।

लेखक का सर्वोपरि ध्येय व लक्ष्य व्यक्ति के जीवन निर्माण का है। जिसका आधार है—गुरु भगवतो का साधना मय चमकता जीवन, दमकता उपदेश, अनुभव एव इनके धार्मिक आत्मिक विचार और आचार, इन्ही मौलिक विचारो के माध्यम से ही व्यष्टि और समष्टिगत जीवन का सम्यक् सुन्दर स्वस्थ निर्माण सम्भव है।

महापुरुषो का पढ़हु चरित्र। ताते होय जीवन सु पवित्र॥

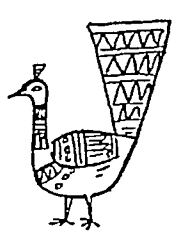

गुरुदेव के अद्य प्रभृति चातुर्मास

१९८०	व्यावर	२००५	अहमदावाद
१९८१	रामपुरा	२००६	पालनपुर
१९८२	मन्दसौर	२००७	वकाणी
१९८३	रतलाम	२००८	देहली
१९८४	जावरा	२००९	कानपुर
१९८५	"	२०१०	कलकत्ता
१९८६	रतलाम	२०११	सैंथियां
१९८७	"	२०१२	कलकत्ता
१९८८	इन्दौर	२०१३	कानपुर
१९८९	रतलाम	२०१४	मन्दसौर
१९९०	"	२०१५	पूना
१९९१	"	२०१६	(वम्वई) विलेपारले
१९९२	"	२०१७	रामपुरा
१९९३	जावरा	२०१८	रतलाम
१९९४	जलगाव	२०१९	अजमेर
१९९५	हैदरावाद	२०२०	उदयपुर
१९९६	रतलाम	२०२१	इन्दौर
१९९७	दिल्ली	२०२२	वडी सादडी
१९९८	सादड़ी (मारवाड)	२०२३	मन्दसौर
१९९९	व्यावर	२०२४	जोधपुर
२०००	जावरा	२०२५	मदनगज
२००१	शिवपुरी	२०२६	मन्दसौर
२००२	कानपुर	२०२७	वडी सादडी
२००३	मदनगज	२०२८	देवगढ
२००४	इन्दौर	२०२९	डूंगला
		२०३०	इन्दौर

संस्मरण
शुभकामनाएं
वंदनाञ्जलियां

संस्मरण

१. वाणी का प्रभाव

सम्वत् २००४ का चातुर्मास तपस्वी श्री छव्वालाल जी म० सा० एव गुरु प्रवर श्री प्रतापमल जी म० सा० आदि मुनिवरों का विराट् नगर इन्दौर मे था। उन दिनो राजनैतिक क्षेत्र मे भारी उग्रता छाई हुई थी। अग्रेजो की करतूतो ने अखण्ड भारत को हिंद और पाकिस्तान के रूप मे विभक्त कर दिया था। एतदर्थ जन-जोवन मे पर्याप्त अस्थिरता एव भगदड मची हुई थी।

उन दिनो पजाव प्रान्त के काफी जैन परिवार भी अपने भावी जीवनोत्थान एव सुरक्षा की भावना से प्रेरित होकर इन्दौर शहर की ओर चले आये थे। आगत जैन वन्धु सीधे जैन स्थानक मे आकर गुरुदेव के समक्ष आद्योपात घटित घटना कह सुनाने व स्थानीय कार्यकर्त्ताओ के समक्ष मकान, दुकान, भोजन समस्या को सामने रखते थे। उस समय मध्य प्रदेश मे राशन भी कडा था और तन मन-धन से शुभागत वन्धुओ का सम्मान-सत्कार एव सहयोग करना-करवाना भी अनिवार्य था।

विकट परिस्थिति को ध्यान मे रखकर गुरु प्रवर ने अनुपम सूझ-बूझ से कार्य किया। सघ-सुविधा की दृष्टि से प्रारम्भिक तौर पर एक लघु योजना के माध्यम से स्थानीय कार्यकर्त्ताओ को मार्ग-दर्शन देते हुए कहा कि अभीहाल 'सेवासदन' (आयम्विल खाता) योजना को आप सभी सर्वानुमति से कार्यान्वित करें ताकि यथाशक्ति आगत सभी जैन परिवार ज्यादा से ज्यादा लाभान्वित हो सके।

स्थानीय सघ के श्रद्धावान सदस्यगण ननुनच कुछ भी कहे विना गुरुप्रवर के अमूल्य वचनो को शिरोधार्य करते हैं। शुभ घडी पल मे सेवा सदन अर्थात् (आयविल खाता) नामक सस्था की स्थापना हुई। आज इन्दौर का सेवा सदन मेरी दृष्टि मे राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, प्रान्तो मे यह एक पहली ठोस सस्था है जो साधर्मी सेवा के वरदान से उत्तरोत्तर प्रगतिशील एव पल्लवित-फलित होती जा रही है। जहाँ प्रति वर्ष समाज के हजारो वन्धु जन लाभान्वित होते हैं।"

इस रचनात्मक कार्य के लिए इन्दौर स्थानकवासी समाज का वच्चा-वच्चा गुरु भगवत के सामयिक कार्य कुशलता की मुक्त कठ से प्रशसा करता हुआ प्रतिवर्ष सश्रद्धा आप को याद करता है।

२. जोडने की कला

गुरुदेव श्री प्रतापमल जी म० सा०, प्र० श्री हीरालाल जी म० सा० आदि मुनि मण्डल सवत् २००८ का चौमासा राजधानी दिल्ली मे विता रहे थे। जनता उपदेशामृत से अधिक लाभान्वित हो रही थी।

उन दिनो दिगम्वर जैन सम्प्रदाय के आचार्य श्री सूर्यसागर जी म० व इसी समाज के आचार्य नेमिसागर जी म० का चौमासा भी दिल्ली के उपनगर मे था। अनेकों वार गुरु प्रवर श्री के एव सूर्य सागर जी म० सा० के सयुक्त व्याख्यान हो चुके थे। एतदर्थ दिगम्वर समाज गुरुदेव के माधुर्य व्यवहार

से काफी प्रभावित हो चुका था। किंतु श्री सूर्यसागर जी म० एव श्री नेमिसागर जी म० के सम्मिलित व्याख्यान व स्नेह मिलाप न हो पाया था। वस्तुत दिगम्बर समाज के अनुयायियो को जैसा चाहिए वैसा सतोषानुभव नही हो रहा था।

अवसरज्ञ प्रवुद्ध वर्ग द्वारा दोनो आचार्यों के व गुरु प्रवर के सम्मिलित प्रवचन हो, ऐसी योजना तैयार की गई। तदनुसार मुनिवरो से स्वीकृतियाँ प्राप्त कर रविवारीय कार्यक्रम प्रकाशित भी करवा दिया गया।

सहसा कुछ गई-गुजरी बातो को लेकर दोनो आचार्यो मे तना-तनी बट गई। संयुक्त व्याख्यान योजना खटाई मे जा गिरी। दोनो महा मनस्वियो को समझावे कौन ? प्रकृतियो का उदयभाव विचित्र हुआ करता है। यदि व्याख्यान शामिल नही हुए तो सचमुच ही कार्यकर्ताओ की एव जिन-शासन की अच्छी नही लगेगी ऐसा सोचकर दिगम्बर समाज के कुछ जाने-माने महानुभाव गुरुदेव श्री की सेवा मे आये और सारी घटना की मूलोत्पत्ति कह सुनाई।

मुनि जी ! आप शाति के अग्रदूत हैं। वहाँ पधार कर हमारे दोनो आचार्यों को समझाकर पारस्परिक वैमनस्यता को खत्म करवा दीजिएगा। ताकि रविवार की विस्तृत व्याख्यान योजना सफल बन सके। हमे विश्वास है कि—आप जोडने की कला मे कुशल हैं। आपकी जुबान मे पीयूष भरा है। इस कारण वातावरण अच्छा बनेगा।

गुरुदेव ने आगत दिगम्बर समाज के कार्यकर्ताओ को पूर्ण विश्वास दिया। उनके नम्र निवेदन पर वहाँ पधारे। बात की बात मे दोनो आचार्यों के बीच प्रेम की गगा वहा दी। खुशी के फव्वारे फूट पडे। व्याख्यान योजना आशातीत सफल रही। इस प्रकार दिगम्बर जैन समाज मे गुरुप्रवर का शाति मिशन सफल हुआ। यत्र-तत्र-सर्वत्र स्नेह सरिता बहाने वाले साधक की जय घोष से धर्मशाला का प्रागण मुखरित हो उठा।

३ गुरुदेव के उत्तर ने मुझे आकर्षित किया

सम्वत् २०१० की घटना है। स्व० सती शिरोमणि गुराणी जी श्री वालकुवर जी म० सा० आदि सती वृन्द का चौमासा 'हरसूद' मध्यप्रदेश मे था। येन केन-प्रकारेण उज्जैन से मेरा भाग्य भी उन सतियो की विहार यात्रा मे साथ था। पाद यात्रा के कडवे-मीठे अनुभव करते हुए हरसूद नगर मे सती वृन्द का प्रवेश हुआ। स्थानीय सघ का अत्यधिक स्नेह देखकर मैंने भी चातुर्मास पर्यन्त वही रहना ठीक समझा। कतिपय सज्जन वृन्द मुझे अपने यहाँ पर रखने लिये अति उत्सुक थे और सतीजी से कहलाया भी सही, किन्तु मेरी अन्तरात्मा बिल्कुल इन्कार पर इन्कार कर रही थी। जैसाकि—'पहले का ना धोया कीच, फिर कीच बीच फंसे' इस कहावतानुसार दलदल मे उलझना मैंने ठीक नही समझा।

अन्तत वर्षावास पूर्ण होने आया। तब वडी महासतीजी ने फरमाया कि—रतन ! चातुर्मास पूर्ण हो रहा है, अब तुम्हे अपने भाग्य का निर्णय कर लेना चाहिए। क्या करना ? कहाँ रहना ? और कहाँ जाना ? माना कि तुम्हे रखने वाले साधर्मी बन्धु बहुत हैं, तथापि अपनी बुद्धि से जिस क्षेत्र मे रहने मे तुम्हारी अन्तरात्मा प्रसन्न हो नि सकोच उस मार्ग का चुनाव कर लेना चाहिए। पताका की तरह मैं

विचारो की दुनियां मे डोल रहा था। चिंतन की तरगे कभी धर्म पक्ष मे तो कभी ससार पक्ष मे हिलोरें मार रही थीं। एक दिन स्वप्न मे आवाज आई कि—"कही दल-दल मे मत फँसना, कठिनता से सुनहरा अवसर हाथ लगा है।" बस किसी की सलाह लिये बिना मैंने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया।

उन्ही दिनो अर्थात् स० २०१० का चातुर्मास गुरुदेव श्री प्रतापमल जी म० आदि ठाणा ६ का कलकत्ते मे था। मेरे माध्यम से ही 'हरमूद-कलकत्तें' के बीच चौमासे मे पत्रो का आदान-प्रदान हुआ करता था। वस्तुत मुझे भली प्रकार मालूम था कि—इन्ही सतियो के गुरु महाराज का चौमासा कलकत्ते मे है। उन्मुकता पूर्वक यदा-कदा मैं सती मण्डल से सन्त-स्वभाव सम्बन्धित परिचय पूछ भी लिया करता था। परिचय सन्तोषजनक मिलता रहा। तब गुरुप्रवर के पवित्र चरणो मे मैंने एक पत्र लिखा।

"मैं हुजूर की पावन सेवा मे दीक्षा लेने के लिए आना चाहता हूँ। यद्यपि प्रकृति से वाकिफ न आप हैं और न मैं हूँ। आप मेरे लिए नये और आप के लिए मैं नया हूँ। तथापि जीवन पराग की सौरभ छिपी नही रहती है। आपके विमल व्यक्तित्व की महक यहाँ तक व्याप्त है। मुझे तो आपका ही शिष्यत्व स्वीकार करना है। मैं मारवाड राज्य का निवासी हूँ। अतएव शीघ्र प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा मे हूँ। सघ की तरफ से उत्तर दिलाने मे विलम्ब न होने पावे। क्योंकि चौमासा काल पूर्ण होने आ रहा है। फिर मैं आपको कहाँ ढूढूँगा। मुझे अतिशीघ्र निज भाग्य का निर्णय करना है।

— दर्शनाभिलाषी

हरमूद मध्य प्रदेश — रतनचन्द कोठारी

चातुर्मास पूर्ण होने के तीन दिन बाद एक लिफाफा मुझे मिला। जिसमे हृदय स्पर्शी निम्न भाव थे—

आप खुशी-खुशी से पधारें। कलकत्ते का स्थानकवासी जैन सघ आपका भावभीना स्वागत करेगा। आपकी पवित्र भावना को शतबार साधुवाद है। आपकी सफलता के लिए शासनदेव सहयोगी बने। कुछ शर्तें निम्न प्रकार हैं। उन्हे शान्त दिमाग मे विचार कर एव अच्छी तरह पढकर फिर आगे कदम रखें—

(१) किसी प्रकार का जीवन मे लोभ-लालच न हो,
(२) जीवन मे अस्थिरता एव आकुल-व्याकुलता न हो।
(३) किसी तरह की उदरस्थ धूर्तता- ठगाई-पाखण्डपना न हो।

(४) एव पारिवारिक विघ्न-बाधा भी न हो, जिसके कारण बार-बार आपको जाने-आने की क्रिया करनी पडे, तो कृपया आप आने का कष्ट न करें। वही साधु-समुदाय बहुत हैं। वास्तविक सत्यता एव अन्तरात्मा की प्रौढ मजबूती के लिए सघ के द्वार सदैव खुले हैं। आप अवश्य कलकत्ते पधारें। अध्ययन करके अपने जीवन को खूब चमकावें। मुनि मण्डल ने सतीवृन्द को सुख-सन्देश एव आपको धर्म सदेश फरमाया है।

भवदीय

कार्तिक शुक्ला ७, — मार्फत—श्री श्वे० स्था० जैन सघ

२७, पोलाक स्ट्रीट कलकत्ता — प० किशनलाल भण्डारी

उपर्युक्त उद्‌गारो को पढकर मेरा मन मयूर खुशी के मारे नाच उठा मुझे आशातीत सतोष हुआ। जैसा कि कहा है—"दुर्लभा गुररवोलोके, शिष्यचित्तापहारका" अर्थात् ऐसे निर्लोभी गुरु ही वास्तव मे स्व-पर का कल्याण करने मे समर्थ होते है। उन्ही का साहचर्य पाकर शिष्य का शिष्यत्व दिन दुगुना फलता-फूलता है। वस मैंने एक महान मनोरथ की सिद्धि के लिये कलकत्ते की ओर प्रयाण कर दिया। ●

४ सवल प्रेरक

सम्वत् २०१६ का वर्षावास विलेपारले (वम्वई) मे था। चातुर्मास प्रारम्भ होते ही मैंने गुरुदेव श्री की प्रेरणा से ही हिन्दी, सस्कृत, प्राकृत परीक्षोपयोगी अध्ययन चालू किया था। "काव्य सेवा विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्" तदनुसार श्रावण एव भादवामास रत्न-त्रय की सवृद्धि के रूप मे वीता। स्थानीय सघ मे आशातीत धर्म प्रभावना हुई और हो रही थी।

आसोज का महीना चल रहा था। पठन-पाठन सुचारु रूप से गतिशील था। परीक्षोचित तीनो केन्द्र अर्थात्—हिन्दी रत्न, सस्कृत-विशारद, एव सिद्धान्त प्रभाकर के केन्द्र अनुकूलतानुसार पृथक-पृथक कॉलिजो मे चुनकर आवेदन पत्र भी भर दिये गये थे।

सहसा मेरे पारिवारिक जनो की तरफ से उन्ही दिनो हृदय-विदारक विघ्न आ खडा हुआ। विघ्न भी वज्रवत कठोर एव लोमहर्षक था। साधारण साधु तो क्या, वडे-वडे गुरु-महत भी गड़वडा उठते हैं। वात ऐसी वनी कि जव मैंने (रमेश मुनि) दीक्षा व्रत स्वीकार किये थे, तव निश्चय नयका आधार लेकर गुरुदेव एव झरिया श्री सघ आदि सभी को मैंने एक ही उत्तर दिया था कि—"ससारी पक्ष मे मेरे कोई नही है" तभी सघ एव गुरुदेव ने मुझे दीक्षा व्रत प्रदान कर कृत-कृत्य वनाया था।

वस्तुत कुछ वर्षो के वाद छिपी हुई मेरी वाते धीरे-धीरे खुल पडी। पारिवारिक जनो को मेरा विश्वसनीय पता लगते ही (विलेपारले वम्वई) वहाँ आ खडे हुए। पुन ससार मे मुझे ले जाने के लिये वे लोग तन तोडकर तैयारी मे थे। अतएव वातावरण काफी दूपित हो चुका था। अशात वातावरण के कारण अध्ययन क्रम वही का वहीं रुक सा गया। परीक्षोपयोगी उमगोल्लास हवा हो चुका था।

ऐसी परिस्थिति के अन्तर्गत मैंने गुरुदेव से कहा—अव मुझे कोई भी परीक्षा नही देना है चूँकि दिन प्रतिदिन वातावरण विषाक्त वनता जा रहा है। नित्य नई नई वातें खडी हो रही हैं। इस कारण अध्ययन मे विल्कुल चित्त नही लग रहा है। पता नही भावी गर्भ मे क्या छिपा है?

मेरे निराशा भरे उद्‌गारो को सुनकर गुरुदेव कुछ उदासीनाकृति मे वोले—वत्स! परीक्षा काल सन्निकट आ रहा है, अध्ययन भी अच्छा हुआ है। सात-सात दिनो के अन्तर मे तीनो परीक्षाएँ पूर्ण हो जायेगी। घवराना नही चाहिए। पारिवारिक समस्या को सुलझाने मे व उन्हे समझाने मे मैं और सकल सघ यथाशक्ति प्रयत्नशील हैं। क्या तुम्हे पता नही? "होती परीक्षा ताप मे ही स्वर्ण के सम शूर की" अर्थात् कसौटी साधक जीवन की ही हुआ करती है। क्या दिवाकर जी महाराज सा० एव पूज्य प्रवर श्री खूवचन्द जी महाराज पर मुसीवते नही आई? यदि तुम अपने साधना मार्ग मे मजवूत हो तो कोई भी शक्ति तुम्हे डिगा नही सकती। इसलिए तुम विल्कुल हताश न वनो। पुस्तकें खोल कर देखो। सिर पर मडराया हुआ संकट शात शीतल समीर के झोको से स्वत विलीन हो जायगा।

गुरुदेव के शुभाशीर्वाद से वैसा ही हुआ। तीनो परीक्षा विघ्न रहित पूर्ण हुई। परिणाम भी अच्छे उपलब्ध हुए। विघ्न-विघ्न के ठिकाने पहुँचा। गुरुदेव की सवल प्रेरणा ने मेरे मन मस्तिष्क मे ऐसी चेतना फूकी जो अद्यावधि वही चेतना मुझे प्रतिपल प्रेरित कर रही है। ●

५ क्या तुम्हे डर नहीं ?

गुरुदेव आदि सतवृ द उत्तर प्रदेश को पार कर विहार प्रात के वीचो-वीच होते हुए पधार रहे थे। विहारी जनता यद्यपि भद्र एव सरलमना अवश्य है किन्तु धर्म एव सस्कृति के प्रति अज्ञ भी काफी है। ढोग पाखण्ड एव अव-विश्वास मानव के मन मन्दिर मे गहरी जड जमा वैठा है। यही कारण है कि अनार्य सस्कृति की तरह विहार प्रात मे भी दया धर्म की हीनता एव मद्य मास का प्रचार अधिक मात्रा मे दृष्टिगोचर होता है।

जैसा कि मुनिवृ द चलते हुए 'वारहचट्टी' नामक गाव की सडक पर से गुजर रहे थे कि—वही अर्थात् उसी सडक के किनारे पर ही एक वधिक वकरे की घात करने की तैयारी मे था। मुनि मण्डल अव विल्कुल उसके निकट आ पहुँचे थे। इस तरह दयनीय दृश्य को देखकर गुरु प्रवर आदि का हृदय द्रवित हो उठा। एकदम जोशीली ललकार मे वोले—जरा ठहरो ! क्यो यह अधर्म कृत्य कर रहा है? क्या किसी अनुशासक का तुम्हें डर नही है ? मानवी परिधान मे दानवीय कुकृत्य, और वह भी राजमार्ग पर। जरा तुम्हें शर्म नही ! मूक प्राणियो की इस तरह अपने स्वार्थों के लिए हत्या कर क्यो मानवता को कलकित कर रहे हो।

ओज पूर्ण आवाज को सुनकर उस वधिक के हाथ थर-थर काप उठे। कपोत की तरह गिडगिडाने व फडफडाने लगा। छुरी हाथो से छूट पडी। वकरा भी हाथो से मुक्ति पा मुनियो के चरणो मे आ खडा हुआ। हो हल्ले के कारण अव खासी भीड जमा हो चुकी थी। जन कोलाहल को सुनकर वधिक का स्वामी मकान मे से वाहर आया। देखता है—पाँच छ~श्वेत परिधान मे महात्मा एव वीसो अन्य न नारी चारो ओर खडे हैं।

महात्मा जी ! हमे क्षमा करें। 'ऐसा कार्य सडक पर नही करें' आज दिन तक ऐसी नेक सलाह देने वाले हमे आप जैसे कोई नही मिले।

अरे ! तुम मानव वने हो और पेट-कब्र के लिए हमेशा मूक प्राणियो की हत्या ! क्या दूसरा धधा रुजगार नही है ? तुम्हारे जैसे सपूतो से ही भारत माता पीडित है एव प्रकृति भी यदा-कदा प्रलय मचा रही है।

वह कापता हुआ वोला—आप भगवान तुल्य हैं। इतना कोप न करें। मैंने वकरो की वहुत हत्या की और करवाई है। अव मैं कसम खा कर कहता हूँ कि—यह धधा छोड दूँगा। इसलिए आप मुझे शाप देकर नही जावें, वरन हम खाक हो जायेंगे। यह वकरा आप की शरण मे आ चुका है। इस कारण इसे अमर वनाकर गाव मे छोड देता हूँ। अथवा आप भले साथ ले जावें। मुझे कोई आपत्ति नही है।

इस प्रकार उस वकरे को अभयप्रदान कर मुनिवृ द ने कदम आगे वढ़ाये।

६ हम न चोर न लुटेरे हैं

डामर की सुदूर लम्वी सडक पर गुरुदेव आदि मुनि सघ पादयात्रा मे निमग्न थे। विहार प्रात मे शाकाहारी वस्तियाँ कही-कही पर मिलती हैं। और कही पर तो विल्कुल शाकाहारी का नामोनिशान भी नही। लगभग दस मील जितना मार्ग तय करने के पश्चात् साधकगण एक नन्हे से गाँव मे

जा पहुँचे थे। उस गाँव के निकट एक थाना था। थाना इसलिए था कि समीपस्थ वन विभाग मे से कोई लकडियो की तस्करी नही कर बैठे। इस कारण इन्सपेक्टर और चार पुलिस मैन रहते थे।

तपस्वी श्री बसन्तीलालजी म० सा० के उपवास का पारणा था। अतएव मुनि श्री शाकाहारी परिवार की पूछ-ताछ मे निमग्न थे। इतने मे तो थानेदार को मालूम हुआ कि श्वेत पोशाक मे पाच छ चोर लुटेरे गाँव की एक पाठशाला मे चुपके से ठहरे हुए हैं। खबर सुनते ही तत्क्षण उसने पुलिस को भेजा कि जाओ! उन श्वेत पोषाक वालो को थाने मे ले आओ।

पुलिस—आपको थानेदार साहब बुला रहे हैं।

गुरु—किसलिए?

पुलिस—यह तो मुझे पता नहीं।

गुरु—तपस्वी जी! पात्र लेकर जाओ। सभव हैं थानेदार शाकाहारी अथवा जैन होंगे। जो रूखा-सूखा असण मिल जाय, ले आओ।"

आज्ञानुसार तपस्वी जी वहाँ पहुँचे। न कोई आदर सत्कार और न मधुर वाणी का उपहार था। अपितु भडक कर बोला—तुम कौन हो? किसलिए मुह पर कपडा बाँध रखे हो? बैठो यहाँ, अपनी सारी रिपोर्ट लिखाओ वरन् जेल मे ठूस दिये जाओगे। दुनियाँ की आँखो मे धूल झोक कर डाका डालते हो।

तपस्वी—शात मुस्कान मे—क्या आपका भाषण पूरा हुआ? प्रथम तो आपको बोलने मे जरा भी विवेक नही है। मैं जैन श्रमण भगवान् महावीर का शिष्य हूँ। शायद आप नशे मे अन्ट-सट बकवाद कर गये। ऐसा मुझे महसूस हुआ। हम न चोर और न डकैत हैं, हाँ, यदि मुझे मालूम होती कि आप इन्क्वारी के लिए बुला रहे है, तो नि सन्देह मेरे गुरु जी यहाँ मुझे कदापि नही भेजते। आप को ही वहाँ जाना पडता।

वस्तुस्थिति का परिज्ञान होने पर थानेदार साहब का टम्प्रेचर कम हुआ। शीघ्र कुर्सी से उठकर करबद्ध होकर बोला—आप आज कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जा रहे है? यहाँ तो कोई भी जैन नहीं है। अक्सर सभी मासाहरी रहते हैं।

तपस्वी—हमारा मुनि सघ पार्श्वनाथ हिल्स होता हुआ कलकत्ते की तरफ धर्म प्रचार के लिए जा रहा है। हम तो आपको शाकाहारी समझकर आहार के लिए आये हैं। लेकिन यहाँ तो 'ऊँची दुकान फीका पकवान' की तरह विपरीत बातें मिली। अस्तु,

थानेदार—मन ही मन खेदित होता हुआ, उफ! जैन साधु आशा लेकर आये और खाली जावे। मेरी खुराक गदी है। आप मेरे यहाँ से फल ले पधारें।

हम श्रमण, सबीज वाले फल लिया नही करते हैं। आप तो मेरे साथ चलकर मेरे गुरुदेव के दर्शन कर वही कुछ भेंट अर्पण करें।

गुरु प्रवर की सेवा मे उपस्थित होकर अपराध की क्षमा मागता हुआ बोला—गुरु जी! मैं क्या भेंट करूँ आपको?

बस, आज से आप मासाहार का त्याग कर शाकाहार की प्रतिज्ञा स्वीकार करें। हमारे लिये यह अमूल्य भेंट होगी।

तदनुसार थानेदार साहब प्रतिज्ञा स्वीकार कर घर की ओर लौटते हैं।

७ पैसा पास है क्या ?

पूर्व भारत मे मुनियो का परिभ्रमण हो रहा था। लगभग ११ मील का विहार करने के पश्चात् एक छोटे ग्राम मे गुरु प्रवर आदि ने विश्राम लिया था। वह ग्राम आशा के विपरीत था। पेट खुराक माग रहा था। बात भी ठीक थी—विना खाना-दाना दिये चले भी तो कैसे ? मानव काम तो कराले और दाम न चुकावे, तो निसदेह साहूकार और कर्मचारी मे ठने विना नही रहेगी। इसी प्रकार पेट और पैरो को खुराक नही मिलने पर सुस्ती आना भी स्वाभाविक है। कवीर की भापा मे—

कवीर काया कूतरी करे भजन मे भग।
ठण्डा वासी डालके करिये भजन निशक ।।

जैन श्रमण का तपोमय जीवन कचन-कामिनी से सर्वथा निर्लेप रहा है। इसलिए विश्व ने जैन साधु के त्याग की भूरि-भूरि प्रशसा की है। मार्गवर्ती एक यमुना पार निवासी अग्रवाल भाई की दुकान थी। वहाँ गुरु प्रवर ने लघु मुनि को भेजा कि—सत्तु अथवा भुने हुए चने हो तो कुछ ले आओ।

मुनि पात्र लेकर वहाँ पहुचे। भक्त ! क्या तुम्हारे यहाँ भोजन वन गया ?

अभी नही, मैं एक वजे खाता हूँ—उत्तर मिला।

मुनि खाली लौट आये। लगभग एक वजे के पश्चात् फिर वहाँ पहुँचे। सत की वृत्ति श्वान जैसी मानी है। उसने उत्तर दिया मैंने खा लिया है, अव कुछ नही वचा। शाम को वनाऊँगा। वह भी रात मे, यदि तुम रात को खाते हो तो भोजन यहाँ से ले जाना।

अच्छा भक्त ! हम रात मे तो नही खाते। इस थैले मे चून जैसा यह क्या है ?

यह सत्तु है। जो गेहूँ और चने भूनकर वनाया जाता है इधर की जनता नमक मिर्च और पानी के साथ इसको खा कर दिन विताती है।

हाँ, यदि तुम्हारी भावना हो तो दो चार मुट्ठी हमारे पात्र मे वहरा दो।

दुकानदार—पैसे लाये हो क्या ?

मुनि—पैसे तो हम घर छोड आये हैं। अब हम नही रखते हैं।

इस प्रकार माल मुफ्त मे मैं लुटाता रहूँ तो मेरी पूँजी ही सफाचट हो जाय। देश छोडकर यहाँ कमाने के लिए आया हूँ न कि खोने के लिये।

मुनि प्रवर समता भरी मुद्रा में लौट आये। अनुभव के कोष मे यह अध्याय भी जुड गया।

८ मै क्या भेंट करूँ ?

मुनि मण्डल टाटानगर से विहार कर मार्गवर्ती 'पिंडरा जाडा' ग्राम के डाक-वगले मे कुछ घटो के लिये विश्राम कर रहे थे। उधर राची से एक कार सरसर करती आई और वही रुक गई। उस कार मे सपत्नी एक अग्रेज अधिकारी था। प्रोग्राम से मालूम हुआ कि उनका भी उसी डाकवगले मे भोजन आदि कार्य निपटने का था।

उस अग्रेज दम्पत्ति ने जैन श्रमणो को प्रथम वार ही देखा था। मुख पर वस्त्रिका देखकर

उन्होने देखा कि यह कोई अस्पताल है। ऑपरेशन के लिये डाक्टरो ने मुख पर श्वेत वस्त्र बांधा है। इस कारण आगतु महाशय असमजस मे अवश्य पडे। आश्चर्यान्वित होकर मुनियो से पूछा कि—This is a hospital अर्थात् क्या यह अस्पताल है ?

प्रत्युत्तर मे - नही, यह डाक वगला है।
"तो आप सभी ने मुँह पर वस्त्र क्यो वाध रखे है ?"

तव मुनिवृन्द द्वारा सक्षिप्त जैन मुनि परिचय नामक पुस्तक उन्हे दी गई। तत्पचात् जैन श्रमण, साधना एव मुखवस्त्रिका सम्वन्धित विस्तृत जानकारी से उन्हे अवगत कराया। सुनकर पति-पत्नी दोनो काफी प्रभावित हुए। करबद्ध होकर त्यागमय जीवन का पुन पुन अभिनन्दन करने लगे।

अग्रेज महिला—आप मे से बडे कौन हैं ?
मुनि—आप अर्थात् श्री प्रतापमल जी महाराज सा०।
अग्रेज महिला—आप मेरा हाथ देखिये। मेरे हाथ मे सन्तान का योग है कि नही ?
गुरुदेव—आशा भरी वाणी मे, हिन्दी भापा आप अच्छी तरह समझ जावेगे ?

क्यो नही ? मेरा व साहेव का सारा जीवन ही हिन्दी मे वीता है। मैं तो भारत को अपना ही वतन मानती हूँ। इसलिए यहाँ की वेश-भूपा-भापा से मुझे अत्यधिक प्यार है।

आपकी दैनिक खुराक क्या है ? गुरुदेव ने प्रश्न किया।
गुरुजी ! मैं आप से झूँठ नही वोलूँगी। मेरी खुराक डव्वल रोटी और मुर्गी के अण्डे आदि।
गुरुदेव—आप समस्त ससार को ईसामसीह का वनाया हुआ मानते है कि नही ?
"हाँ, गुरुजी।"

तो अण्डे भी तो उसी ईसा की सन्तान हुई। क्योकि सजीव है, जिसमे प्राणो का सहभाव हैं। आप वुरा न माने, ईसा भगवान् की सन्तान अर्थात् अण्डो को खा जाते हैं। इस कारण प्रकृति का प्रकोप आप पर है। सन्तान रुकावट का खास कारण मेरी समझ मे यही होना चाहिए। इसका इलाज (प्रतिरोध) है, उन्हे खाना छोड दीजिए रुकावट दूर हो जायगी।

अच्छा ! अच्छा ! मैं समझ गई, जव भगवान की सन्तान मुर्गी के अण्डो को खाती हूँ तव भगवान मुझे सन्तान कैसे देंगे ? मैंने कई स्थानो पर अपना हाथ दिखकर सैंकडो रुपये खर्च कर दिये। लेकिन आप जैसा सही-साफ स्पष्ट मुझे किसी ने भी नही कहा। वस, अव मैं किसी को अपना हाथ नही वताऊँगी।

गुरुदेव के चरणो मे मनीवैग रखकर वोली—इसमे पाच सौ रुपये हैं। इन्हे आप स्वीकार करें, आगे के लिए आप मुझे अपना पूरा पता लिखा दें। मैं साहव से पाच सौ रुपये और भिजवा दूँगी।
"नही, वहिन ! जैन साधु रुपयो की भेंट नही लिया करते हैं।"
तो आपका दैनिक खर्च कैसे चलता है ? क्या कोई जायदाद जमीन की इन्कम है ?

नही वहिन जी ! जैन भिक्षु कचन-कामिनी के सर्वथा त्यागी होते हैं। अव हमारे लिये सारी सृष्टि हमारा परिवार है। नियमानुसार हमारी सर्व आवश्यकता जैन समाज पूर्ण करती है। शाकाहारी परिवारो मे हम भिक्षा वृत्ति करते हैं।

फिर मैं क्या भेंट करूँ ? - अग्रेज महिला वोली।

आप अण्डे खाना सदा-सदा के लिये छोड दीजिए। यही हमारे लिये वहुत वडी भेंट होगी।

अच्छा गुरुजी ! मैं अकेली ही नही, मेरे साहव भी, हम दोनो जीवन भर के लिये अव हम अण्डे नहीं खायेंगे। आप हमे आशीर्वाद प्रदान करे।

अपना पूरा पता देकर, हाथो को जोडकर मानवता के पुजारी दोनो आगे वढ जाते है।

६ सरलता भरा उत्तर

गुरु प्रवर कलकत्ते का वर्षावास विता रहे थे। वहाँ चारो सम्प्रदाय के हजारो जैन परिवार निवास करते हैं। अक्सर मुनि-महासतीजी के चातुर्मास भी हुआ करते हैं। व्याख्यान-वाणी के विषय मे वहाँ के मुमुक्षु काफी रसिक रहे हैं। गुरुदेव एव प्रवर्तक प्रवर श्री हीरालाल जी महाराज सा० के हृदय-स्पर्शी तात्त्विक व्याख्यानो को सुनने के लिये स्थानकवासी, मूर्तिपूजक एव तेरह पथी वन्धु काफी तादाद मे उपस्थित हुआ करते थे।

एक दिन गुरुदेव रतलाम श्री सघ के पत्र का उत्तर लिखवा रहे थे। उस वक्त एक तेरा पथी वन्धु दर्शनार्थ उपस्थित हुआ। कुछ-कुछ शिष्टाचार कर समीप ही वैठ गया। लेखन कार्य पूरा हुआ कि—आगतुक वन्धु वोला—

मत्थएण वन्दामि ! साधु-साध्वियो को पत्र लिखना कल्पता है क्या ? और किस शास्त्र के आधार पर आप यह क्रिया करवाते है ?"

गुरुदेव—पत्र लिखाने का विधेयात्मक आदेश किसी भी जैन आगम मे नही है। अपितु कल्प-सूत्र आदि मे निषेधात्मक वर्णन अवश्य मिलता है।

फिर आप क्यो लिखाते है ? उस भाई ने पुन प्रश्न किया।

यह युगीन परिपाटी है। अधिकारी मुनि जैसे—आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, गुरु-गच्छाधिपति एव साधु-साध्वी-सघो को सूचना देना कभी-कभी अत्यावश्यक हो जाता है। आज के युग मे यह जरूरी है अन्यथा सैंकडो कोसो की दूरी पर वैठे हुए अन्य मुनि एव सघो के मन-मस्तिष्क मे हमारे प्रति कई तरह की गलत भ्रान्तियाँ होना स्वाभाविक है। वस्तुत उन्हे ध्यान रहे कि अमुक सघाडा अमुक क्षेत्र मे अमुक जन-कल्याण का कार्य कर रहे हैं। समाचार पत्रो मे भी इसी भावना से प्रेरित होकर समाचार लिखाये जाते है। केवल समाज व्यवस्था की दृष्टि से पत्र लिखाने का प्रयोजन रहा हुआ है।

सरल-स्पष्ट समाधान को पाकर पृच्छक काफी प्रभावित होकर वोला—मत्थएण वन्दामि ! इस विषय मे हमारे सन्तो को जव हम पूछते हैं तो गोल-माल माया भरा उत्तर दे देते हैं। आप ने कम से कम साफ तो फरमा दिया कि—आगम आदेश नही देते हैं। केवल इस प्रक्रिया मे व्यवस्था की दृष्टि निहित है। अव वह नित्य प्रति सन्त दर्शनहेतु स्थानक मे आने-जाने लगा।

१० जैसे को तैसा उत्तर

उन दिनो गुरुप्रवर एव प्रवर्तक श्री हीरालाल जी महाराज कलकत्ते मे जैन शासन की प्रभावना वढा रहे थे। सैंकडो हजारो नर-नारियो की उपस्थिति ! जहाँ-तहाँ व्याख्यानो की धूम ! वास्तव मे शासन प्रभावना मे चार चाँद लगा रहे थे। कई मन्दिरमार्गी एव तेरापथी भाई भी प्रश्नोत्तर-समाधान की प्रभावना को लेकर यदा-कदा उपस्थित हुआ करते थे।

एक तेरापथी भाई ने प्रश्न किया—"आप किस टोले के सत है ?"

हम श्रमण भगवान महावीर के परम्परागत आचार्य प्रवर श्री आत्मारामजी महाराज, उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज एव गुरुदेव श्री कस्तूरचद जी महाराज के अनुगामी सत है।

मेरा अभिप्राय भूतकालीन सम्प्रदाय से है अर्थात् आप किस सम्प्रदाय के हैं ? उस भाई ने पुन प्रश्न दुहराया।

गुरु प्रवर पृच्छक की खण्डनात्मक भावना को भाप गये थे। जान-बूझ कर बोले—हम हैं महामहिम तीरण-तारण जहाज, विश्व वदनीय, आचार्य प्रवर श्री सहस्रमल जी महाराज की सम्प्रदाय के।

मन को मसोडता हुआ बोला—हमारी समाज मे से जो निकाले हुए थे, क्या ये वही हैं ?

हाँ, ये वही हैं। किन्तु निकाले हुए नही। स्वय सत्य तथ्य को समझकर निकले हैं। न कि निकाले गये।

उपहास के रूप—वाह ! वाह ! हमारे मे से अलग किये हुए साधक को आप के सघ ने आचार्य पद पर आसीन कर दिया। कितनी वडी वात ! क्या वे आचार्य पद के योग्य वन गये ?

क्यो नही ? वे सर्वथा सुयोग्य, सवल अनुशासक के साथ-साथ विद्वान एव सफल व्याख्याकार है। किन्तु मजे की वात तो यह है कि—स्थानकवासी समाज मे से वहिष्कृत साधक आप की समाज के सर्वेसर्वा एव जन्मदाता वने हैं। भक्ति के वश जिनको आप कभी-कभी पच्चीसवें तीर्थंकर भी कह देते हैं। कहिए यह कार्य वडा हुआ कि—हमारा ?"

उचित उत्तर सुनकर वह वन्धु चलता वना और मन ही मन समझ भी गया कि—यह भिक्षुगणी पर करारा व्यग्य है।

११ भूले पथिक को राह

गुरुदेव के चारु चरण उत्तर प्रदेश की ओर मुड गये थे। सडक के किनारे से कुछ ही दूर पर एक घास की कुटिया मिली। जिसमे प्रज्ञाचक्षु एक भगवा वेशधारी महात्मा व उन्ही के एक युवक शिष्य का वास था। उसी मार्ग से हम जा रहे थे। उस समय दोनो महात्माओं मे वाक्युद्ध चल रहा था। हमारे पैर भी वही रुक गये। शिष्य गुरु से कह रहा था—अव मैं आपके पास रहना नही चाहता हूँ। मुझे दुनियाँ देखनी है। आप मुझे ससार मे जाने दीजिए।

गुरु कह रहे थे—वत्स ! मैं अन्धा हूँ। मेरी सेवा कौन करेगा ? सन्यासपना मिट्टी मे मिल जायेगा। मैंने तुझे छुटपन से पाला पोषा-पढाया और हुशियार किया। अव तू मुझे निराधार कर भागना चाहता है ? मैं हर्गिज तुझे नही जाने दूँगा। उसके उपरात भी नही मानोगे तो मेरे गले मे फासा डालकर फिर भले

गुरु प्रवर के कर्ण-कुहरो मे उस शब्दावली की स्पष्टत झन-झनाहट आ पहुँची थी। बस, सडक के किनारे अपने उपकरणो को रखकर विना बुलाये गुरुदेव वहाँ पहुँचकर बोले—महात्मा जी ! आप आनन्द मे हैं ?

"कौन आप ?" प्रज्ञाचक्षु जी बोले।

मैं जैन भिक्षु हूँ। मेरे साथ दो मेरे अन्तेवासी है। हम कानपुर की ओर जा रहे हैं। यद्यपि आप दोनो के बीच मुझे नही आना था। फिर भी मैं आवाज सुनकर आ गया हूँ। मेरे आने से आपको दिक्कत तो नही ?"

नही, नही, हम आपका स्वागत करते हैं जैन महात्मा है कहाँ ? विराजिए !

गुरुदेव-पीयूष भरी वाणी मेबोले —आप दोनो मे कुछ-कुछ विवाद की स्थिति हो रही है। ऐसा मैंने सुना है। क्या सत्य है ?

हाँ, महात्मा जी ! प्रज्ञा चक्षु जी वोले—मेरा चेला यह मुझे छोडकर ससार मे जाना चाहता है। आप ही फरमावें, मेरा क्या होगा। आप मेरे शिष्य को समझावें।

गुरु महाराज—"तुम इनके शिष्य हो ?"

"हाँ, गुरु जी।"

"क्या तुम्हारी भावना दुनियादारी मे जाने की है ?"

लज्जावशात् उसकी ओर से कोई उत्तर नही था।

गुरु—"मैं कुछ भी कहूँ तुम बुरा नही मानोगे ?"

"नही, गुरुजी ! आप भगवान हैं।'

साधक ! ससार मे पुन प्रवेश करने का मतलव हुआ कि—तुम वमन की हुई वस्तु को पशु-पक्षी की तरह पुन चाटना चाहते हो ? क्या यह शर्म की बात नही है ? क्या साधु जीवन के लिए कलक नहो ? जरा ठन्डे दिमाग से सोचो, उतावले न वनो। मोहान्ध होकर आत्मा को नरक के गर्त मे न धकेलो। गुरु-सेवा भाग्यवान को मिलती है। शीघ्र हा अथवा ना का उत्तर देओ। मुझे अभी आगे वढना है।"

ओजपूर्ण वाणी को सुनकर वह भूला पथिक काफी शर्मिन्दा हुआ। नीचे माथा नमाकर वोला—आपने मेरा अज्ञान हटा दिया। मैं कर्त्तव्य से भ्रष्ट हो रहा था। आप ने मुझे वचाया। अब मैं गुरु चरण सेवा छोडकर कही नही जाऊँगा।

गुरु प्रवर की महती कृपा से दोनो महात्माओ के अन्तर्हृदय मे स्नेह की सुरसरी फूट पडी। समस्या सुलझाने वाले गुरुदेव के पावन चरणो मे दोनो महात्मा सश्रद्धा झुक चुके थे। प्रज्ञाचक्षु महात्मा जी को भी शिक्षा भरी दो वातें कह कर गुरुदेव ने आगे की राह ली।

●

१२ विरोध भी विनोद

गुरुदेव आदि मुनिमण्डल लखनऊ पधारे हुए थे। लखनऊ क्षेत्र मे श्री श्वेताम्वर मन्दिरमार्गी सम्प्रदाय वन्धुओ के अधिक परिवार निवास करते हैं। स्थानकवासी मुनियो का शुभागमन सुनकर ये जन काफी हर्पित एव सश्रद्ध। स्वागत समारोह मे सम्मिलित भी हुए। यह दृश्य वहाँ के यतिजी को सहन

नही हुआ । वह ईर्ष्या वशात् जलकर खाक हो गये । कही स्थानकवासी साधुओ का पैर जम गया तो मेरी जमी-जमाई सारी दुकानदारी उठ जायगी इस मलीन भावावेश मे वह गुप्त ढग से उनके घरो मे मुनियो के प्रति विप-वमन-मिथ्या प्रचार करने लगे ।

"ये ढूंढिये वहुत खराव होते हैं । अपने भगवान की निन्दा करते हैं । मुँह वाधकर जीवो की हिंसा करते हैं । इसलिए इनके व्याख्यानो मे व सेवा मे कोई नही जावे । वरन् अपना धर्म भ्रष्ट हो जायगा ।"

धर्मशाला मे मुनिवृन्द के व्याख्यानो का वढिया रग जम चुका था । श्रोतागण रुचिपूर्वक वाणी सुनते और शव्दो का भी पूरा-पूरा ध्यान रखते थे कि कही हमारी आम्नायाओ का खण्डन तो नहीं कर रहे हैं । इस प्रकार व्याख्यान सप्ताह शान्त वातावरण व उत्तरोत्तर वृद्धि मे व्यतीत हो जाने के वाद कुछ कार्यकर्त्ता सदस्यगण गुरुदेव श्री की सेवा मे उपस्थित होकर वोले—

महाराज ! हमारे दिल-दिमाग मे आपके प्रति कुछ मिथ्या भ्रमना है । उन्हे दूर कीजिए ।

क्या आप भगवान को पत्थर कहकर अवहेलना करते हैं ?

गुरुदेव—कौन कहता है ? हम भगवान की प्रतिमा को आप की तरह ही मूर्ति मानते हैं । केवल द्रव्य पूजा, व्यर्थ का आडम्वर, आरम्भ जिससे कर्मों का वन्धन और जीवो की विराधना होती हो, ऐसी क्रियाओ का हम क्या समूचा जैन दर्शन ही निषेध करता है । कहिये क्या आप आडम्वर को पसन्द करते हैं ?

नही महाराज ! जिन क्रियाओ से कर्म खेती निपजती हो, हम भी उन क्रियाओ को पसन्द नही करते हैं । आप के व्याख्यानो से हमारा समाज काफी प्रभावित हुआ है । हमे राग-द्वेष की वाते विल्कुल नही मिली । हमारी इच्छा है कि आप चातुर्मास पर्यन्त यही विराजें । हमे काफी मार्ग दर्शन मिलेगा । हमारे यति जी ने तो कुछ भ्रमना अवश्य भरी थी किन्तु आप की मधुर वाणी- प्रभाव से भ्रम-जाल स्वत ही टूट गया है ।

गुरु महाराज—सुनिए, हम श्रमण कहलाते हैं । कोई हमारा अपमान करे कि सम्मान । विरोध कि विनोद । हमे तनिक भी दुख नही होता । क्योकि—हम विरोध को भी विनोद समझते हैं और सत्य का सदैव विरोध होता आया है ।

आगन्तुक महाशयगण अपूर्व क्षमता, सरलता पाकर गुरुदेव के चरणो मे झुक पडे । अन्ततोगत्त्वा उन यतिजी को भी लज्जित होना पडा । जनाग्रह पर एक मास पर्यन्त मुनिवृन्द को वहाँ रुकना पडा । आशातीत शासन प्रभावना सम्पन्न हुई ।

१३ भ्रान्ति निवारण

यह घटना सन् २०१४ की है । आगरा मे विराजित पूज्य श्री पृथ्वी चन्द्र जी महाराज सा० आदि मुनि मण्डल के दर्शन कर मयशिष्यमडली के गुरुप्रवर धर्म प्रचार करते हुए कोटा राजस्थान की तरफ पधार रहे थे । वीच-वीच मे ईसाममीह के धर्मानुयायी एव इसाई प्रचारको की वहुलता परिलक्षित हो रही थी । प्राय इसाई धर्म प्रचारक चालाक हुआ करते हैं । वे उजाड एव पिछडी हुई पर्वतीय वस्तियो

मे मानव-समाज को वरगलाकर धर्म-परिवर्तन कराया करते है। भारत मे करोडो हिन्दुओ को ईसाई इस क्रमानुसार से बनाये गये हैं।

मार्ग के सन्निकट एक ईसाई स्कूल के वरामदे मे कुछ क्षणो के लिए मुनि मण्डल ने विश्राम किया था। भीतरी-भाग मे ईसाई अध्यापक वना प्रचारक भारतीय वालको को पढा रहे थे। पढाई के तौर-तरीके अजव व कापट्य पूण थे। भगवान राम और कृष्ण के प्रति उन भोले-भाले वालको के दिल-दिमाग मे घृणा का हलाहल ठूसते हुए वे अध्यापक महोदय हिन्दु-धर्म की निकृष्टता और ईसाई धर्म की उत्कृष्टता की सिद्धि निम्न प्रकार से कर रहे थे—

काले तख्ते 'Black Board' पर राम-कृष्ण एव ईसामसीह के चित्र अकित थे। भरसक प्रयत्न पूर्वक उन वालको को समझा रहे थे कि—देखो वालको ! हिन्दू अवतार श्रीकृष्ण मक्खन की चोरी और राम धनुष्य-वाण लेकर शिकार पर तुले हुए हैं। दूसरी ओर भगवान ईसामसीह का चित्र है। जो शात-प्रेम और क्षमा रूपी अमृत से पूरित दिखाई दे रहा है।

क्या चोरी एव शिकार करने वाले भगवान वन सकते हैं?"

"नही, ! नही" शिशु वाणी की गडगडाहट गू जी।

"तो आप के भगवान कौन ?" अध्यापक गण वोले।

"हमारे भगवान ईसामसीह।"शिशु वोले।

उपर्युक्त नाटकीय पाखण्ड की शव्दावली गुरुदेव के कानो मे अच्छी तरह पहुँच चुकी थी। आर्य सस्कृति पर होने वाले मिथ्या प्रहार को गुरु महाराज कव सहन करने वाले थे। अन्दर पहुँच कर वोले—अध्यापक महोदय ! मैं जैन भिक्षु हूँ। आप लोग हिन्दी भाषा अच्छे ढग से वोल रहे हैं। अत आप किस देश के हैं?' गुरुदेव ने पूछा।

'हम विहार प्रान्त के निवासी हैं। अव हम लोग महाराज ईसानुयायी वनकर पढाने के वहाने धर्म प्रचार भी करते हैं।"

ओजस्वी वाणी मे गुरुदेव वोले—वुरा न माने ! आप के प्रचार का तरीका विल्कुल गलत है। अभी-अभी इन दूध मुँहे वच्चो के दिमाग मे भगवान राम और भगवान कृष्ण के प्रति जो घृणा भरी है यह सर्वथा अनुचित है। इस प्रकार हिन्दू धर्म को गलत सिद्ध कर ईसाई धर्म का प्रचार करना, क्या जन-जीवन को सरासर धोखा नहीं है ? क्या यह तरीका ठीक है ? आप ही सोचिए ! सभी अध्यापक अवाक् थे। मेरे वच्चो ! राम-कृष्ण और महावीर अपने देश मे महान अति महान हुए हैं। आप सभी मेरे मुँह से उनकी गौरव गरिमा सुनें—

सभी लडके गोलाकार मे गुरुदेव को घेरे चारो ओर वैठ जाते हैं। मन ही मन अध्यापक तिल-मिला रहे थे।

मेरे वालको ! ध्यान दे सुनो ! जो वालक अपने मात-पिता को भूल जाता है। क्या वह अच्छा वालक माना जाता है ?

"नही ! नही !"—वाल वाणी गूँज उठी।

भगवान राम और श्री कृष्ण के विषय मे जो आप के अध्यापक ने कहा है वह ठीक नही है। राम और कृष्ण न चोर और न वे शिकारी थे। वे मानव धर्म के महान् अवतार, आर्य धर्म के सस्थापक, एव कस रावण जैसी आसुरी वृत्तियो का अन्त कर एव दैविक भावना की स्थापना कर मानव समाज का

ही नहीं, अपितु प्राणी मात्र का वहुत वडा हित किया है। फलस्वरूप राम और कृष्ण को भूल जाने का मतलव है—आप अपने मात पिता को भूल रहे हैं।

वोलो वच्चो ! अपने भगवान राम और कृष्ण-महावीर को भूल जाओगे ?

नही ! नही ! जन्म से ही हमे याद है—हमारे भगवान राम और कृष्ण हैं।

अच्छा वोलो—भगवान राम की—"जय जय।"

भगवान कृष्ण की—"जय जय"

भगवान महावीर की—"जय जय"

इस प्रकार उन्हे वास्तविक वस्तु स्थिति का ज्ञान करा कर गुरु देव ने आगे की राह ली।

१४. समय-सूचकता

स० २००६ का वर्षावास गुरुदेव पालनपुर मे वीता रहे थे। उन दिनो हरिजन समाज के विकास की चर्चा चारो ओर गूँज रही थी। सरकार एव सुधारवादी जन की ओर से उस समाज को काफी सुविधा प्रदान की जा रही थी।

एक दिन विकासशील जैन युवक मण्डल गुरुदेव के पावन चरणो मे आकर वोला—महाराज ! हम हरिजन समाजोत्थान के इच्छुक हैं। वे भी मानव और हम भी मानव हैं। जैन धम पक्का मानवता का पुजारी रहा है। भगवान महावीर ने जातिवाद को नही, कर्मवाद को महत्त्व दिया है। फिर क्या कारण कि—वे आपके अमृत मय उपदेश से वचित रहे ? इस कारण हमारा युवक मण्डल उन हरिजन नर-नारियो को आपके उपदेश एव दर्शन से लाभान्वित करना चाहता है। यद्यपि वुजुर्ग जन सदैव विरोधी रहे हैं तथापि आप को मजवूत रहना होगा और हरिजन यहाँ आवे तो आपको तिरस्कार नही करना होगा।

गुरुदेव तो प्रारभ से ही समन्वय प्रेमी एव सुधारवादी रहे हैं। "वसुधैव कुटुम्वकम्" भावना के हामी ही नही, अनुगामी भी रहे हैं।

"युवक मण्डल हरिजनो को स्थानक मे ला रहे हैं।" वुजुर्ग कार्य-कर्ताओ को जव यह सूचना मिली कि—वे शीघ्रातिशीघ्र गुरुदेव की सेवा मे आकर निवेदन किया—महाराज ! नगर मे युवक मण्डल विकास के वहाने सस्कृति-सभ्यता का सरासर विनाश कर रहे हैं। जवरन उन्हे मन्दिर एव स्थानको मे लाते हैं आप सावधान रहें। नवयुवको के चक्कर मे आवें नही। वरन् समाज मे फूट फैल जायगी और आप को भी अशाति का अनुभव करना होगा।

दुहरा वातावरण गुरुदेव के सम्मुख था। उत्तर मे महाराज भी वोले—आप वुरा नही मानो यदि वे स्थानक मे आकर उपदेश सुनते हैं तो आप को क्या आपत्ति है ? फिर भी समस्या उलझने नही देऊँगा। इतने मे तो हरिजनो का एक काफिला आता नजर आया। सभी वुजर्ग जन लाल-पीले हो चले थे।

कही विपाक्त वातावरण न वन जाय। इस कारण शीघ्र महाराज श्री स्थानक के वाहर आकर वोले—मेरे नवयुवको ! मैं आपके विचारो का आदर करता हूँ। आज का यह कार्य-क्रम अपने

को सार्वजनिक व्याख्यान के रूप मे विशाल पैमाने पर मनाना है। ताकि अनेक दर्शकगण भी सुधारवाद की प्रेरणा सीख सकें। जमाना विकास की ओर आगे बढ रहा है। अतएव अपने को स्थानक एव मदिर की चारदीवारो मे बद नही रहना है। क्राति का शख गुजाना है तो अपन सब मैदान के प्रागण मे चलें।

वैसा ही हुआ। स्थानीय विशाल चौक बाजार मे कार्यक्रम पूरा हुआ। नवयुवक मण्डल को भारी जोश यो था कि हमारी योजना आशातीत सफल रही, बुजर्ग जन का सन्तुलन स्थान पर था कि—हमारा स्थानक बाल-बाल बच गया। हरिजन समाज को बेहद खुशी थी कि—जैन समाज ने हमारा बिल्कुल तिरस्कार नही किया और गुरुदेव को प्रसन्नता इस बात की थी कि—सभी विचारधाराओ का समन्वय सफल रहा।

हरिजन समाज गुरु प्रवर के व्याख्यान वाणी से काफी प्रभावित हुआ एव यथाशक्ति नियम ग्रहण कर चलते बना।

बुजुर्ग एव नवयुवक मण्डल गुरुदेव की सामयिक सूझ-बूझ पर मत्र मुग्ध थे। बोले—महाराज! कमाल आपकी सूझ-बूझ! आज तो आपने साधुत्व का महान् कार्य कर प्रत्यक्ष बता दिया। सभी वर्गों मे श्लाघनीय प्रतिक्रिया हुई।

१५ जादू भरा उपदेश

२०२५ की घटना है। गुरुदेव ब्यावर से विहार करके भीम पधारे हुए थे। भीम मेवाड प्रात का जाना-माना क्षेत्र रहा है। जहाँ का श्रावक वर्ग जिन शासन के प्रति श्रद्धाशील एव धर्मनिष्ठ रहा है। तथापि भीम सघ मे एकात्मभाव का अभाव और फूट का बाजार गर्म था। वस्तुत जैसी चाहिए वैसी समाज मे प्रगति नही हो पा रही थी।

बडे-बडे मुनि-मनस्वी एव आस-पास के कई सज्जन वृन्द ने भी भरसक प्रयत्न चालू रखे कि इस फूट-फजीती को स्नेह-सगठन के सूत्र मे बदल दिया जाय। किन्तु मद भाग्य के कारण उन्हे तनिक भी सफलता प्राप्त नही हो सकी। अपितु कपायी ग्रन्थी सुदृढ बनी।

दुनियाँ जब हठाग्रहवादी बन जाती है तब हितकारी-पथ्यकारी बात को भी ठुकरा देती है। चूँकि मिथ्यानिदा, आलोचना बुराई एव अनर्थकारी विचारो का कचरा उनके दिमाग मे भरा रहता है। इस कारण प्रिय बातें भी अप्रिय और मित्र भी शत्रु प्रतीत होते हैं।

गुरुदेव शुभ घडी मे वहा पहुँचे थे। विघटन कार्यवाइयाँ सर्व ध्यान मे थी। सदैव महाराज श्री कार्य कुशल रहे हैं। वे जन-मन को बनाना जानते है। सुधा-पूरित वाणी मे स्व-मण्डन की निर्मल धारा नि सृत हुआ करती है। प्रभावोत्पादक व्याख्यानो से लाभ-हानि का श्रोताओ को भान हुआ। छिपी हुई ग्रन्थियाँ शिथिल हुई। पारस्परिक विचारो का विनिमय होने लगा। सेवा मे उपस्थित होकर बोले—गुरुदेव! आप की वाणी ने हमारे कानो की खिडकियाँ खोल दी हैं। अब कृपा करके आप हमे वैरागी भाई प्रकाश जी की दीक्षा यहाँ करने की अनुमति प्रदान करें। ताकि हमारा सघ धन्यशाली बने।

गुरुदेव—वैरागी भाई की दीक्षा से भी मेरी दृष्टि मे सघ का आदर्श महान् है। आप सभी महान् आदर्श को बढाना चाहते हो तो सर्वप्रथम सघ मे एकात्मभाव का सृजन करे। गई गुजरी सर्व

बातो को भूल जायें। इसके बाद यदि मुझे सतोषजनक वातावरण प्रतीत हुआ तो मैं दीक्षा प्रदान करने की अनुमति दे सकता हूँ। वरना मत के लिए सैकडो गाव है।

वैसा ही हुआ। काफी वर्षों की फूट खतम हुई। घर-घर मे स्नेह-सगठन एव समता की सुरसरी प्रवाहित हो चली। आनन्दोल्लास के क्षणो मे दीक्षोत्सव भी सम्पन्न हुआ। आज भीम नगर का आबालवृद्ध गुरुदेव के इस अनुपम कार्य को बार-बार दुहराता हुआ श्रद्धा से उनके पवित्र चरणों मे नतमस्तक है।

१६ विरोधी को प्रिय बोध

आहार आदि कार्यों मे निवृत्त होकर गुरुदेव हमे स्याद्वादमजरी, प्रमाणमीमासा आदि दर्शन शास्त्र का अध्ययन करवा रहे थे।

सहसा एक भाई सेवा मे उपस्थित हुआ। गुरु भगवत के पवित्र पाद पद्मो मे माथा झुकाया, अश्रुपूरित आखो से, गद्गद् गले से एव उभय घुटनो को जमीन पर टेककर स्वय की समीचीन आलोचना का रिकार्ड शुरू कर दिया। समीपस्थ विराजित हमारा मुनि सघ इस दृश्य को पैनी दृष्टि से देख व सुन भी रहा था।

महाराज! मैं निन्दक, दुर्गुणी एव परछिद्रान्वेषी हूँ।—आगतुक उस भाई ने कहा।

श्रावक जी! दरअसल बात क्या है? रहस्य खोलकर साफ दिल से कहो—गुरुदेव ने पूछा।

महाराज! जब आपने इन्दौर-चातुर्मास करने की स्वीकृति फरमाई थी। तब मुझे अत्यधिक बुरा लगा, मेरी अन्तरात्मा इस खबर को पाकर खाक हो गई। क्योकि हमारे पूज्य श्री नानालाल जी म० का चौमासा भी यहाँ ही निश्चित हो चुका था। अत जन-मत आपके विरोध मे रहे, इस कारण भरपेट मैंने चुपके-चुपके अन्य नर-नारियो के सामने आपकी झूठी-निन्दा-बुराई की एव जन-मन को बरगलाया भी सही। ताकि आपका चातुर्मास बिगड जाय।

ऐसा कहा जाता है—

> **न गगा हो गई मैली कभी अधी के कहने से।**
> **न सूरज हो गया काला कभी उल्लू के कहने से॥**

"ठीक इसी प्रकार महाराज! मैं सदैव महावीर भवन मे आपके तथा इन मुनियो के छिद्र देखने के लिए आता रहा हूँ। कभी भी मुझे उन्नीसी बात दृष्टि गोचर नही हुई। बल्कि आपके मुँह से हमारे आचार्य श्री की तारीफ ही सुनी। वास्तव मे आप नदी-नाले नही सागर समान हैं, अज्ञान वशात् मेरी अन्तरात्मा ने आप की निंदा-व भारी अवहेलना कर कर्म बान्धे हैं। निश्चय ही मैं आपका कर्जदार हूँ! इसलिए विहार के पहले मैंने आलोचना करना ठीक समझा। आप क्षमा के भण्डार और शात-सुधा के सदेशवाहक हैं। मुझे मेरी गल्तियो के लिए मनसा वाचा-कर्मणा क्षमा प्रदान करे। ताकि मेरी अन्तरात्मा कर्म बोझ मे हल्की बने।"

गुरुदेव आपकी अन्तरात्मा निर्मल हो चुकी। आप ने बहुत अच्छा किया। मेरे सामने आलोचना

कर दी । वरन् नाता का खाता बढता ही जाता । सुनिये—सत जीवन का कोई अपमान किंवा सम्मान, विनोद अथवा विरोध, निंदा अथवा तारीफ करें हमे तनिक भी खेद नही होता है । हम जानते हैं कि विचार धारा सभी की एक समान नही रहती है ।

आप इसी प्रकार भविष्य मे सरल वृत्ति अपनाये रखे । साप्रदायिक पक्ष के दल-दल मे उलझें नही । निष्पक्षपातपूर्वक जीवन वितावे । सद्बोध ग्रहण कर चलता बना ।

१७. भविष्यवाणी सिद्ध हुई

उन दिनो गुरुदेव दिल्ली विराज रहे थे । सुविधानुसार पजाब सप्रदाय के कई विद्वद मुनि प्रवर एव आचार्य श्री गणेशीलाल जी म० के शिष्यरत्न श्री नानालाल जी म० भी इलाज के लिए अन्य स्थानक मे वही-कही रुके हुए थे ।

"सत मिलन सम सुख जग नाही" इस कथनानुसार मुनियो का एक विशिष्ट स्थान पर मधुर मिलाप हुआ था । विचारो का सुन्दरतम आदान-प्रदान एव स्नेहिल वातावरण के उन क्षणो मे गुरु महाराज की शात दृष्टि सम्मुख विराजित एक मुनिराज के हाथ पर जा टकराई । उस मुनि के करतल मे बहुत ही सुन्दर प्रभाविक ऊर्ध्वरेखा खीची हुई थी । जो विशिष्ट भावी भाग्य-उन्मेष-उन्नयन की प्रतीक थी ।

हस्तरेखा देखकर गुरुदेव वोले—मुनिराज ! आप भले विश्वास करे या नही । किंतु मेरा पक्का अनुमान है कि—ऊर्ध्वरेखा यह आप को भविष्य मे जैन समाज के आचार्य जैसे महान् पद पर प्रतिष्ठित करेगी । आप कोई कल्पित वात नही समझें ।

सत्यएण वदामि ! आप की भविष्य वाणी मिल भी सकती है ! किंतु इन दिनो जहाँ-तहाँ सप्रदायवाद का व्यामोह छोडकर एकीकरण योजना का नारा वुलन्द हो रहा है । समाज मे सगठन के स्वर दिन प्रतिदिन गूज रहे हैं और आप फरमा रहे कि तुम आचार्य पद पर आसीन होगे ?

कुछ भी हो भविष्यवाणी अवश्य मिलेगी । सभी मुनि प्रवर अपने-अपने स्थानो की ओर लौट गये । वात वही की वही रही ।

तदनुसार गुरु भगवत की वही भविष्य वाणी उदयपुर मे सिद्ध हुई । इसलिए कहा है—

जो भाखे वालक कथा, जो भाखे मुनिराय ।
जो भाखे वर कामिनी, एता न निष्फल जाय ॥

१८ आक्षेप निवारण

महाराज श्री का वनारस पदार्पण हुआ था । व्याख्यान के पश्चात् एक सस्कृत निष्णात पडित सेवा मे उपस्थित हुआ । कुछ वार्तालाप के पश्चात् वोला—महाराज ! आप भले जैनधर्म की मुक्त कठ से

प्रशसा करे किंतु व्यक्तिगत मे जैन धर्म को नास्तिक मानता हूँ। जो नास्तिक धारा का पक्षपाती-हिमायती हैं, जो वेद-व्याख्या को मान्य नही करता क्या वह स्व-और पर को जीवनोत्थान-कल्याण की दिशा दर्शन दे सकता है ? मेरी दृष्टि मे तो कदापि नही। अब आप अपना मतव्य प्रगट करें।

गुरुदेव—आप विद्वन होते हुए भी दर्शनशास्त्र से अनभिज्ञ कैसे रह गये ? चार्वाक के अतिरिक्त जैन-बौद्ध, साख्य, वैशेपिक, न्याय एव योग दर्शन आदि सभी आस्तिक दर्शन माने हैं। फिर आप ने जैनदर्शन को नास्तिक कैसे माना ? नास्तिक दर्शन की परिभाषा क्या आप नही जानते हैं ? "नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिक" जो आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता, वह नास्तिक और अस्तीति मतिर्यस्य स आस्तिक—अर्थात् आत्मा की सत्ता स्वीकार करनेवाला दर्शन आस्तिक दर्शन कहलाया है।

हाँ, तो जैनधर्म पक्का आत्मवादी रहा है। आप बुरा न माने, ईर्ष्यालु तत्त्वो ने जैनदर्शन के मर्म स्वरूप अनेकान्त सिद्धान्त को समझा नही, अपितु मिथ्या प्रलाप कर जैनधर्म को नास्तिक कह दिया। वेदो को नही मानने वाला नास्तिक नही। नास्तिक तो वह है जो आत्मा को नही मानने वाला है। जैनधर्म तो स्वर्ग, अपवर्ग-पुण्य पाप विपाक एव पुनर्जन्म आदि सभी को मानता है। अब बताइए नास्तिक कैसे ?

नास्तिक दर्शन के तो सिद्धान्त ही विपरीत है। जिस समय चारो भूत अमुक मात्रा मे अमुक रूप मे मिलते हैं, उसी समय शरीर बन जाता है और उसमे चेतना आ जाती है। चारो भूतो के पुन विखर जाने पर चेतना नष्ट हो जाती है। अतएव जब तक जीओ तब तक सुख पूर्वक जीओ, हँसते और मुस्कराते हुए जीओ। कर्ज लेकर के भी आनन्द करो, जब तक देह है, उससे जितना लाभ उठाना चाहो उठाओ। क्योकि शरीर के राख हो जाने पर पुनरागमन कहाँ हैं ?" यह चार्वाक अर्थात् नास्तिक सिद्धान्त है। समझे ?

पडित—महाराज ! आप का अध्ययन गहरा है। आप पूर्ण मननशील है। वास्तव में आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को नही माननेवाला ही नास्तिक की श्रेणी मे गिना जाता है। कतिपय लेखक महोदय ने मिथ्या बातें लिखकर जैनधर्म को वास्तव मे अपवित्र किया है। मैं जिज्ञासु हूँ। मैंने इसलिए समाधान चाहा। आपके समाधान से मेरे विचारो को नया मोड मिला है। मैं आपके समाधान से अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ।

मैंने आपका समय लिया मुझे क्षमा प्रदान करें ! अब मैं कभी भी जैनदर्शन को नास्तिक नही कहूँगा।

१९ आग मे बाग

यह घटना रतलाम से सम्बन्धित हैं। गुरुप्रवर अपने एक साथी मुनि के साथ शौच से निपट कर लौट रहे थे। मार्ग मे ही एक भाई तेज गति से हापता हुआ सेवा मे आ खडा हुआ। गुरु महाराज ! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। ज्यादा बात करने का अभी समय नही है। आपकी शिष्या अर्थात् मेरी

धर्मपत्नी अपघात करने पर तुली हुई है। पारस्परिक हम दोनो मे कहा सुनी हुई और मैंने आवेश मे आकर उसके मुह पर दो-चार चपातें जमा दिये। इस कारण अब वह तैल छिडक कर खुद की हत्या करना चाहती है। मकान के सर्व दरवाजे बद कर दिये हैं।

अब मैं सरकार की शरण मे जाऊँ, तो हम दोनो की इज्जत और धन की पूरी हानि होगी। इस कारण मैंने आपकी शरण लेना ठीक समझा है। मुझे पक्का विश्वास है कि—आपकी बात मानकर वह समझ जायगी। आग मे सरसब्ज बाग लगाने मे आपकी वाणी सशक्त है। दुर्घटना आप के चारु-चरण कमलो से टल जायगी। अतएव आप देर न करे। वरन् अकाज होने की निश्चय ही सभावना है।

साथी मुनि के साथ गुरुदेव वहाँ पहुँचे। वास्तव मे वहाँ दारुण दृश्य निर्मित था। चारो ओर से मकान के दरवाजे बद थे। चारो ओर मिट्टी के तैल की बुदबू उड रही थी।

गुरुदेव—"बहन ! जरा बाहर आओ। कुछ सेवा-शुश्रूषा का काम है।"

"आप कौन हैं?" अन्दर से आवाज आई।

मैं प्रताप मुनि हूँ। कपडा सीने के लिए मुझे सुई की आवश्यकता है। बाहर आकर दे दो।

गुरु महाराज ! मैं किसी भी हालत मे बाहर नही आ सकती हूँ। आप पडोसी के यहाँ से ले जाइए।"

नही, सुई तुम्हे ही देना होगा।"

आखिर मे वह सुई लेकर बाहर आई। सारे कपडे तैल से आप्लावित थे। शारीरिक दशा दुर्दशा मे बदल चुकी थी।

अब गुरुदेव बोले—बहन ! यह क्या ? और किसलिए ? क्या तुम्हे मरना है ? अपघात करके ही क्यो ? अपघात करके कोई भी सुखी नही, अपितु नारकीय वेदना-व्यथा अवश्य प्राप्त करता है। तत्पश्चात उसके लिए भवभवान्तर मे भटकने के सिवाय और कोई मार्ग ही नही। तुम समझदार होकर क्रोध के वश भय कर अधर्म करने पर कैसे उतर गई ? माना कि — दाम्पत्य जीवन तुम्हारा अशात एव दुखी है। किंतु इसका मतलब यह तो नही कि इस अनुपम देह की दुर्दशा कर मरे। मरना ही है तो धर्म-करणी करके मरो।

असरकारी वाणी के प्रभाव से दोनो की अक्ल ठिकाने आई। उसी वक्त दोनो के आपस मे क्षमापना करवाया गया, गृहिणी को अपघात नहीं करने का त्याग एव गृहस्वामी को हाथ नही उठाने का परित्याग करवाया। पति-पत्नी के बीच पुन शान्त भाव की प्रतिष्ठा हुई। आग मे बाग लगाने वाले साधक के चरणों मे अश्रुपूरित नेत्रो से वे दोनो झुक पड़े थे।

अद्यावधि गुरुदेव की शिक्षाओ पर अमल करते हुए दोनो का जीवन सही सलामत फलफूल रहा है। सुई लेकर गुरुदेव स्थानक मे पहुँचे, भारी दुर्घटना बच गई।

२० विरोधी आप की तारीफ क्यो करते हैं ?

शिष्य मडली के साथ गुरुदेव श्री जी का नागदा जक्शन पर पदार्पण हुआ था। मध्याह्न की शान्त वेला मे एक मुमुक्षु कार्यकर्ता चरणो मे उपस्थित होकर बोला—महाराज ! ऐसा आप के पास कौन सा

जादू, मन्त्र और ऐसी कौन सी विशेषता आपने प्राप्त करली है जिसके कारण साम्प्रदायिक तत्त्व भी पीठ पीछे मुखमन से आप की तारीफ किया करते हैं ?

गुरुदेव ने प्रत्युत्तर मे कहा—विरोधी दल पीठ पीछे तारीफ क्यो करते है ? वह कारण इस प्रकार हैं—सुनिये—मालवरत्न पूज्य गुरुप्रवर श्री कस्तूरचन्द जी महाराज द्वारा मुझे अनुपम सुधा भरी शिक्षा प्राप्त हुई है। फलस्वरूप विरोधी धारा के बीच कैसे रहना ? उनके समक्ष कार्य करते हुए स्वकीयपक्ष को मजबूत कैसे करना ? विरोधी पक्ष के दिल-दिमाग को किस तरह जीतना ? कार्य-कुशलता-सावधानी वरतते हुए आगे कैसे वढना ? तथा उनका कहना है कि—प्रताप मुनि ! मैं तुम्हें विरोधी दल-वल के सामने वार-वार चातुर्मास की आज्ञा प्रदान कर रहा हूँ। इसका मतलव यह कदापि नही कि—तुम उनके साथ साम्प्रदायिक सघर्ष-द्वन्द्व लेकर यहाँ आओ। इसलिए भेज रहा हूँ—तुम जहाँ कही पर भी, किसी धर्म सभा मे वोल रहे हो तुम्हारे वोलने से कदापि वहाँ कपायवृत्ति की वढौतरी न होने पावे। विरोधी विचार धारा को खण्डन एव मिथ्याक्षेप एव व्यर्थ के वाद-विवाद से कभी भी जीता नही जाता है। उन्हें जीतना ही है तो स्नेह-समता सहिष्णुता एव मण्डनात्मक शैली के माध्यम से जीता जाना है।"

गुरु प्रदत्त इन अनुपम शिक्षाओ को मैंने यथाशक्ति अन्तरग जीवन मे उतारा है। वस, यही जादू और यही विशेष मन्त्र मेरे पास रहा हुआ है। भली प्रकार यह मैं जानता हूँ कि यह दुनिया न किसी की वनी और न वनने वाली है। फिर मैं चन्द दिनो के लिए समाज मे क्यो विद्वेप-क्लेश के कारण खडा करूँ। उसी की वदोलत मैंने विरोधी पक्ष को अपना वनाया है।

मुमुक्षु—महाराज ! वास्तव मे आपने जो फरमाया है यह ठीक है। आपका माधुर्य भरा व्यवहार ही आपके लिए प्रख्याति का कारण एव विरोधीपक्ष के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। यही कारण है कि—आपका नाम सुनकर साम्प्रदायिक तत्त्व भी श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं।

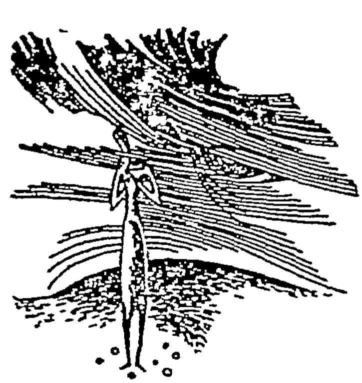

अभिनन्दन : शुभकामनाएं : वंदनाञ्जलियां

प्रातः स्मरणीय प्रखर वक्ता पंडित मुनि श्री प्रतापमल जी म० सा०

के

पुनीत चरणो मे

अभिनन्दन-पत्र—१

वन्दनीय !

विक्रम स० २००७ वीर स० २४७६ मे आपने हमारे ग्राम वकानी (कोटा) मे चातुर्मास की जो अनुकम्पा की है उसके अपार हर्ष का फल अवर्णनीय है। हमारा नगर वकानी आभार प्रदर्शित करता हुआ चरणो मे नत-मस्तक है।

धर्म-प्राण !

आपने स० १९६५ मे देवगढ (मेवाड) की वीर भूमि मे जन्म लिया और स० १९७९ मे मन्दसौर मे गुरुवर्य श्री वादकोविद प्रखरपडित श्री श्री १००८ मुनि श्री नन्दलाल जी महाराज से दीक्षा लेकर अब तक जैन-जैनेतर समाज का जो उपकार किया है, वह अविस्मरणीय है।

आदर्श-साधु !

सासारिक वैभव को ठुकरा कर आपने जो आदर्श पथ ग्रहण किया है वह हँसी खेल नही है। हम मामारिक क्षणिक त्याग (बारह व्रत) का आशिक पालन करने मे भी अपने को असमर्थ पाते हैं, किन्तु आप पचमहाव्रत का पालन कर रहे हैं। वास्तव मे ससार का दुःख ऐसे ज्ञानी और ध्यानी साधु ही नष्ट कर सकते हैं। आप के पदार्पण से हम कृतकृत्य हो गये है।

सुयोग्य गुरुवर !

आत्मार्थी मुनि श्री वसन्तीलाल जी म०, व तपस्वी मुनि श्री गौरीलाल जी म० जैसे सुयोग्य और विनीत शिष्यो ने आप को सुयोग्य गुरु प्रमाणित कर दिया है। आज दोनो सन्त आप की सेवा मे सप्रेम आत्मोन्नति मे रत हैं, यह परम हर्ष का विषय है।

नवयुग प्रेमी !

आज स्वतन्त्र भारत को रूढिप्रेमी, एकान्तवादी, अन्धविश्वासो के भक्त साधुओ की आवश्यकता नही है। परम हर्ष का विषय है कि आप इस कसौटी पर भी खरे उतरे है। आप रूढिवाद के सहारक, अनेकान्तवाद के समर्थक और अन्धविश्वासो के विरोधी के रूप मे सर्व-धर्म समन्वय की भावना से ओत-प्रोत सच्चे देश समाज और धर्म सेवक साधु हैं। साधु समाज के लिये आपके आदर्श अनुकरणीय हैं। साम्प्रदायिकता की गन्ध आप से कोसो दूर है और यही वर्तमान युग की आवश्यकता है। यही कारण है कि आप के मनोहर शिक्षाप्रद व्याख्यानो से जैन, हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान आदि सभी धर्मवालो ने सहर्ष लाभ उठाया है।

हमे आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि भविष्य मे प्रति वर्ष आप समान गुणी सतो की धर्म-वाणी मिलती रहेगी। एक साथ ही वन्दनीय, धर्म प्राण, सुयोग्य गुरुवर, नवयुग प्रेमी की प्रतिभा प्रदर्शित करनेवाले मुनिराज हम आपके चरण कमलो मे भक्ति-पूर्वक वन्दना अर्पित करते है।

हम है आपके उपदेशाकाक्षी
जैन-जैनेतर सघ बकानी के बन्धु-गण

श्री १०८ पूज्य मुनि श्री प्रतापमल जी म० की
पवित्र-सेवा में

अभिनन्दन-पत्र—२

मान्यवर महोदय !

श्री चरण ने इस वर्ष स० २०१३ विक्रम का चातुर्मास कानपुर नगर मे करने की विशेष कृपा की है इससे जैन एव अजैन समाज का वृहत्तर कल्याण हुआ है। इसी प्रकार श्री मुनि महाराज ने स० २००२ वि० तथा स० २००९ वि० मे भी चातुर्मास करके कानपुर नगर के जैन समाज को पात्र वनाया था, अत यहाँ का जैन समाज विशेप रूप से अत्यन्त आभारी है तथा अपार हर्षोल्लास के साथ भक्ति युत श्री चरणो मे नत मस्तक है।

आपने वि० स० १९६५ मे देवगढ (मेवाड) की वीरप्रसविनि अवनि पर अवतरित होकर वि० स० १९७६ मन्दसौर मे गुरुवर्य वादकोविद प्रखर पडित श्री श्री १००८ मुनि श्री नन्दलाल जी म० मे दीक्षा ली। दीक्षोपरान्त जैन शास्त्र तथा सस्कृत साहित्य का यथेष्ट अध्ययन करके आदर्श मुनि महाराज ने अधिकाश भारतवर्ष के भू भाग का पैदल परिभ्रमण कर, व्यवहार पटुता, कार्य कुशलता, परमौदार्यता न्याय परायणता एव विनम्रता का सवल परिचय एव सन्देश देकर भारतीय समाज का जो उत्कृष्ट उपकार किया है, वह स्तुत्य तथा अनुकरणीय है।

आदर्श मुनि !

आप ने ससार मे अवतरित होकर भव-वन्धनो को ठुकरा दिया तथा लौकिक वासनाओ को सर्वथा परित्याग करके आदर्श मुनि वेश-धारण कर पच महाव्रत का पालन करने का दृढ सकल्प किया है, वस्तुत ऐसे ज्ञानी एव विरक्त महात्मा सासारिक दु खो को प्रनष्ट कर सकते हैं। हम लोग आप के पदार्पण से कृत-कृत्य हो गये हैं।

सुयोग्य मुनिवर !

आत्मार्थी मुनि श्री वसन्तीलाल जी म० सा०, विद्यार्थी मुनि श्री राजेन्द्र कुमार जी म० तथा वि० मुनि श्री रमेशचन्द्र जी म० जैसे सुयोग्य एव विनीत शिष्य आपको सुप्रतिष्ठित गुरु पद पर परमासीन करके निरन्तर आप की सेवा मे रत रहकर आत्मोन्नति के लिये सतत शास्त्राभ्यास मे सलग्न हैं यह परम हर्ष का विषय है।

आधुनिक जिज्ञासु !

वर्तमान युग की आवश्यकता अनुसार मुनिश्री के चरणो मे उदारता, गुणग्राहकता, मिलनसारिता, धैर्य तथा विवेक से दुरुह परिस्थितियो के अनुगमन मे निरभिमानता तथा सर्वधर्म समन्वय के सिद्धान्तो एव आदर्शो का पूर्णतया समावेश है अत सन्त एव भारतीय समाज के लिए आप अनुकरणीय प्रमुख महात्मा हैं। क्योकि इन आदर्शो मे ही भारतीय आर्य तथा अनार्य जनता का कल्याण निहित है।

आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि हम लोगो को प्रति वर्ष आपके सदृश निस्पृह तथा निर्विकार साधुओ का अमर धर्मोपदेश प्राप्त होता रहेगा। हम जैनसघ, धर्म, सत्य, नि स्वार्थ तथा वात्सल्यादि प्रतिभा पूर्ण मुनि श्री के पद-पकजो मे भक्ति एव श्रद्धा पूर्वक अभिनन्दन समर्पित करते हैं।

दिनाक १८-११-५६ ई०

हम है आपके चरण चचरीक

श्री ओसवाल जैन मित्र मण्डल, कानपुर

मालवरत्न शासनरक्षक ज्योतिर्विद पडितवर्य श्रद्धेय

गुरुदेव श्री कस्तूरचन्द जी म० द्वारा प्रदत्त

आशीष-वचन

पं० मुनि श्री प्रतापमल जी म० अपनी दीक्षा-साधना के पचास वर्ष के वैभव को प्राप्त कर चुके हैं। यह हर आध्यात्मिक साधक के लिए परम प्रसन्नता की वात है। किन्ही भी विशिष्ट साधक की साधना अन्य साधको के लिए मार्गदर्शन है।

आपका स्वभाव अत्यन्त कोमल है। छोटे से वालक जैसा निश्छल मन है। व्याख्यान की शैली मन मोहक और प्रभावशाली है। द्वन्द्व भाव से आप एकदम दूर रहते हैं। मिलनसारिता और उदारविचार आपके प्रमुख गुण हैं।

जहा भी आपका चातुर्मास और विचरण होता है, वही पर ही आपकी लोकप्रियता का कीर्तन होता है। यह एक प्रशसनीय विशेपता है। जो कि सामान्य रूप से हरेक मे ही प्राप्त नही होती है।

स्व० वादिमान मर्दक पडित श्रद्धेय प्रवर श्री नन्दलाल जी म० के आप प्रतिभाशाली सुशिष्य हैं। आप भी अपने शिष्य-अनुशिष्य के परिवार से भरे पूरे हैं। जिन मे अपनी-अपनी शानदार विशेपताएँ भी हैं। आपकी मेरे प्रति हार्दिक रूप से भक्ति निष्ठा है।

मैं पूर्ण रूप से आपके लिए यह कामना करता हूँ, कि आप इसी प्रकार जन जीवन को जिनवाणी की प्रेरणा से प्रतिवोधित करते रहे। धर्म प्रभावना की महनीय सुगन्ध से ससार को महकाते रहे। साधना की चिर जीवत ज्योति की उज्ज्वलता से निरन्तर प्रकाशमान हो। इसमे आप सक्षम हो, सफल हो एव सशक्त हो।

अनन्त चतुर्दशी
जैन स्थानक, नीम चौक
रतलाम (म० प्र०)

मेरी शुभ कामना

—स्थविरमुनि श्री रामनिवास जी म

मेरे जीवन मे यह प्रथम प्रसग था कि—पण्डितमुनिश्री प्रतापमल जी म० सा० के साथ सम्वत् २०३० इन्दौर का यह चातुर्मास विताने का अवसर मिला। आप जितने शरीर से महान् है उससे भी कई गुनित विचारो मे उदार एव महान् है।

आप सम्प्रदाय वाद से परे हैं। सकीर्णता से दूर है। '**उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्**" इस सिद्धान्त को आपने जीवन साक्ष किया है। तदनुसार आप का शिष्य परिवार भी उमी पवित्र-परम्परा को निभाने मे कटिवद्ध हैं। एव विवेक, विनय, विद्याशील है। मेरी शुभ कामना समर्पित है।

अभिनन्दनीय यह क्षण

—प्रवर्तक, शास्त्रविशारद मुनि श्री हीरालाल जी म०

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' दार्शनिक जगत ने फूल एव वज्र की दृष्टि से सत जीवन को कोमल एव कठोर उभय धर्मात्मक अभिव्यक्त किया है। परकीय दुख-दर्द-पीडा-चीत्कार एव सरासर मानवता का अध पतन आखो के समक्ष देखकर साधक का मृदु मन द्रवित होना स्वाभाविक है। इसलिए कहा है—'**परोपकराय सता विभूतय**' अर्थात् साधक-विभूतियाँ ससार मे परोपकार के लिए अवतरित हुई हैं।

मेवाड भूषण प० श्री प्रतापमल जी म० सा० भी उदार विचार के धनी एव उच्चकोटि के कर्मठ साधक माने गये हैं। जिनके साथ मेरा मधुर सम्वन्ध वैराग्य-अवस्था से अर्थात् १९८९ से अटूट चला आ रहा है। अनेक सयुक्त वर्षावास भी साथ करने का मुझे अवसर मिला है।

आप मे अगणित गुण विद्यमान हैं। सचमुच ही अन्य साधक जीवन के लिए अनुकरणीय है। माधुर्यता पूरित भाषा, नम्रवृत्तिमय जीवन एव समन्वय सिद्धान्त के माध्यम से सगठन-स्नेह की गगा प्रवाहित करने मे आप अत्यधिक कुशल हैं।

अनेक साधु-साध्वी वर्ग को अध्यापन करवा कर उन्हें होनहार वनाने मे आपका श्लाघनीय सहयोग रहा है। रचनात्मक कार्य भी आपके द्वारा पूर्ण हुए हैं—इन्दौर मे स्थापित 'सेवा सदन', जावरा मे सस्थापित 'स्वाध्याय भवन', दलौदा का 'दिवाकर स्मृति भवन' आदि आपकी ही देन हैं।

सुदूर देशो मे आपने विहारयात्रा करके भ० महावीर के दिव्य सन्देश को प्रसारित किया है।

आप की सयम साधना सुदीर्घ काल तक सघ रूपी उद्यान को उत्तरोत्तर विकसित एव सुवासित करती रहे। यही मेरी शुभकामना है।

सरल और सुलझे हुए संत !

—प्रवर्तक श्री अम्बालाल जी म० सा०

प० रत्न श्रद्धेय श्री प्रतापमल जी म० सा० हमारी पीढी के एक समझदार और सुलझे हुए सन्त हैं।

कई बार मेरा उनसे मिलने का प्रसग आया। बच्चो जैसी सरलता, मधुर व्यवहार और बात-चीत मे आत्मीयता देखकर मैं उनसे प्रभावित हुआ हूँ।

मेरा उनसे बहुत निकट सम्बन्ध है। मैं उनके विषय मे इतना तो नि सकोच कह ही सकता हूँ कि—किसी के लिये उनसे उलझना आसान नही है। क्योकि वे स्वय अपने मे बहुत सुलझे हुए हैं।

शतायु बनकर शासन सेवा करते रहे यही शुभ कामना !

मेरी असीम मंगल कामनाएं

—बहुश्रुत श्री मधुकर मुनि जी

भक्तगण श्रद्धेय मुनि श्री प्रतापमल जी म० का अभिनन्दन करने की साज-सज्जा मे सलग्न है यह जानकर अतीव प्रसन्नता है मुझे।

साधना के पथ पर अविराम गति से अपना पदन्यास करने वाले सत जनो का अभिनन्दन करना उनके प्रति अपनी आस्था का एक प्रकर्ष रूप है। भक्तगण का मुनि श्री जी के इस अभिनन्दन के साथ मेरा भी यह अभिनन्दन प्रस्तुत है।

मुनि श्री जी सयम साधना के पथ पर निरन्तर बढते चलें और चिरजीवी बनें—यही एक मात्र शुभ मगल कामना।

हार्दिक मंगल कामना

—उपप्रवर्तक श्री मोहनलाल जी म० सा०

जीवन का यह एक जाना माना जीवन्त तथ्य है कि सयमशील एव तपोमय महान जीवन की दिव्य झलक-झाकी, जन जीवन के अन्तराल मे त्याग, तप एव सयम की उदात्त भावनाएँ जगाती है—व्यक्ति के जीवन मे कुछ कर गुजरने की हिलोरें पैदा करती है जीवन निर्माण की दिशा मे आगे बढ जाने के लिए उत्प्रेरित करती है।

हर्ष का विषय है कि त्याग-वैराग्य के पवित्र पथ पर निरन्तर आगे बढने वाले स्थानकवासी समाज के महान सत श्रद्धेय श्री प्रतापमल जी म० सा० के सुदीर्घ चारित्र पर्याय एव सघ-सेवा के उपलक्ष्य मे प्रताप अभिनन्दन ग्रथ प्रकट होने जा रहा है।

मुझे श्रद्धेय मुनि श्री से अनेक वार मिलन, न केवल मिलन अपितु उन्हे निकट से देखने का परखने का अवसर मिला है, इससे मैं यह दृढता के साथ कह सकता हूँ कि महाराज श्री छल प्रपचो व द्वन्द्वो से एकदम परे साक्षात् सरलता की भव्य मूर्ति हैं। आगम की भाषा मे नि सन्देह उनका जीवन चन्द्र से अधिक निर्मल, सूर्य से अधिक तेजस्वी एव सागर से अधिक गभीर है।

श्रमण सघ मे ऐसे त्यागी, वैरागी तपस्वी मनस्वी विद्वान सतो का होना समाज के लिए ही नही राष्ट्र के लिए भी सौभाग्य की वात है अत मे इसी शुभ एव मगल कामना के साथ—

सतत साधना पथ पर वढ़ता, रहे 'कमल' जीवन स्यन्दन।
परम प्रतापी प्रताप मुनिवर, स्वीकृत करिये अभिनन्दन ॥

श्रद्धेय श्री प्रतापमल जी म० सा० : एक अनुभूति

—भगवती मुनि "निर्मल"

निश्छल नयन, निर्मल चेहरा हर्ष प्रफुल्लता मे ओतप्रोत विकसित नयन श्याम उपनेत्र से आच्छादित, व्यक्तित्व को देखकर कौन आल्हादित नही होगा, वालक वृद्ध कोई भी हो, उसे उसी मुद्रा मे सभापण करने की कला मे प्रवीण पडितजी म० के उपनाम से सम्वोधित प० रत्न श्रद्धेय प्रतापमल जी म० सा० को कौन नही जानता ?

मेरा आपसे सर्व प्रथम परिचय वम्वई थाना मे हुआ था उसी समय का अमिट प्रभाव आजतक मेरे ऊपर है। हाँ मध्य मे कुछ व्यवधान आया, वाधाएँ आयी पर थे वे भी क्षणभगुर नाशमान देह के समान अल्पवयी। वडो मे जो छोटो को मार्गदर्शन देने की या अभिमानपूर्वक वार्तालाप करने की भावना देखी जाती है वो भावना आप मे नाम मात्र भी दृष्टिगोचर नही होती। प्रेम पूर्वक निश्चल नेत्रो से दृष्टिपात करते हुये हर एक को मार्गदर्शन कराते हुये आपको कभी भी देखे जाते हैं।

वडे-वडे दिग्गजो मे भाषा का जो व्यामोह देखा जाता है, भाषा सस्कृतमय क्लिष्ट शव्दावली मे उच्चारित विद्वानो के सन्मुख उन्हे विद्वानो की श्रेणी मे रखे किन्तु जन साधारण के पल्ले कुछ नही पडने वाला वह औरो के कहे हुए वाक्यो की चूकि विद्वानो है, प्रतिध्वनि भले ही करले किन्तु अन्तर मन से विद्वान के भाषण उसके समझ से परे की वस्तु है।

विपय उसके मस्तिक मे कुछ भी नही आता, वह आखें वन्द किये खानापूर्ति के लिए वैठा है किन्तु जिन महापुरुपो ने जनता जनार्दन की भाषा मे व्याख्यान उपदेश दिये हैं या अपना मन्तव्य दिया है वे ही उनके गले के हार वन गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति उन्ही की ओर आकर्पित होता है वह उन्हीं को अपना गले का हार वना वैठा है। श्रद्धा का केन्द्र विन्दु भी उन्ही के इर्द गिर्द घूमता चक्कर लगाता हुआ दिखता है। प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर चौथमल जी म० सा० के व्याख्यान मे जन साधारण की भीड इसी कारण मे थी वही नजारा श्रद्धेय प० रत्न श्री प्रतापमल जी म० सा० के व्याख्यानो मे भी देखा जाता है। विशेषता है कि वे अपने उपदेश व्याख्यान विद्वद् भाषा मे न देकर जन साधारण की भाषा मे देते हैं, कैसा भी गूढ विपय हो, उसे साधारण भाषा मे व्यक्त कर श्रोताओ के हृदयगम करा देने की कला मे आप पटु है अत आपके व्याख्यानो मे प्राय देखा जाता है कि प्रत्येक श्रेणी के व्यक्ति

आकर उपदेश श्रवण कर कृतकृत्यता का अनुभव करते है। फिर पारस्परिक चर्चा मे भी कथित को दुहराते हैं वह इसलिए कि विषय उसकी समझ मे आ जाय।

पर्यटक मानव एक स्थान मे रहता है तो अनुभवशील नही होता है क्योकि उसकी वातो मे नवीनता का अभाव होता है, नवीन अनुभवो से वह हीन है, किन्तु जिसने यथेष्ट मात्रा मे परिभ्रमण कर लिया है, प्रत्येक स्थानो को गहराई मे देखने की कला मे माहिर है वह अपने अनुभवो को ज्ञान तन्तुओ की तुलनात्मक लय मे बाधकर कहे सजोये सवारे तो वह-अनूठी होती है अनोखी होती है आप सच्चे अर्थो मे परिव्राजक हैं जो मालवा मेवाड के डगर से तो परिचित है ही, किन्तु सुदूरवर्ती प्रदेश वग प्रदेश (पश्चिम) महाराष्ट्र उत्तर प्रदेश की भूमि भी आपके चरणरज से पवित्र हो गयी है। गुजरात भी अछूता न रहा, वह भी अपने पवित्र स्पर्श से उपदेश की अमित धारा से पावन किया है। अपने जीवन को उन्नतिमय पवित्र शील बनने की कला मे भी आप पटु हैं किसी को भी अपना बनाने की कला मे पटु है, सिद्धहस्त है। अपना बनाने की कला मे हर कोई पटु नही बन सकता वह तो विरल प्राणियो मे ही देखी जाती है।

आप मे यह सद्गुण भी देखा जाता है कि जो भी अपने कार्य करने का निश्चय कर लिया उस पर गहन मनन के बाद यदि नही हो तो उसे करे बिना चैन भी नही पडता, करना है इसीलिए करना नहीं। कर्त्तव्य है करणीय है इससे सुफल निकलेगा बस इसी भावना, से कार्य करने मे कटिबद्ध हो जायगें फिर तो अनेको बाधाएँ मुँह पसारे सामने खडी हो जाय या अन्य कुछ भी हो जाये करके ही छोडेंगे।

आज उनकी जो स्वर्ण जयन्ति मनाई जा रही है अभिनन्दन ग्रथ भेंट करने का जो आयोजन चल रहा है वह अतीव हर्ष का विषय है। मैं श्रद्धेय श्री श्री प्रतापमल जी म० सा० को हार्दिक अभिनन्दन प्रेषित कर रहा हूँ। साथ मे मेरी यह भावना बताने का लोभ भी नही सवरण कर पा रहा हूँ कि दीक्षा की सौवी जयन्ति मानने के आयोजन मे मैं भी शामिल होऊँ व अपना मन्तव्य सहस्रायुभव कहकर पूरा करूँ। इसी भावना के साथ-साथ पुन पुन अभिनन्दन जय वन्दन के साथ विरमामि।

●

प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व : एक विश्लेषण

—**मुनि रमेश** सिद्धान्ताचार्य, साहित्य रत्न

गुरु प्रवर के यशस्वी जीवन के सम्बन्ध मे जितना भी लिखा जाय, वह अपर्याप्त ही रहेगा। आप मे उदारता, गुणग्राहकता, मिलनसारिता, धैर्यता, विवेकता और समन्वयता के साथ-साथ परिस्थितियो के समझने को खूबी अजब की रही है। निरभिमानता, समता आदि कूट-कूट करके जीवन के कण-कण मे ओत-प्रोत हैं। यही कारण है कि—विरोधी जन भी आप के सान्निध्य मे उपस्थित होकर विरोधी भावना भूल से जाते हैं और अक्षुण्ण आत्मशाति का अनुभव कर वही ईर्ष्या-द्वेष के किटाणुओ को विसर्जन कर देते हैं।

कानो से वातें करती करुणा-पूरित आखें, सुन्दर पलको की पाखें, शात सौम्य चन्द्रानन, चमकता विशाल भाल, चाँदी सी दमकती केशावली, धनुषाकार भौहे, शुचि शुक नासिका, अमृत रसमय अधर पल्लव, दत मुक्ता, पक्ति-द्वय की विद्युत् छटा, गोल गुलाबी गाल, मन मोहक मुँह पर मधुर

मुस्कान, जो वैराग्य भावो से ओत-प्रोत आदि आप के पार्थिव शरीर का वाह्य वैभव है। जो सचमुच ही आगन्तुक भव्यात्माओ को सहज मे ही प्रभावित करता है।

महकता जीवन

"उदार चरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम्" अर्थात् आप के लिये सारा ससार ही एक विराट परिवार है। यद्यपि सम्प्रदाय के वीच आप ने विकास पाया है। तथापि साम्प्रदायिक भावनाओ मे आप कोसो दूर रहे हैं। फलस्वरूप प्रत्येक मानव के प्रति आप का व्यवहार वहुत ही उदार और सुखप्रद रहा है। गुण ग्राहकता आप की निराली विशेषता रही है। चाहे वालक अथवा वृद्ध हो, चाहे योगी हो या भोगी, परन्तु उनकी गुणज्ञता आप सहर्ष स्वीकार करते हैं। मिलनसार भी आप अपने ढग के अनोखे हैं। जहाँ भी आप के चरण कमल पहुँचते है वहाँ अपनत्व का मधुर वातावरण सर्जन करके ही लौटते हैं।

सेवा धर्म आप के जीवन का मूल मत्र है। इस पर जन्म-जात आप का अधिकार भी है। अनेक शिष्यो के होते हुए भी अद्यावधि आप उसी प्रकार सेवा कार्य मे दत्तचित्त है। आप द्वारा कृत सेवा से प्रसन्न होकर स्व० श्रद्धेय गुरुदेव श्री नन्दलाल जी म० सा० सदैव अपनी सेवा मे ही रखते थे। इसी प्रकार जव जव स्थविर-वृद्ध मुनिवरो की सेवा-शुश्रूषा की आवश्यकता पडती थी तव आप की याद किये जाते थे। स्व० पूज्य श्री मन्नालाल जी म० सा०, तपस्वी श्री वालचद जी म० सा० वैराग्य मूर्ति मोतीलाल जी म० सा०, तपस्वी श्री छव्वालाल जी म० सा० एव स्व० उपाध्याय श्री प्यारचन्द जी म० सा० आदि २ अनेकानेक महामना मनस्वियो की आप ने दिल खोल कर सेवा की है। तपस्वियो की सेवा-भक्ति करना सचमुच ही कटकाकीर्ण माना है। फिर भी आप सेवा साधना मे सफल हुए हैं। अतएव अनुमान सही वताता है कि—सेवा क्षेत्र मे आप एक कुशल-कर्मठ योद्धा रहे हैं।

चमकता सयम .

"प्रज्ञाऽऽज्ञैश्वर्य क्षमा माध्यस्थ सपन्न समापति"

—प्रमाणनयतत्वालोक

उर्पयुक्त गुण आप के महकते जीवन मे परिपूर्ण पाये जाते हैं। तभी तो आप एक सफल एवं सवल अनुशासक eohtroller की श्रेणी मे गिने जाते हैं। Simple living and higthinking अर्थात सादा जीवन और उच्च विचार हमारे चरित्र नायक के जीवन का उच्चातिउच्च आदर्श है। आप के जीवन का एक-एक क्षण मर्यादा पालन मे वीता और वीत रहा है। आपके शासन मे न कटुता, न कठोरता, न कापट्य पूर्ण व्यवहार और न दीखावटी-दृश्य ही है जो अन्य अधिकारी शासको के शासन मे पनपते हैं। वस्तुत सरलता, ऋजुता, समता और करणी-कथनी मे समन्वयात्मक शासन आप का स्तुत्य सुशासन है।

कथनी करणी का सुमेल

अन्तर और वाह्य एकता पर सत जीवन की सवसे वडी विशेषता निर्भर है। जिसके मन मे वाणी मे दुसरापन और आचरण मे तीसरापन। वह वास्तविक सत नही हो सकता। जीभ और जीवन के वीच की खाई जितनी ही चौडी होती जायगी सतवृत्ति उतनी ही दूर होती जायगी। जीभ और जीवन की समानता मे सतवृत्ति पुष्पित पल्लवित होती है। सतवृत्ति के अनुरूप गुरु भगवत का महकता हुआ साधना मय जीवन एक वास्तविक जीवन रहा है। फलस्वरूप कई विद्वद् साधक शिष्य

आप के स्वभाव की शीतल छाया मे रहकर असीम आत्मिक आनन्द उल्लास का अनुभव करते हैं। तथा अपने को शतवार भाग्यशाली मानते हैं।

शासक तो वहुत वन जाते हैं। किन्तु कसौटी की घडी निकट आने पर शासक और शासित (सेवक) दोनो भानभूल कर स्व कर्तव्यच्युत हो जाते हैं। परन्तु हमारे चरित्रनायक के सम्मुख कठिनाति कठिन अवसर आने पर भी आत्मभाव को भूलते नही है। अपितु अथाह सहिष्णुता समता धीरता मे ही रमण किया करते और उभरे हुए वातावरण को अपनी पैनी वुद्धि से शात वना देते हैं। वस्तुत निभने और निभाने की कला कुशलता का वरदान जो आप को प्राप्त है वह अन्यत्र इने-गिने अधिकारियो मे ही परिलक्षित होता है।

सवल प्रेरक .

यद्यपि भव्यात्माओ को भगवान का स्वरूप माना है। वन्धित कर्म दलिक ज्यो-ज्यो दूर हटते हैं त्यो-त्यो देहधारी विदेह दशा की अर्थात् शुद्धता की ओर वढता जाता है। अन्तत केवल ज्ञान दर्शन को उपलव्ध कर वीतरागी कहलाने का अधिकार पा लेता है। जव सर्वोत्कृष्ट साधना के मर्म भेद को समझना ही दुष्कर है तो वहाँ तक पहुँचना और भी कठिन है। उसमे आश्चर्य ही क्या है ?

जव भूली-भटकी आत्माओ को कोई सच्चा गुरु अथवा सवल प्रेरक मिले, तभी वास्तविक आत्म-मार्ग की प्राप्ति, मुर्दे मन मे पुन उत्साह का निर्झर और तभी उच्चतम साधना शिखर तक पहुँचने का जीवन मे साहस प्रस्फुरित होता है। वरना साधारण से कष्ट से मानव का मन होतात्साह होकर पुन विषय वासना मे लौट आता है। इस कारण पामर प्राणियो के हितार्थ सवल प्रेरक की महती आवश्यकता रही है।

"सतत प्रिय वादिन" अर्थात् हाँ मे हाँ मिलानेवाले हजारो है किन्तु "**अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता सदा दुर्लभ**" स्पष्ट एव पथ्यकारी प्रेरणा देने वाला वक्ता दुर्लभ माना गया है। गुरु भगवत का जीवन भी प्रत्येक मुमुक्षुओ के लिये योग्य प्रेरणा का ओज भरने वाला एव नई चेतना फूकने वाला सिद्ध हुआ है। ऐसे एक नही अनेकानेक उदाहरण मौजूद हैं जो निराशावादी जीवन मे शान्त सुधाभरी वाणी का सिंचन कर उन मुर्झित कलियो को विकसित होने मे अपूर्व साहस प्रदान किया है।

शान्ति के सस्थापक

"शान्तिमिच्छति साधव" सत जीवन सदैव स्व-पर के लिये अभयात्यक शान्ति की कामना किया करते हैं। गुरु महाराज का सयमी जीवन भी जिस देश-नगर गावो मे विचरा है। वहाँ अशान्ति के कारणो की इति श्री कर शान्ति का शीतल-सुगन्ध समीर प्रवाहित किया है। विछुडे हुए दो भाइयो को मिलाए हैं, रोते हुए राहगीरो को हसाए हैं। फूट-फूट की परिस्थितियाँ मे सगठन एव प्रेम भरी वीणा ध्वनित की है। खण्ड-खण्ड के रूप मे देखना आप को इष्ट नही है। यही कारण है कि—आप जोडना जानते है न कि तोडना।

भगवान महावीर के निम्न सदेश को आप ने निज जीवन के साथ जोडा है—

वुद्धे परि निव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व सजए।
सती मग्ग च वूहए, समय गोयम ! मा पमायए ॥

मुमुक्षु ! भले तू गाँव, नगर, पुर, पाटन अथवा और कही विचरन करना किन्तु शाति मार्ग का उपदेश देने मे प्रमाद मत करना।

ज्ञान दान के अद्वितीय दानी

'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' [illegible] की [illegible] आप [illegible] रहकर अध्ययनाध्यापन करे, आप [illegible] बनाकर उस विद्यार्थी के [illegible] कुछ न कुछ [illegible] साथ ही साथ विद्यादान मे [illegible] गांधी का एक जीवन संस्मरण याद हो आता है।

महात्मा गांधी [illegible] आश्रम मे देश के अनेक उच्चकोटि के नेता आये हुए थे। [illegible] गांधीजी से देश की विविध समस्याओं पर विचार विमर्श करना व मार्ग दर्शन लेना था। [illegible] निर्धारित समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। अनेक विदेशी भी [illegible] हो रहे थे। पर महात्मा जी [illegible] समझा रहे थे।

एक परिचित विदेशी [illegible] गांधीजी से [illegible] भी महत्वपूर्ण कार्यों का [illegible] और ढेर लगा है। [illegible] ?

गांधीजी ने स्मित मुद्रा से उत्तर देते हुए कहा — [illegible] और क्या कहता ? चुप होकर बैठ गया। [illegible]

यही कारण है कि — आप अपने समीप रहने वाले [illegible] को कुछ न कुछ पढ़ाया एवं रटाया ही करते है। अनेक साधु-साध्वी भी [illegible] पढ़ना एवं व्याख्यान [illegible] का आप से प्रशिक्षण ग्रहण [illegible] है। [illegible] सुशिक्षित होकर आज ऊँची श्रेणी के योग्य धार्मिक [illegible] पर [illegible] है।

वस्तुत समन्वय आप के जीवन का मौलिक गुण है। [illegible] की सदैव इच्छा बनी रहती है। आप भी जिन शासन के [illegible] है। यद्यपि नानाविध गुण रत्नो से चमकते-दमकते आप गंभीर रत्नाकर हैं। जो गोते लगाने पर ही मिल पाते है। कहा भी है — "जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ' जिसने गुरु महाराज के चरण सेवे है उसने अवश्यमेव इच्छित फल पाया है।

आचार्य क्षितिमोहनसेन शास्त्री (शान्तिनिकेतन) प्रदत्त

अभिनन्दन-पत्र

बगाल और जैनधर्म

समार मे अन्य सभी देशो मे धर्म को लेकर मार-काट सघर्प और युद्ध हुए हैं। सभी यह प्रयत्न कर रहे हैं कि अपने धर्म को स्थापित करके अन्य धर्म को लुप्त कर दिया जाय, इसलिये यूरोप मे कई शताब्दियो तक इसाईयो और मुसलमानो के वीच धर्म युद्ध (क्रुसेड) होते रहे है। वस्तुत इस रक्त-पात का नाम ही क्रुसेड है।

भारतवर्प मे अनेक धर्म मत फूलते-फलते है, किन्तु एक ने दूसरे को रक्त के स्रोत मे डुवाने का प्रयत्न नही किया। हमने अपने और दूसरो के सम्मिलित मगल को सत्य माना है। जिसे अग्रेजी मे "लिव एण्ड लेट लिव" कहते हैं। धर्म को लेकर हमने विचार विनिमय किया है, तर्क-वितर्क किया है किन्तु रक्तपात नही किया है। कारण प्रेम और मैत्री ही हमारे धर्म का प्राण है। उग्र धर्मान्धता या कट्टरता इस देश के लिये विरल है।

भारतवर्प मे बहुत प्राचीन काल से धर्म की दो धाराएँ बहती आई हैं एक वैदिक और दूसरी अवैदिक। वैदिक धर्म की शिक्षा यज्ञ की वेदी के चारो ओर दी जाती थी। अवैदिक धर्म की शिक्षा के स्थान थे तीर्थ। इसलिये अवैदिक धर्म की धारा को तैर्थिक धारा कहा जाता है।

भारतवर्प के उत्तर पूर्व प्रदेशो अर्थात् अग, वग, कलिग, मगध, काकट (कलिग) आदि मे वैदिक धर्म का प्रभाव कम तथा तैर्थिक प्रभाव अधिक था। फलत श्रुति, स्मृति आदि शास्त्रो मे यह प्रदेश निन्दा के पात्र के रूप मे उल्लिखित था। इसी प्रकार इस प्रदेश मे तीर्थ यात्रा न करने से प्रायश्चित करना पडता था।

श्रुति और स्मृति के शासन से वाहर पड जाने कारण इस पूर्वी अचल मे प्रेम, मैत्री और स्वाधीन चिन्तन के लिये बहुत अवकाश प्राप्त हो गया था। इसी देश मे महावीर, बुद्ध आजीवक धर्म गुरु इत्यादि अनेक महापुरुपो ने जन्म लिया और इसी प्रदेश मे जैन, बुद्ध प्रभृति अनेक महान् धर्मो का उदय तथा विकास हुआ। जैन और बौद्ध धर्म यद्यपि मगध देश मे ही उत्पन्न हुए तथापि इनका प्रचार और विलक्षण प्रसार वग देश मे ही हुआ। इस दृष्टि से बगाल और मगध एक ही स्थल पर अभिपिक्त माने जा सकते हैं।

बगाल मे कभी बौद्ध धर्म की बाढ आई थी, किन्तु उससे पूर्व यहाँ जैन धर्म का ही विशेप प्रसार था। हमारे प्राचीन धर्म के जो निदर्शन हमे मिलते हैं वे सभी जैन है। इसके बाद आया बौद्ध युग। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान की लहरें भी यहाँ आकर टकराई किन्तु इस मतवाद मे कट्टर कुमारिल भट्ट को स्थान नही मिला। इस प्रदेश मे वैदिक मत के अन्तर्गत प्रभाकर को ही प्रधानता मिली और प्रभाकर थे स्वाधीन विचार धारा के पोपक तथा समर्थक।

जैनो के तीर्थंकरो के पश्चात् चार श्रुतकेवली आये। इनमे चौथे श्रुत केवली थे भद्रवाहु तीर्थंकरो ने धर्म का उपदेश तो दिया किन्तु उसे लिपिवद्ध नही किया। श्रुतकेवली महानुभावो ने इन सब उपदेशो का सग्रह करके उन्हे एक व्यवस्थित रूप दिया। उनमे से प्रथम तीन की कोई रचना नही मिलती। चतुर्थ श्रुतकेवली भद्रवाहु के द्वारा रचित अनेक शास्त्र मिलते है। उनके दशवैकालिक सूत्र इत्यादि अनेक ग्रन्थ मिलते हैं जो जैनो के प्राचीनतम शास्त्र के रूप मे सम्मानित हैं।

ये भद्रवाहु चन्द्रगुप्त के गुरु थे। उनके समय मे एक वार वारह वर्षव्यापी अकाल की सम्भावना दिखाई दी थी। उस समय एक वडे सघ के साथ वगाल को छोडकर दक्षिण चले गये और फिर वही रह गये। वही उन्होंने देह त्यागी। दक्षिण का यह प्रसिद्ध जैन महातीर्थ श्रवण वेलगोल के नाम से प्रसिद्ध है। दुर्भिक्ष के समय मे इतने वडे सघ को लेकर देश मे रहने से गृहस्थो पर वहुत वडा भार पडेगा। इसी विचार से भद्रवाहु ने देश परित्याग किया था।

भद्रवाहु की जन्म भूमि थी वगाल। यह कोई मनगढन्त कल्पना नही है, हरिसेन कृत वृहत् कथा मे इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। रत्ननन्दी गुजरात के निवासी थे। उन्होने भी भद्रवाहु के सम्वन्ध मे यही लिखा है। तत्कालीन वग देश का जो वर्णन रत्ननदी ने दिया है इसकी तुलना नही मिलती।

इन कथनानुसार भद्रवाहु का जन्म स्थान पुड्रवर्धन के अन्तर्गत कोटीवर्ष नाम का ग्राम था। ये दोनो स्थान आज (वगुडा) और दिनाजपुर जिलो मे पडते हैं। इन सव स्थानो मे जैन मत की कितनी प्रतिष्ठा हुई थी, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि—वहा से राढ तामलुक तक सारा इलाका जैन धर्म से प्लावित था।

उत्तर वग, पूर्ववग, मेदनीपुर, राढ और मानभूमि जिलो मे वहुत सी जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। मानभूमि के अन्तर्गत पातकूप स्थान मे भी जैनमूर्तियाँ भी मिली हैं। सुन्दर वन के जगलो मे भी धरती के नीचे से कई मूर्तियाँ सग्रह की गई हैं। वाकुण्डा जिला की सराक जाति उस समय जैनश्रावक शव्द के द्वारा परिचित थी। इसप्रकार वगाल किसी समय जैन धर्म का एक प्रधान क्षेत्र था। जव वौद्ध धर्म आया तव उस युग के अनेको पडितो ने उसे जैन धर्म की शाखा के रूप मे ही ग्रहण किया था।

इन जैन साधुओ के अनेक सघ और गच्छ हैं। इन्हे हम साधक सम्प्रदाय या मण्डली कह सकते हैं। वगाल मे इस प्रकार की अनेक मण्डलियाँ थी। पुड्रवर्धन और कोटिवर्ष एक दूसरे के निकट ही हैं किन्तु वहाँ भी पुण्ड्रवर्धनीय और कोटिवर्षिया नाम की दो स्वतन्त्र शाखाएँ प्रचलित थी। ताम्रलिप्ति मे ताम्रलिप्ति नाम की शाखा का प्रचार था। इस प्रकार और भी वहुत शाखाएँ पल्लवित हुई थी जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि - वगाल जैनो की एक प्राचीन भूमि है। यही जैनो के प्रथम शास्त्र रचयिता भद्रवाहु का उदय हुआ था। यहाँ की धरती के नीचे अनेक जैन मूर्तियाँ छिपी हुई हैं और धरती के ऊपर अनेक जैन धर्मावलम्वी आज भी निवास करते हैं।

आज यदि दीर्घ काल के पश्चात् अनेक जैन गुरु वगाल मे पधारे हैं तो वे वस्तुत परदेश मे नही आये, वे हमारे ही है और हमारे ही वीच आये उन्हे हम वेगाना नहीं कह सकते। ये सव जैन साधु हमारे अग्रज हैं और हम श्रद्धा के साथ उनका अभिनन्दन करते हैं। हमारे इस स्वागत मे यदि कोई समारोह का अभाव जान पडे तव भी उसके भीतर वडे भाई का सादर अभिनन्दन करने की भावना नि सन्देह छुपी हुई है। कदाचित ऐसी ऐहिक घटना वहुत प्राचीन त्रेतायुग मे भी घटित हुई थी तव वनवास के वाद रामचन्द्र अयोध्या लौटकर आये थे और छोटे भाई भरत ने भक्ति एव प्रीति सहित उनका स्वागत किया था। अपने जैन गुरुओ का हम उसी भावना से अभिनन्दन कर रहे हैं।

आज खडियिया मे श्री श्री १०८ श्री जैन मुनि श्री प्रतापमल जी म० श्री हीरालाल जी म० श्री जगजीवन जी म० और श्री जयन्तीलाल जी म० के नेतृत्व मे जैन गुरुओ का जो समागम हो रहा है

वह वरवस ही त्रेता युग के भरत-मिलन की उस कथा का स्मरण करा देता है। हमारी यही कामना है कि—यह नवीन मिलन जययुक्त हो, प्रेम और मैत्री से पूर्ण यह प्रदेश कल्याणमय हो, पृथ्वी पर शाति और मैत्री की प्रतिष्ठा हो।

श्री जैन सघ
साइथिया
ता० २-६-१९५४

ऋषि पचमी
१६ भाद्र १३६१ वगाब्द

आदरणीय गुरु प्रवर के चरणो मे

—महासती विजयाकुमारी

इस विराट् विश्व के अचल मे प्रतिदिन प्रतिघटे और प्रतिपल अनेक आत्माएँ मानव के रूप मे अवतरित हुए और होती हैं। अपनी-अपनी विभिन्न अवस्थाओ को पार करती हुई काल कवलित बनकर धरातल से चली गई।

परन्तु कौन उनका जीवन पुष्प सौरभ सकलित करता है ? कोई नही। केवल उन्ही का स्मरण किया जाता है जिन्होंने अपने जीवन को जगत मे जगमगाया है और परोपकार मे लगा रहे हैं निज जीवन को।

हमारी मेवाड धरा ने समय-समय पर अनेको महान् नर-रत्नो को जन्म दिया है। जैसे—राणा प्रताप, दानवीर भामाशाह और आज हमारे सम्मुख हैं परम प्रतापी, शात, सरल-स्वभावी शास्त्र ज्ञाता मेवाड भूषण प० रत्न श्री गुरुदेव श्री प्रतापमल जी म० सा०।

आपका जन्म मेवाड प्रात के देवगढ (मदारिया) नामक गाँव मे स०१९६५ मे हुआ था। आपके पिता धर्म प्रेमी श्री मोडीराम जी एव माता दाखाँबाई थी। १५ वर्ष की उम्र मे वादीमानमर्दक प० रत्न श्री नन्दलाल जी म० के सदुपदेश से मन्दसोर मे दीक्षा ली।

बौद्धिक प्रतिभा के धनी होने से अल्प समय मे ही सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओ पर प्रभुत्व पाया। आपकी प्रवचन शैली जनता को आकर्षणकारी है। आपकी ज्ञान दान के प्रति हमेशा लग्न लगी रहती है।

मैं सद्भावना पूर्वक चरण कमलो मे भाव-भीनी पुष्पाञ्जली सश्रद्धा समर्पित करती हूँ।

सन्त-जीवन

—साध्वी कमलावती

हमारा यह भारत वर्ष एक आध्यात्मिक तथा महान् देश है। इसके कण-कण मे उज्ज्वलता भरी हुई है। यह भूमि रत्न-गर्भा है। यहाँ अनेक भव्य आत्माएँ अवतरित होकर अपनी ज्ञान-गरिमा से देश को आलोकित करते हैं तथा अपने सद्गुणो की महक फैलाते हैं।

सन्त जीवन एक पुष्प के समान है। जिस प्रकार गुलाब का पुष्प काटो के बीच पैदा होता है, उसके चारो ओर काटे ही काटे रहते हैं, पर वह हँसता हुआ उन काटो को पार करके उनसे ऊपर उठता है। फिर वह हसता-खिलता कोमल गुलाव हम सभी को कितना प्यारा आल्हादजनक तथा आनन्द दायक होता है ? इसी प्रकार सन्त जीवन मे भी अनेकाअनेक काटे रूपी कठिनाइयाँ आती हैं। पर सत

हसते हुए उनका सामना करते है और साधना के पथ पर वढते हुए चले जाते हैं। वे कभी पीछे नही हटते हैं। उनका हृदय सुख के समय फूल मा कोमल होता है, और सकट के समय शैल सा कठोर, अकम्प-अडोल। सत जीवन राग, द्वेष, कषाय से विल्कुल परे होता है। वस निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर वढता रहता है। एक कवि ने कहा है—

संसार द्वेष की आग मे जलता रहा पर सन्त अपनी मस्ती मे चलता रहा।
सन्त विष को निगल करके भी सदा, ससार के लिये अमृत उगलता रहा॥

परोपकार, दया, स्नेह, मधुरता, शीतलता आदि इनके मुख्य गुण हैं। कहा है—

साधु चन्दन बावना शीतल ज्यारो अंग। लहर उतारे भुजग की देदे ज्ञान को रंग॥

★

प्रताप की प्रतिभा

—तपस्वी श्री लाभचन्द जी महाराज

भारत एक चिन्तनशील राष्ट्र है और उमकी विशिष्टता है आत्म-साधना। आत्मा परमात्मा के स्वरूप को पहिचानना, समझना। व्यग्रता और समग्रता के कारणो को देखना परखना। इस देश के कण-कण मे पवित्रता पावनता है।

यहाँ की विशिष्टता है आध्यात्मिकता! अपने जीवन को देखना, परखना, निरीक्षण तथा परीक्षण करना। इस प्रकार की महत्ता अन्य देश यूनान, यूरोप आदि ने भी प्राप्त न की। पाश्चात्य देशो मे आत्मा का जो वर्णन किया गया है वह मुख्यतया जड प्रकृति को समझने के लिए है किंतु भारत ने आत्मा को परखने के लिए जड प्रकृति का विवेचन किया।

सच्चाई तो यह है कि—भारतीय सत आत्मा और परमात्मा की खोज के लिए अनादि काल से प्रयत्नशील हैं। अगणित सतो ने उसमे सम्पूर्ण सफलताएँ भी प्राप्त की हैं।

भारत की और खासकर जैनसस्कृति की यह विशिष्टता है, सभी को साथ लेकर चलना सभी के विचारो को समझना, समन्वय करना। पाश्चात्य सस्कृतियो की तरह भारतीय दर्शनो मे मौलिक एक दूसरो का मतभेद नही है। जैन सस्कृति का मुख्य लक्ष्य है—सत्य का साक्षात्कार करना, सत्य को जीवन मे उतारना, सत्य चिन्तन करना।

भारत की शस्यश्यामला भूमि जो आध्यात्मिकता की भूमि है और रही है, उसका कारण सत कृपा, सत की तप साधना। एक सस्कृत के अनुभवी ने कहा है कि—

सत स्वत प्रकाशते, न परतो नृणाम् कदा।
आमोदो नहि कस्तूर्य्या, शपथेन विभाव्यते॥

अर्थात्—सत्पुरुषो के सद्गुण स्वय ही प्रकाशमान होते हैं। दूसरो के प्रकाश से नही। कस्तूरी की सुगन्ध शपथ दिलाकर नही बताई जाती। उसकी खुशबू उसकी महत्ता प्रगट करती है। इसी प्रकार महापुरुषो का जीवन भी सद्गुण-शीलता सदाचार की महक प्रदान करनेवाला होना है। साधना के उत्तम शिखर पर पहुचने के लिए ज्ञान, दर्शन, चारित्र की मशाले लेकर अज्ञानान्धकार को विच्छिन्न करने के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहते हैं। वे सत मार्ग मे आने वाले कष्टों की परवाह न करते हुए, मुस्काते हुए आगे कदम बढाते हुए वे अपनी मजिल प्राप्त कर लेते है। इतिहास के पृष्ठो पर अनेक नाम अमिट अकित है जैसे—सुदर्शन, श्रीपाल, महावीर गौतम, खदक आदि समुज्वल नाम प्रात स्मरणीय हैं।

सत परम्परा मे मेवाडभूषण पण्डित रत्न श्री प्रतापमल जी महाराज का जीवन भी एक कडी है। आप आदर्श, शीलसम्पन्नता की साक्षात् मूर्ति हैं। आप के जीवन मे सहिष्णुता, क्षमता मधुरता, विशिष्ट रूप मे पाई जाती हैं। आप स्पष्ट व निर्भीक हैं। आप सत्य के पक्ष मे सुदृढता से अडे रहते है। आपके जीवन की एक प्रमुख विशेषता है कि—आने वाली विकट परिस्थितियो से आप समझौता नही करते वरन् उनको सुलझाना ही जानते हैं।

आपने बाल्य-काल से जैन सत की कठिन साधना स्वीकार की। आप वीर-भूमि मेवाड मे स्थित देवगढ के निवासी है।

"महापुरुषो की जीवनी यह हमको बतलाती है।
अनुकरण कर मार्ग उनका उच्च बन सकते हैं सभी।
काल रूपी रेती पर चिन्ह वे जो तज जाते हैं।
आदर्श उनको मानकर आगन्तुक ख्याति पा जाते हैं।"

महापुरुषो का चित समृद्धि के समय कमल के समान कोमल, मक्खन के समान स्निग्ध, स्नेह युक्त सदैव हो जाता है। परन्तु आपत्ति के समय वे अपने मन को पर्वत की चट्टान की भाँति कठोर एव अचल बना लेते हैं। आप श्री के सम्पर्क मे मुझे रहने का बहुत बार अवसर मिला। आप मे साधुता सेवा-भावना आदि प्रचुर मात्रा मे पाई गई। शासनदेव आप को दीर्घायु दें ताकि ऐसे महान् नर-रत्न से जैन-समाज खूब लाभान्वित बने। इसी शुभ कामना के साथ।

मेरे आराध्य देव !

—आत्मार्थी तपस्वी श्री बसन्तीलाल जी महाराज

भगवान महावीर ने कहा है—"से कोविए जिणवयण पच्छा सूरोदए पासति चक्खूणेण"। चाहे मानव कितना भी कोविद हो, जिनवाणी की अपेक्षा अवश्य रही है। जैसे-आखे होने पर भी देखने के लिए सूर्य की अपेक्षा।

उसी प्रकार पामर प्राणी के जीवन विकास के लिए आधार चाहिए। सही दिशा-निर्देश की बहुत बडी आवश्यकता रही है। पार्थिव आँखें होने पर भी दिशा-निर्देशक के बिना अनभिज्ञ आत्माओ का एक कदम भी आगे बढना हानिकारक माना है।

भारतीय सस्कृति मे इसीलिए गुरु रूपी निर्देशक का बहुत बडा महात्म्य माना गया है। गुरु-गरिमा-महिमा के पन्ने के पन्ने लिखे गये हैं। तथापि गुरु के गुणो का चित्रण एव विश्लेषण करने मे लेखक एव कविगण असफल रहे हैं।

गुरु-महात्म्य को इस प्रकार दर्शाया है—

पिता माता-भ्राता प्रिय सहचरी सूनु निवह
सुहृत् स्वामी माद्यत्करि भट रथाश्वपरिकर
निमज्जन्त जन्तु नरककुहरे रक्षितुमल,
गुरो धर्माधर्म - प्रकटनपरात् कोऽपि न पर ॥

नरक रूपी कूप मे डूबते हुए प्राणी को धर्म-अधर्म के प्रगट करने मे तत्पर ऐसे गुरु से भिन्न अन्य पिता-माता-भाई-स्त्री-पुत्र-मित्र-स्वामी मदोन्मत्त हाथी-योद्धा रथ-घोडे और परिवार आदि कोई भी समर्थ नही है।

मोह मायावी जीवात्मा को परमात्मा पद पर आसीन करने मे गुरु का ही मुख्य हाथ रहा है। कारीगर की तरह जीवन के टेढे एव वाकेपन को निकाल कर उन्हे सीधा-सरल एव सौरभदार वनाते है ? जैसा कि—

गुरु कारीगर सारिखा, टाची वचन विचार।
पत्थर की प्रतिमा करे, पूजा लहे अपार ।।

परम श्रद्धेय मेवाड भूपण गुरुदेव श्री प्रतापमल जी मा० मा० मेरे जीवन के सर्वोपरि निर्देशक रहे है। जिनका सफल नेतृत्व मेरी साधना को विकसित करने मे पूरा सहयोगी रहा है। इस अनन्त उपकार से मुक्ति पाना मेरे जैसे साधारण शिष्य के लिए कठिन है।

'प्रताप अभिनन्दन ग्रन्थ' गुरुदेव के कमनीय कर कमलो मे जो समर्पित किया जा रहा है। यह चतुर्विध सघ के लिए गौरव का प्रतीक है। महा मनस्वी आत्माओ का वहुमान करना, अपनी सस्कृति-सभ्यता को अमर वनाना जैसा एव अपने आप को धन्य वनाना है।

विनम्र पुष्पांजलि····

—मुनि हस्तीमल जी म० 'साहित्यरत्न'

पडितवर्य मेवाडभूपण श्री प्रतापमल जी म० का दीक्षा अर्ध शताब्दी समारोह के उपलक्ष मे 'प्रताप अभिनन्दन ग्रन्थ' का प्रकाशन हो रहा है। यह सर्वथा अनुकरणीय एव प्रवुद्ध जीवी के लिए गौरव का प्रतीक है। महा मनस्वियो का अभिनन्दन करना, यह समाज की अटूट परम्परा रही है।

'जहाँ-जहाँ चरण पडे सत के, वहाँ-वहाँ मगल माल' तदनुसार आप जिस किसी प्रात-नगर एव गाव मे पधारे हैं, वहाँ आप ने भ० महावीर के 'शान्तिवाद' सदेश को प्रसारित किया है। क्षीर-नीर न्यायवत् आप मिलना एव मिलाना अच्छी तरह जानते हैं।

अपनी इस दीर्घ दीक्षा अवधि मे आपने लाखो श्रोताओ को अपनी माधुर्य पूर्ण वाणी द्वारा अभिभूत एव अभिसिंचित किया है। फलस्वरूप भावुक जन की मानसस्थली मुलायम हुई और दान शील-तप-भावो की लताएँ पल्लवित-पुष्पित हुई है।

ऐसी पवित्र विभूति के पाद पद्मो मे भक्ति भरी पुष्पाजलि समर्पित करते हुए आज मुझे अपार आनन्दानुभूति हो रही है।

★

प्रतापी व्यक्तित्व : भावांजलि की भीड़ में !

—मुनि प्रदीप कुमार 'विशारद'

परमपूज्य गुरुदेव श्री प० श्री प्रतापमल जी म० सा० के अभिनन्दन ग्रन्थ की पावन वेला मे श्रद्धा युक्त हार्दिक पुष्पाजलि ।

मेवाड भूपण, धर्म सुधाकर वालब्रह्मचारी प्रात स्मरणीय श्री श्री १००८ श्री पूज्य गुरुदेव के अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन के मगलमय अवसर पर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता और आल्हाद हो रहा है। उसे मैं शब्दो मे व्यक्त करने मे असमर्थ हू ।

सौम्यता, सरलता एव सादगी की प्रतिमूर्ति पूज्य गुरुदेव ! दीक्षा की अर्धशती पार कर चुके । इस अवधि मे जो सदुपदेश और प्रवचन पूज्यपाद ने जन मानस को दिये हैं, वे आज भी हृदय स्थल पर अकित हैं ।

अहिंसा के सन्देश को व्यापक बनाते हुए जो सघर्ष आपने किया है । उसे कभी भी विस्मृत नही किया जा सकता है ।

मैं उन समस्त विद्वद्जनो के प्रति आल्हादित हू, जिन्होने अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन मे अपना अमूल्य सहयोग दिया है !

मेरी यह हार्दिक कामना है कि गुरुदेव श्री का सदेश दिग्-दिगन्त म व्याप्त होकर इस समस्त सृष्टि को आलोकित करदे !

अपने सुदीर्घ त्यागमय तपस्वी जीवन में देश के विभिन्न अचलो की ज्ञान यात्राएँ कर पूज्य गुरुदेव ने जो ज्ञान गगा प्रवाहित की उसका निमज्जन कर विश्व-भारती अपने मुख-सौभाग्य को सराहती रहेगी । इसमे लेशमात्र भी सन्देह नही है ।

यूँ तो शताब्दियो से अद्भूत शक्तिया धरा पर अवतरित होती रही हैं, कभी भी नर रत्नो का अभाव नहीं रहा !

भारतीय नर पु गवो—नर राजाओ की साहसिकता, महानु भवता, कला-कौशलता, शासन कुशलता, अतुलित त्याग तपस्या, प्रवल पाडित्य सिन्धु सम गाभीर्यादि जैन समाज कैसे प्रदर्शित कर सकता था ? यदि श्री गुरुदेव के सम्मान मे अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन न किया होता ।

आपके तपोमय परोपकारी एव जनकल्याणकारी स्वरूप को देखते हुए, महात्मा तुलसीदास जी की ये निम्न पक्तिया आपके जीवन मे कितनी चरितार्थ होती है—

साधु चरित सुभ चरित कपासू निरस विसद गुणमय फल जासू ।
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा वन्दनीय जेहि जग जस पावा !!

और देखिये—

वदउ सन्त समान चित हित अनहित नहीं कोइ !
अजंलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगन्ध कर दोइ !!

उपर्युक्त कथन आपके उज्ज्वल त्यागमय जीवन मे कितना निकट है इसे प्रकट करने मे मेरी लेखनी असमर्थ है ।

अतएव, यदि चन्दन की लेखनी को मधु मे डूबाकर पूज्य श्री के महान कृत्यो को लिखा जाये, तो भी गुरुदेव के महान जीवन का वर्णन नही किया जा सकता है । अत इस पुनीत पावन मगलमयी वेला पर मैं साभार अपनी भक्ति पुष्पाजलि सविनय अर्पित करते हुये अपने को धन्य मानता हू ।

गौरव-गाथा

—श्री विमल मुनि जी म० के शिष्यरत्न श्री वीरेन्द्र मुनि जी म०

मवाड भूपण गुरुदेव श्री प्रतापमल जी म० के सम्मानार्थ अभिनन्दन ग्रन्थ की रूप रेखा देखते ही मेरा भावुक हृदय कुछ लिखने का साहस कर वैठा। वैसे तो गुरुदेव के सम्वन्ध मे कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक वताना है। तथापि मैं अपने भक्ति के सुमन मुनि श्री जी के चरणो मे समर्पित करता हू।

आप का जीवन गुणानुरागी रहा है। यही कारण है कि—गुण रूपी सुमनो से आप के जीवन का चप्पा-चप्पा महक रहा है। एतदर्थ आप का निर्मल यश सभी प्रातो मे परिव्याप्त है। 'परोप काराय सता विभूतय' सज्जन पुरुपो का जीवन परोपकार के लिए है। तदनुसार आप भी माधुर्य भरी वाणी द्वारा सभी नर-नारी का भला किया ही करते हैं।

मुझ पर भी आप का अकथनीय उपकार रहा है जो अविस्मरणीय रहेगा। दीक्षा सम्वन्धित विचारणा मे मेरे तात-मात एव भ्राता गण को सद्वोध प्रदान करने मे आप ने कोई कमी नही, रखी। वस्तुत आपकी महत्ती कृपा का ही यह मधुर फल है कि आज मैं साधक जीवन मे आनन्द की अनुभूति ले रहा हू।

ऐसे महामना परमोपकारी विश्व वात्सल्यनिधि वन्धुत्व भावना के सवल प्रेरक, मेवाड भूषण पडित वर्य श्री के चरणो मे भाव पुष्पाजलि स्वीकार हो।

*

ऐक्यता के प्रतीक

—श्री निर्मल कुमार लोढा

सत विश्व के लिए नवीन चेतनाओ द्वारा विश्व के जन-मानस के जीवन को विकसित करने वाले देवदूत हैं। ये अन्धकार के मार्ग की ओर भटकती हुई जनता को प्रकाश-पथ की ओर अग्रसित करने वाले प्रकाश-स्तम्भ हैं। विश्व मे अशाति, साम्प्रदायिकता, वैमनस्यता को दूर करने वाले तथा मार्ग प्रदर्शित करने वाले सत ज्ञान के अक्षय स्रोत होते हैं। अपना जीवन जन-मानस के वौद्धिक एव सर्वस्व सुखदाय की भावनाओ से पूरित होता है।

श्रद्धेय मेवाड भूपण ऐक्यता प्रेमी पण्डितरत्न श्री प्रतापमल जी महाराज साहव विश्व सत माला के एक अनमोल रत्न है। ऐक्यता, मृदुलता एव वन्धुता की जन-मानस पर अमिट छाप है। विशाल हृदय-साम्प्रदायिकता से वहुत दूर ऐक्यता हेतु जीवन एक उत्तम आदर्श है। राष्ट्र के अनेक प्रातो मे विचरण कर सामाजिक सुधार-ऐक्यता एव सर्व धर्म समन्वय की भावनाओ से जनता को जीवन पथ की ओर वढाया है।

सन् १९५१ मे आपका एव प्रर्वतक श्री हीरालालजी म० सा० का चातुर्माम देहली मे हुआ था। दिवाकर जी महाराज की प्रथम पुन्य तिथी पर आपके नेतृत्व एव प्रेरणा से एक विशाल सर्व धर्म सम्मेलन हुआ था। सर्व धर्म समन्वय के प्रतीक—ऐक्यता के अग्रदूत सन्त रत्न श्रद्धेय पण्डित श्री प्रतापमल जी महाराज साहव के सघ सेवाओ से सारा समाज प्रफुल्लित हो उठता है। गुरुदेव श्री के वहुमानार्थ आयोजित "प्रताप अभिनन्दन ग्रन्थ" का जो प्रकाशन हो रहा है वह सराहनीय प्रयत्न है।

अन्त मे वीर प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि गुरुदेव दीर्घायु होवे एव आपकी प्रेरणाऐं एव आशीर्वाद मे सघ-समाज एव राष्ट्र के अन्दर शान्ति एव "वसुधैवकुटुम्बकम्" की भावनाओ से एक दूसरे का जीवन प्रेम प्रकाश की ओर पल्लवित-विकसित होता रहे।

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से चमन मे दिदावर पैदा होता है॥

●

हार्दिक अभिनन्दन !

—मदन मुनि 'पथिक'

महापुरुषो का जन्म अपने लिये नही, विश्व, समाज और उस दलित वर्ग के लिये होता है, जो सदियो से उपेक्षित और प्रताडित है।

यह बहुत बड़े सौभाग्य की बात है कि—भारतीय तत्त्व चेतना के स्वर समय-समय पर ऐसे ही महापुरुषो के द्वारा मुखरित हुए हैं जो अपने से अधिक अन्य प्राणियो के कष्ट और पीडाओ को महत्त्व देते थे। हमारा इतिहास गवाह है कि यहाँ स्वार्थी विषय पोषक और लोलुप व्यक्तियो को कभी भी महत्त्व नही मिला, भारतीय जनमानस सद्गुणोपासक रहा, क्यो कि हमारे प्रतिनिधि महापुरुष वस्तुत सद्गुणो के साक्षात् अवतार थे।

भारतीय सस्कृति मे जैन सास्कृतिक धारा का अपना अन्यतम स्थान है। यह गर्व नही, किन्तु गौरव की बात है कि त्याग-वैराग्य के क्षेत्र मे, दान और सेवा के क्षेत्र मे जितने महापुरुष भारत को इस परम्परा ने दिये उतने सभवत अन्य धाराएँ नहीं दे सकी। भगवान महावीर से पूर्व के इतिहास को गौण भी कर दें तो भी तत्वज्ञ गौतमस्वामी, महान त्यागी जम्बू, प्रभव, श्री सुधर्मा आदि अध्यात्म साधना के सर्वोच्च शिखर को छूते हुए कई स्वर्ण कलशवत् देदीप्यमान उत्तम महापुरुषो का भव्य इतिहास हमारे पास है।

महान् क्रान्तिकारी वीर लोकाशाह, पूज्य श्री धर्मदास जी म०, पू० श्री लवजी ऋषि, पू० श्री धर्मसिंह जी, पूज्य श्री जीवराज जी म० आदि महान क्रान्तिकारी महान आत्माओ के तेजस्वी कार्य-कलापो से हमारा इतिहास सर्वदा अनुप्राणित रहा है।

इनकी उत्तरवर्ती परम्पराओ का कुछ परिचय देना भी लगभग एक ग्रन्थ रचना जितना है। जैन सास्कृतिक-धार्मिक उपवन मे यहा हजारो रग बिरगे सुन्दर पुष्प खिले हुए दिखाई देते हैं।

सौभाग्य का विषय है कि आज हम उसी महान परम्परा के एक महान् अग्रदूत का हार्दिक अभिनन्दन कर रहे हैं।

प० रत्न मधुरवक्ता श्री प्रतापमल जी म० सा० जो स्थानकवासी जैन समाज की महान् विभूति हैं। आज मानव मात्र के वरदान स्वरूप है। मुनि श्री जी का दीर्घ सयम, अविकल प्रशसनीय शासन सेवा और श्रेष्ठ साहित्य साधना अपने आप मे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि आज क्या सदियो तक अभिनन्दनीय रहेंगे।

मैं हृदय की गहराई से मुनि श्री का अभिनन्दन करता हुआ दीर्घ सयमी जीवन की शुभकामना करता हू।

एक अपराजेय व्यक्तित्व : प्रताप मुनि !

—मधुर वक्ता श्री मूलचन्द जी म०

श्रद्धेय पडित प्रवर, धर्म-सुधाकर श्री प्रतापमल जी म० के साधक जीवन की स्वर्णिम वेला मे हृदय की श्रद्धामय पुष्पाजलियाँ समर्पित हैं।

प्रकृति स्वय ही अपने साधना-पुत्र का ममतामयी शृगार कर रही है। दिशाएँ अभिनन्दन के सगीत मे थिरक रही है। जीवन का माधुर्य उमड-उमड कर निष्ठा के साथ हिलोरे ले रहा है। आपके प्रति प्रतिपल नत है। यह महका-महका वातावरण नत है। भक्ति के बोल सविनय नत हैं।

ज्ञान चेतना की स्फूर्ति आपकी स्वाभाविक विशेषताओ मे से एक है। कठिन एव गभीरतम विषयों को सरलीकरण का स्वरूप देना, आपकी कला की सिद्धि है। मुनियो एव सतियो के लिए आप वाचक गुरु की योग्यता से प्रतिष्ठित हैं। अध्यापन की अनूठी शक्ति के दर्शन आप मे प्रशसनीय रूप से होते हैं। सघर्ष की क्रूरता को मुस्कान की शोभा मे बदलना, आपसे सीखा जा सकता है। समन्वय की साक्षम्यता को आप प्रमुखता प्रदान करत हैं। आपका "मित्ती मे सव्व भूएसु" मूलमत्र है। आप "गुणिपु प्रमोद" की भावना के प्रतीक हैं।

आप कार्य गरिमा की सक्रियता की मान्यता को स्थापित करते हैं। लोकैषणा आपकी मनोभूमि को नही छू पाई है। आपके सान्निध्य मे समीपस्थ अतेवासी वर्ग एव सम्पर्क मे आगतजनो को आपकी गुरु कृपा का वरदायी सन्देश नये होश नये जोश के साथ वितरित होता रहता है। जीवन मे उत्तरोत्तर उर्ध्वमुखी एव सर्वांगीण उन्नति पथ की ओर निरन्तर अग्रसर होने की महनीय प्रेरणा हम सभी को उपलब्ध होती रहती है।

पुरानी पीढी की बुजुर्गता के होते हुए भी नयी प्रजा के उदीयमान अस्तित्व के समर्थक एव सरक्षक हैं। आप मे भविष्य के उत्तरदायित्व पुरुपत्व के दर्शन होते है। आप हमारे कोटि-कोटि प्रणाम के अधिकारी हैं।

ऐसे पूज्यनीय पडित प्रवर श्रद्धेय मुनि श्री प्रतापमल जी महाराज के रूप मे एक अपराजेय व्यक्तित्व को मेरी सर्वतोभावेन आदराजलि समर्पित हैं।

●

सर्वतोमुखी-सर्वाङ्गीण-सार्वभौमिक संत पुरुष !

—श्री अजित मुनि जी म० "निर्मल"

परम श्रद्धेयवर्य मेवाड भूपण धर्मसुधाकर पडितप्रवर श्री प्रतापमल जी म० के अभिनन्दनीय व्यक्तित्व को श्रद्धाभिभूत अनन्त-अपरिमित वन्दन-नमन !

पूज्यनीय पडित जी म० का मेरे लिए वरदायी एव स्नेह पूरित वाणी और दृष्टि का विपुल कोप मेरे बचपन से ही मुझे मुक्त रूप से प्राप्त होता रहा है। साथ ही यह भी पूर्ण विश्वास है, कि इसी प्रकार भविष्य के स्वर्णिम पथ मे भी आपके सुखद-सुहाने सबल की प्रस्तुति रहेगी। मेरा आपके प्रति

गौरवमयी श्रद्धा का मम्वोधन "पडितजी महाराज" रहता है। जो कि यह छोटा सा शब्द मुझे अत्यन्त-प्रिय है।

आपकी प्रवचन एव वार्ताकला वास्तव मे अनुपम शक्ति पूर्ण है। मैंने प्रत्यक्ष रूप से यह पाया है कि विरोधी की कटुता भी आपके सम्मुख निरस्त हो जाती है। क्योकि आपका किसी के भी प्रति अप्रिय व्यवहार रहता ही नही है। आपकी गुरु-सम्मति निश्छल एव निर्पेक्ष भाव से तत्परता रखती हैं। आप वालक से वृद्ध तक समान रूप से लोक प्रिय है।

आपका प्रत्येक शुभ एव प्रगति कार्य के प्रति वेहिचक स्वीकृति-सहयोग एक अनुकरणीय प्रयास है। आप उत्साह के स्तभ, शिक्षा के प्रकाश, सेवा के धाम, जिनवाणी के सन्देशवाहक, आध्यात्मिक चिकित्सक, धर्म के प्रभावक, जीवन के गुरु उदार विचारो के धनी, स्नेह के सागर, शिष्यत्व के पोपक, गुरुजनो के नैष्ठिक उपासक, सर्वतोमुखी-मर्वागीण-सार्वभौमिक-सन्त पुरुप, चेतना के उत्कर्प ध्रुव, साधना मगीतिका के सरगम, मौन कार्य कर, पद एव यश के निष्काम ज्योतिर्धर हैं। इस प्रकार आप मे अगणित-अप्रतिम एव वैविध्य पूर्ण विशिष्टताओ की विराटता सन्निहित है।

प्रमुदित मुख, प्रलव देहमान, वचनो मे निर्झर माधुर्य की मुस्कान, वय से प्रौढ, स्वभाव से नवजात, चमकता भाल प्रदेश, "वादिमान मर्दक गुरु" के समन्वयी शिष्य !

वस ! यही तो हैं, हमारे पडित जी महाराज का दैहिक, वाचिक एव मानसिक गुणधर्मा प्रत्यक्ष परिचय !

आपका मेरे प्रति अत्यन्त स्नेहभाव रहता है। आपने मेरी शिशुवत भावनाओ का प्राय सम्मान ही किया है। आपकी स्तरीय प्रवीणता एव अग्रसरता की सशक्तप्रेरणा मेरे लिए वरदायिनी थाती है।

मेरे 'प्रतीक गुरु' के पुण्य-पुनीत विकासमान व्यक्तित्व को मेरी सम्मानित आदराजलि सर्मापित है।

श्री प्रतापमलजी महाराज का गुणाष्टक

—प्रवर्तक मुनि श्री उदयचन्दजी म० "जैन सिद्धान्ताचार्य"

(शार्दूल विक्रीडित छंद)

श्रीमन्निर्जरमण्डल स्तुतवरे भूमण्डले शोभिते,
प्रख्याते वर भारतेऽति महति राजस्थले मण्डिते।
श्री शोभायुत मेदपाट महिते श्रीदेवदुर्गपुरे
गांधीत्यन्वय शोभितो नरवर श्री मोडिरामाभिध ॥१॥

देवताओ की मन्डली द्वारा स्तुति किये गये शोभा युक्त इस भूमण्डल पर एक प्रसिद्ध भारत वर्ष देश है, उसमे राजस्थान नामक प्रान्त है उसी प्रान्त मे शोभा एव लक्ष्मी से युक्त मेवाड नाम क्षेत्र मे देवगढ नामक नगर मे गाँधी वश के सुशोभित पुरुषो मे श्रेष्ठ श्री मोडीरामजी प्रसिद्ध हुए है।

सत्पुत्रोऽतिगुणान्वित सुसरलो द्राक्षा जनन्यात्मज
नम्रोऽतीव परोपकारनिरतो नाम्ना प्रतापाभिध
बाणे पण्णवचादि सख्यकयुते श्रीवैक्रमे वत्सरे
आश्वीनोत्तम मास सप्तमितिथौ जन्माग्रहीत्सत्तन ॥२॥

उन सु श्रावक श्री मोडीरामजी तथा सुश्राविका श्री दाखा बाई के अत्यन्त सरल स्वभाव वाले नम्र तथा परोपकारी प्रतापमलजी नाम के सुपुत्र हुए। उनका जन्म विक्रम सवत् १९६५ आश्विन महीने की सप्तमी तिथी के दिन हुआ।

माता चास्य शिशुत्वभाव समये स्वर्गं समासादिता।
तस्या मोहमयः बन्धन विधि स त्यक्तवान् सात्विक ॥
लोकस्याप्यवशिष्ट बन्धनविधौ मोहात्मकस्तत्पिता।
औदासीन्य तया च भाग्य विभवे त्यक्त्वा च त स्वर्गत ॥३॥

उनकी माता बाल्यावस्था मे ही स्वर्ग सिधार गई। इस प्रकार उनकी माताश्री का मोह मय बन्धन छूट गया। ससार मे अब उनके पिता श्री का मोहमय बन्धन ही शेप रहा था उसको भी आपने भाग्य विभव की उदासीनता के कारण शीघ्र ही छोड दिया अर्थात् उनके पिता श्री भी उनको छोड स्वर्गवासी हो गये।

बाल्येऽसौ परमा विरक्तिमगमत् साधूपदेशामृतै।
श्रीमन्नन्दसुलाल नाम मुनिना सत्सगमासाद्य स ॥
श्री कस्तूरसुधासु नाम मुनिना सच्छिक्षया शिक्षित।
पूर्वस्मिन् कृत पुण्य सचिय तया वैराग्यभाव गत ॥४॥

उन्होंने बाल्यावस्था मे साधु सतो के उपदेशामृत को पान कर वैराग्य भाव को धारण कर लिया। श्रीमान् महाराज साहेब श्री नन्दलालजी के सत्सग को प्राप्त किया तथा श्रीमान् कस्तूरचन्दजी महाराज सा० की शिक्षाओ से सुशिक्षित हो गए। इस प्रकार अपने पूर्व भव मे किये हुए पुण्य कर्मों के सचय से वैराग्य की भावना को प्राप्त किया।

नन्दा ये मुनिनन्द शुक्रायने श्रीवैक्रमे वत्सरे।
मासानामति गौरवान्वितलमे श्रीमार्गमासे सिते ॥

पूर्णे चन्द्रयुते सुपूर्णिमतिथौ ससारमुक्तव्यथित ।
श्री मन्नन्दसुलाल ज्ञान गुरुणा दीक्षाविधौ दीक्षित ।।५।।

विक्रम सवत् १९७९ मासोतम मास मृगशिर मास मे शुक्ल पक्ष मे पूर्ण चन्द्रमा से युक्त पूर्णिमा तिथि के दिन संसार से मुक्ति चाहते हुए श्रीमान ज्ञान गुरु महाराज श्री नन्दलालजी के द्वारा दीक्षा प्राप्त करली ।

सत्साहित्य सदागमादिक सदाभ्यासेन सत्पण्डित ।
सच्छास्त्रेषु महत् परिश्रमतया निष्णातवान् ज्ञानवान् ।।
स्वात्मज्ञान युतोऽपि शिक्षणविधौ प्राप्त प्रसिद्धि पराम् ।
कर्माल्यस्य सुवन्धनस्य क्षपणे ज्ञानोपदेशे शुभाम् ।।६।।

दीक्षा लेने के वाद आपने सत् साहित्य तथा आगम शास्त्रो का अभ्यास किया और उत्तम शास्त्रो के चिन्तन मे महान् परिश्रम करके निष्णात हो गये तथा ज्ञानवान् और पण्डित हो गये । आत्म-ज्ञान प्राप्त करने पर भी शिक्षा प्रदान करने मे तथा कर्म वन्धनो को क्षीण करने के निमित्त ज्ञानोपदेश करने मे वडी प्रतिष्ठा प्राप्त की ।

व्याख्याने सु च मेघमन्द्रगिरया माधुर्यभाव गत ।
लोको मन्त्र सुमुग्ध भावगमितो वक्तृत्ववैशिष्ट्यत ।।
चित्ते साधु सुभावनिष्ठसरल व्यापारवृत्त्या युत ।
जात्यादौ विषमादि भेद रहितो नैसर्गिको निष्ठित ।।७।।

महाराज श्री के व्याख्यानो मे मेघ के समान गभीर कण्ठध्वनि, मधुरता का भाव और वक्तृत्व शैली की विशिष्टता के कारण सव लोग मन्त्र-मुग्ध के समान हो जाते हैं। उनके चित्त मे साधु स्वभाव एव सरलता की वृत्ति सदा विराजमान रहती है । वे जाति आदि ऊँच नीच के भेद भाव को त्याग कर स्वाभाविक मानवोचित निष्ठा मे लीन रहते हैं ।

कीर्तिस्तस्य विशालता गतवती कारुण्यभावान्विता ।
मानुष्य सफल च तस्य समभूत् साद्गुण्य सपत्तित ।।
लोकानामुपकार कार्य करणात् पुण्यार्जने यत्नवान् ।
धर्मास्यापि समृद्धिसिद्धि सहितो जीयात्समा शास्वतम् ।।८।।

उन महाराज श्री की कीर्ति वहुत वढ गई । वे करुणा के भाव से भरे हुए हैं । उन्होने सद्गुणो की सपत्ति को प्राप्तकर इस मानव जीवन को सफल कर लिया है । वे ससार का उपकार करने के कारण सदा पुण्यो के उपार्जन मे प्रयत्न करते रहते हैं । इस प्रकार धर्म की समृद्धि एव सिद्धि से युक्त होकर वे सदा शाश्वत समय पर्यन्त जीवित रहें, यही कामना है ।

चन्द्रोदयमुनेरेषा भावना पद्य पुष्पिता ।
प्रताप कीर्ति मालेय लोकश्रेयस्करी भवेत् ।।९।।

उदयचन्द्र मुनि की यह भावना पद्यो के पुष्पो से युक्त होकर श्रीमान् प्रतापमलजी महाराज सा० की कीर्ति की माला वनाई गई है अत यह ससार का कल्याण करने वाली होवे ।

श्री प्रताप-प्रभा

—मरुधरकेशरी प्रवर्तक प० रत्न श्री मिश्रीमल जी म०

सोरठा

मिला मुजे इकवार, मरुधर सोजत रोड पै,
मैं परख्यो धर प्यार, मोती तू मेवाड रो ॥१॥

संत सेवा सश्रीक, जीवन मे की जोर री,
अरु साधना ठीक, मोती तू मेवाड रो ॥२॥

निज कर करी तैयार, शिष्य मडली सातरी।
अर्ज्यो मुजस अपार, मोती तू मेवाड रो ॥३॥

वाचक कला विज्ञान सुख मुनि से शीखी सदा,
दीवाकरिय दरम्यान, मोती तू मेवाड रो ॥४॥

प्रकटयो घर पर ताप, पिण फैल्यौ मुनि वेष मे,
सरल हृदय रो साफ, मोती तू मेवाड रो ॥५॥

रति अतिवत रमेश, मरुधर मनि हाथे चढो।
उन्नती बढै हमेश, मोती तू मेवाड रो ॥६॥

छाने रहा छमेस, चवडे अब चमक्यो मुने!
अनुग्रह् करी तूर्येश, मोती तू मेवाडरो ॥७॥

सजम रो है सार, जिनमारग उजवालजो।
उज्ज्वल रख आचर, वडशाखा ज्यो विस्तरो ॥८॥

प्रताप के प्रति

—कविरत्न श्री चन्दन मुनि

मेदपाट भूषण! गत दूषण!
शातमूर्ति मुनिराज प्रताप!
ज्यो चन्दन हरता है तन का
हरो जगत का आप त्रिताप ॥१॥

जियो और जीनें का जग को
देते हो सदेश प्रताप!
इसी भावना से कटते हैं
कोटि जन्म कृत-कारित पाप ॥२॥

सहज साधुता, हृदय सरलता
चिन्तन-मनन गहन पाया।
गुरुवर 'नन्दलाल' की पाई
सिर पर शुचि शीतल छाया ॥३॥

स्वय सयमी ही सयम से
रहने का कह सकता है।
असयमी आई विपदाए
सम से कब सह सकता है? ॥४॥

सयम और सयमी का ही
अभिनन्दन करना उत्तम।
किया गया जो सयम के हित
उत्तम कहलाएगा श्रम ॥५॥

लिया न जाता दिया न जाता
सयम सहजवृत्ति का नाम।
सहज साधुता द्वारा वश मे
हो सकता है इन्द्रिय-ग्राम ॥६॥

'चन्दन' की श्रद्धाञ्जलि स्वीकृत
करना भाव सहित भगवन्!
श्रद्धास्पद वे होते हैं जो
होते राग - रहित भगवन्!७!

श्री प्रताप अभिनंदन पञ्चकम्

—मुनि महेन्द्र कुमार 'कमल' 'काव्यतीर्थ'

'साधुसघ वरिष्ठाश्च, प्रतापमलसज्ञका ।
मेवाडभूमि मूर्धन्या द्वित्रा सन्ति महीतले ।।१।।
तेषा विद्वद्वरेण्याना, साम्प्रत ह्यभिनन्दनम् ।
विधीयते च विद्वद्भि, श्रुत्वा मोमुद्यते मन ।।२।।
नदलाल गुरुर्येषा, जैनागमविचक्षणा ।
तपस्विन कथ नस्युस्तेषा शिष्या विशेषत ।।३।।
हिन्दी गुर्जर भाषाणा सस्कृत प्राकृतस्य च ।
काव्य लेखन मर्मज्ञा मुनिश्री धरणीतले ।।४।।
मेवाड भूषणश्चायं, धर्म व्याख्यानकृद् मुनि ।
विचरन् ससुख लोके, जीव्याद्वै शरद. शतम् ।।५।।

श्रद्धा के कुछ फूल

—मुनि श्री कीर्तिचन्द्र जी महाराज "यश"

अभिनन्दन है आपका, प्रतापमल्ल महाराज ।
जैन जगत के आप जो, चमके बन कर ताज ।।
चमके बनकर ताज, धन्य है जीवन तेरा,
लेकर सयम, खूब पाप का तोडा घेरा ।
कहे "कीर्तिचन्द्र," नन्द के प्यारे नन्दन,
जुग जुग जीते, रहो, सभी करते अभिनन्दन ।।

मस्ती तेरी क्या कहूँ, ओ मेवाड सपूत ।
धन्य साधना आपकी, अहो ! जैन अवधूत ।।
अहो जैन अवधूत, निराली महिमा तेरी,
चकित समस्त ससार, देख गुण गरिमा तेरी ।
कहे "कीर्तिचन्द", नही बिल्कुल भी सस्ती,
न्योछावर कर सर्वस्व, पाई तूने यह मस्ती ।।

दर्शन आपके थे हुए, शहर आगरा माँय ।
हुए बहुत ही वर्ष पर, स्मृति रही है आय ।।
स्मृति रही है आय, भला क्या बात बताऊँ ?
देखा था जो रूप, शब्द मे कैसे लाऊँ ?
कहे "कीर्तिचन्द्र" हुआ था तन मन परसन ।
ऐसे मुनि प्रतापमल्ल जी के हैं दर्शन ।।

समर्पण करता तुम्हे, श्रद्धा के कुछ फूल ।
गुच्छ हार के मध्य मे, इन्हे न जाना भूल ।।
इन्हे न जाना भूल, नजर इन पर भी करना,
करके मेरी याद, इन्हे अञ्जलि मे भरना ।
कहे "कीर्तिचन्द्र", इसी मे मेरा तर्पण,
कर लेना स्वीकार, किये जो फूल समर्पण ।।

श्रद्धा के सुमन

—मगन मुनि 'रसिक'

(तर्ज—दिल लूटने वाले जादूगर)

गुरुदेव दयामय तेज पुञ्ज, मन मन्दिर के उजियारे हो
पद-पकज मे है विनय यही, जीवन के आप सहारे हो टेर

है नाम आपका प्रतापमल जी, पण्डित प्रवर सुहाते हो,
वाणी मे अमृत भरा हुआ, जन-मानस आप जगाते हो,
है हृदय सुकोमल मक्खन सा, समभाव सदा गुण वारे हो
गुरुवर है जैन दिवाकरजी, जो जन-जन के मन भाये थे,
भक्तो के शातिनिकेतन थे, वे जग वल्लभ कहलाये थे,
उनके ही शिष्य कहाते हो, सिर मौर सदैव हमारे हो
मेवाड देश मे नगर देवगढ, जन्म-भूमि कहलाती है,
वीरो की जननी विश्व-प्रसिद्ध, कवियो की वाणी गाती है,
जहाँ ओसवश मे गाँधी-गौत्र, पितुमात के आप दुलारे हो
उत्कृष्ट भावो से सजम लेकर, कुल को उजागर कीना है,
जीवन की प्रगति हर-क्षण मे, प्रतिभामय सुयश लीना है,
अविराम घूमकर देश-देश मे, वन गये सब के प्यारे हो
हो सन्मति-पथ के पथिक आप, सद्ज्ञान सुनानेवाले हो,
जो भूल गया है पथ अपना, पुन: राह वतानेवाले हो,
शुद्ध सयम व्रत के पालक हो षट्काया के रखवारे हो
हो ज्ञान प्रदाता धैर्यवान, मगलमय दर्शन नित पाएँ,
हो नव्य भव्य जीवन के स्वामी, गौरवमय हम गुण गाएँ,
अभिनन्दन सदा 'रसिक' चाहे, भक्तो के नयन सितारे हो

पांच-सुमन समर्पित हो !

—बसन्त कुमार बाफना, सादडी

गुरु प्रताप के चरण मे, वन्दन हो हजार।
वरदान ऐसा चाहूँ, हो जीवन-उद्धार ॥१॥

शील-सन्तोष-सिगार से, दमके भव्य सुभाल।
सुधा सरस मुख से झरे, ज्यो निशाकर तार ॥२॥

जैन धर्म उन्नायक तुम, उपकारी गुरुराज
अभिनंदन करते सभी, मिलकर जैन समाज ॥३॥

गाव-नगर मे घूमकर, किया अहिंसा प्रचार।
हिंसा-अनीति-अन्याय, का किया प्रतिकार ॥४॥

पाच सुगन्धित ये सुमन, ज्यो महाव्रत पात्र।
'वसत शिष्य' आपका पूर्ण बात यह साच ॥५॥

गुरु-गुण पुष्प

—तपस्वी श्री अभयमुनि जी महाराज

[तर्ज —कोरो काजलियो]

गुण गाऊँ मैं हर वार, गुरुवर प्यारे रे ।।टेर।।

सम्वत् उगणी सौ पैंसठ माही, आसोज महीनो सार ।।गुरु० ।।१।।
कृष्णा सातम सोमवार दिन, जन्म लियो हितकार ।।गुरु० ।।२।।
नगर देवगढ मायने, है गाधी गोत्र सुखकार ।।गुरु० ।।३।।
मात-पिता परिवार मे, छायो है हर्ष अपार ।।गुरु० ।।४।।
प्रतापमल जी नाम आपका, है प्रियकारी श्रेयकार ।।गुरु० ।।५।।
उगणीसौ गुण अस्सी मे, है मृगशिर मास उदार ।।गुरु० ।।६।।
पूज्य गुरु नन्दलाल जी, है महिमावन्त अपार ।।गुरु० ।।७।।
मन्दसौर शुभ शहर मे, लीनो है सयम भार ।।गुरु० ।।८।।
ज्ञानी ध्यानी गुणवन्ता, मैं नाम जपू हर वार ।।गुरु० ।।९।।
सहनशीलता जीवन मे, भरपूर भरी नही पार ।।गुरु० ।।१०।।
तप-जप सयम निर्मला, पाले है शुद्ध आचार ।।गुरु० ।।११।।
जुग-जुग जीवो गुरुवर मेरे, श्रद्धा पुष्प चरणार ।।गुरु० ।।१२।।
शिष्य अभय मुनि कर जोडी, करे वन्दन बारम्बार ।।गुरु० ।।१३।।

गुरु-भक्ति-गीत

—महासती प्रभावती जी, सुशोला कुंवर जी

(तर्ज—काची रे काची रे प्रीति मेरी काची)

आओ रे, आओ रे शीष झुकाओ प्रताप के गुण गाओ

१ सवत पैंसठ मे जन्म लिया,
'देवगढ' को गुरुवर ने पावन किया,
आश्विन का महिना, जन्मे नगीना सप्तम का शुभ वार रे एए आओ

२. परम प्रतापी गुरु 'नन्द' कीना
मदसौर नव्यासी मे सयम लीना
'मोडीराम' के लाला, 'दाखा' के व्हाला, गाधी गौत्र उजवाल रे एए आओ

३. तप-तेज किरणें दमक रही
सौम्य सी सूरत चमक रही
ज्ञान के हैं दरिया, गुणो से भरिया, प्रेम का पुञ्ज विशाल रे एए. आओ

४ मुनि मडल मे गुरु सोहे जैसे
तारो मे चन्दा सोहे ऐसे
आर्या-प्रतिभा" और "सुशीला" भक्ति सुमन चढाएं रे एए आओ

प्रताप-गुण-इक्कीसी

—मुनि रमेश—सिद्धातआचार्य

वीरभूमि मेवाड मे 'देवगढ' सुविख्यात।
गाँधि गोत ओसवश का खिला पुण्य प्रभात ॥१॥

'मोडिराम' श्रीमान्‌जी माँ 'दाखा' की गोद।
'प्रताप' पुत्र प्रगट हुआ छाया मोद-प्रमोद ॥२॥

वालवये पितु-मात का पडा दु:खद वियोग।
स्थिति जान ससार की, किया न कुछ भी शोक ॥३॥

फिर भी हताश हुए नही भारी सहा अघात।
होनहार विरवान के होत चीकने पात ॥४॥

मधुमय शिशु जीवन मे थे धार्मिक सस्कार।
वे दिन-दिन विकसित हुए ज्यो सुधा की धार ॥५॥

पाकर के सुनिमित्त को छेद मोह का जाल।
लघु अवस्था देखता कैसा किया कमाल ॥६॥

ज्ञान चक्षु तत्क्षण खुले जागा आतम राम।
वादीमान मर्दन गुरु 'नन्दलाल' सुख धाम ॥७॥

वैराग्य से परिपूर्ण हो, सयम लिया सुखकार।
गुरु के चरण सरोज मे चित्त दिया उस वार ॥८॥

अध्ययनाध्यापन मे लगे प्रमाद आलस छोड।
ज्ञान-क्रिया के मेल से दिया जीवन को मोड़ ॥९॥

विनय-विवेक-विनम्रता हुई जीवन के सग।
गुरु नन्द प्रसन्न हुए रग दिया पूर्ण रग ॥१०॥

हिंदी-प्राकृत-सस्कृत गुजराती इगलीश।
वहु भाषज्ञ तुम वने फला गुरु आशीश ॥११॥

समता ऋजुता सरलता सेवा मे अगवान।
निर्भीक और निडरता धैर्यवान गुणखान ॥१२॥

स्नेह सगठन सहिष्णुता हुआ यहाँ पर मेल।
समन्वय के तुम धनी शौर्य की वढती वेल ॥१३॥

समस्या सुलझाइ सदा तुम हो कुशल प्रवीन।
ओजयुक्त वाणी प्रवल हो श्रोता लवलीन ॥१४॥

दु:ख मे घवराये नही कभी न सुख मे गर्व।
गुरु के जीवन मे सदा रहा है मगल पर्व ॥१५॥

प्रतिकूल वातावरण मे, न भूले क्षमा धर्म।
वास्तव मे जाना गुरु साधुता का सुमर्म ॥१६॥

सदा गुरु के चेहरे पे खिलता देखा वसत।
अवश्य करोगे गुरु तुम्ही कर्मो का वस-अत ॥१७॥

सम्पदा मे फूले सदा, फिर भी वाद से दूर।
नीर-नीरज न्यायवत् निर्लेप निर्मल पूर ॥१८॥

शुद्ध साधना के धनी, विशद क्रिया सुज्ञान।
पुण्याई बहु वढ रही, ज्यो, प्रभात का भान ॥१६॥

सुखमयी आचार पक्ष, विचार भी उत्तग।
व्यवहार पवित्र है सदा, परम आप का ढग ॥२०॥

गुणी गुरु प्रताप का, प्रगटे पग-पग तूर।
विद्या विनय विवेक से, 'रमेश' रहे भरपूर ॥२१॥

वंदना हो स्वीकार...!

—रग मुनि जी महाराज

मुक्ति मार्ग की साधना मे निशदिन सलग्न,
निर्वद्य सयम पालते ज्ञान ध्यान निर्विघ्न।
पद विहार किया आपने फिरे हजारो कोस,
ममता तन की त्यागकर सहन किये कई रोष।

प्रसन्न वदन मुनि नित्य रहे नही तनिक अभिमान,
तारण तिरण जहाज है शात-दात धृतिमान।
लक्ष लक्ष तव चरण मे वन्दन हो स्वीकार,
जीवन दीर्घायु बनें "रगमुनि" उद्‌गार।

गुरु-गुण गरिमा

—अभय मुनि जी महाराज

(तर्ज—जय वोलो)

जय वोलो प्रताप गुरु ज्ञानी की,
सम दम के शुभ ध्यानी की ॥टेर॥

गुरु 'देवगढ' मे जन्म लिया।
गुरु ओसवश उज्ज्वल किया।
पिता 'मोडीराम' गुण खानी की ॥१॥

असार ससार को जाना है।
त्याग वैराग्य शुभ माना है॥
सयमपथ के सुखदानी की ॥२॥

ये शात गुण रख वाले है।
ये मधुर बोलने वाले हैं॥
वोलो रत्न त्रय के स्वाभिमानी की ॥३॥

दर्शन कर कलिमल धो डालो।
आज्ञा इनकी मन से पालो॥
इस प्रेमामृत भरी वाणी की ॥४॥

'देवगढ' मे चौमासा ठाया है।
तीन ठाणा सु यहाँ आया है॥
जय जय हुई जिनवाणी की ॥५॥

'अभयमुनि' गुण गाता है।
घर घर मे वरती साता है॥
शिव-सुख सूरत मस्तानी की ॥६॥

वंदन-शत-शतवार

—महासती विजय कुंवर जी

अभिनन्दन प्रताप गुरुका करती हर्षित हो शतवार।
सुजीवन की गौरव गाथा से चमक रहा जिनका दीदार॥
राजस्थान मेवाड देश की, देवगढ है भूमि प्यारी।
मोडीराम जी दाँखा बाई की, कुक्षि गुरु तुमने धारी॥
आश्विन कृष्णा सातम तिथि अरु प्यारा था वह दिन बुधवार॥१॥
पन्द्रह वर्ष की आयु मे ही, तुमने गुरु बनाया।
वादीमान' मुनि नन्दलाल जी नाम से ख्याति पाया।
मन्दसौर मार्गशीर्ष पूर्णिमा का भव्य दिवस सुखकार॥२॥
अध्ययन आपका गहन गम्भीर, व समता रस मे है भर पूर।
सस्कृत-प्राकृत हिन्दी भाषा का, ज्ञान आपको है भरपूर॥
स्यादवाद से ओत-प्रोत वाणी मीठी है रस धार॥३॥
मैत्री की गगा ले गुरु जन-जन की प्यास बुझाते।
जो भी आपके पास मे आते, ककर से शकर बन जाते॥
'प्रताप, प्रतापी बनो यही वस प्रेरित करता है नर नार॥४॥

यशोगान

—राजेन्द्रमुनि जी म० "शास्त्री"

गुरु का गुण गाले गाले रे मानव जीवन ज्योति जगाले रे॥टेर॥
देवगढ नगरी मे जन्मे प्रताप गुरु जी सुहाया रे।
मोडीराम जी दाखा बाई के तुम जाया रे॥१॥
सवत् गुण्यासी मन्दसौर नगर मे सयम को अपनाया रे।
वाद कोविद गुरु नन्दलाल जी का शरणा पाया रे॥२॥
सस्कृत, प्राकृत हिन्दी का अभ्यास गुरु ने वढाया रे।
कुछ ही दिनो मे गुरु सेवा से ज्ञान पाया रे॥३॥
मगलकारी दर्शन गुरु का जो करता सुख पाता रे।
पावन कर्ता अपने तन को शिव सौख्य मनाता रे॥४॥
सादा जीवन रखते गुरुवर प्रेम का पाठ पढाते रे।
सत्य-शिव विचार से गुरु कदम वढाते रे॥५॥
सरल, सतोषी, सेवाभावी सद्वक्ता सुविचारी रे।
सदा शास्त्र मे रत रहते हैं गुण भण्डारी रे॥५॥
गुरु ज्ञान के दाता हैं ये महान् जगत् के दयालु रे।
सब सतो के हृदय हार है वडे कृपालु रे॥७॥
मुझे गुरु ने निहाल कीना सयम का पद दीना रे।
अमूल्य रत्न त्रय द करके जग-यश लीना रे॥८॥
रविवार को सन् वहत्तर मे प्रेम से भजन बनाया रे।
श्री गोडा मे राजेन्द्र मुनि ने शुभ दिन गाया रे॥९॥

वंदनांजलि-पंचक

—श्री सुरेश मुनि जी म० 'प्रियदर्शी'

सौम्य-आकृति शात प्रकृति महर्षि वर उदार है,
महा-उपकारी करुणा धारी, भारी क्षमा भण्डार।
सकल मनोरथ पूरक सुर तरु अभीष्ट के दातार हैं,
प्रताप गुरु के चरण नमता मिटे कर्म की मार है ॥१॥

अमृतमय है वाणी, गुरु की जो सुने एक बार है,
अघ-अधोगति दूर जावे पावे सुख अपार है।
सन्मार्ग उसको शीघ्र मिलता न रुले ससार है,
प्रताप गुरु के चरण नमता मिटे कर्म की मार है ॥२॥

सुन्दर शिक्षा स्नेह-सगठन की देते हर वार है,
दूध मिश्री-सा मेल करन मे कुशल कलाकार है।
शात मुद्रा से निर्मल निर्झर की वहती शीतल धार है,
प्रताप गुरु के चरण नमता मिटे कर्म की मार है ॥३॥

हृदय जिनका शम-दम पूरित मधुर गिरा रस धार है,
परहित साधक निरभिमानी भद्र प्रकृति के लाल है।
श्रमण सघ के हित साधक तेरा अमल आचार है,
प्रताप गुरु के चरण नमता मिटे कर्म की मार है ॥४॥

छ काय के प्रतिपालक गुरुवर! आज मैं तुमको नमूँ,
रत्न त्रय के आराधक स्वामी! आज मै तुमको नमूँ।
पालक-उद्धारक और तारक तू ही मम आधार है,
प्रताप गुरु के चरण नमता मिटे कर्म की मार है ॥५॥

मेरी वंदना स्वीकार हो...!

—विजय मुनि जी "विशारद"

[तर्ज   जरा सामने तो   ]

जरा तुमको बताऊँ मैं भैया प्रताप गुरु हमारे सिरताज है।
जिनके चरणो मे सीश झुकाओ गुण गाओ सभी मुनि आज रे ॥टेर॥

देवगढ नगरी मे जन्मे गाँधी गोत्र पावन किया।
मोडीराम जी पिता कहाये दाखा बाई ने जन्म दिया ॥
क्या कहूँ जीवन की महिमा सारी महक सुगन्ध का राज है ॥१॥

सवत् उन्नीसौ पैसठ मे प्रताप गुरु ने जन्म लिया।
पन्द्रह वर्ष की वय मे आये पावन गुरु ने चरण दिया ॥
वादोमानमर्दक नद गुरु थे जो महान् प्रतिभा के साज है ॥२॥

शिष्यरत्न वसत मुनि जी जिनकी महिमा सब जाने।
मधुर वक्ता राजेन्द्र मुनिवर सिद्धान्त शास्त्री बखाने ॥
गुरु नाम से सब सुख राज है और सफल होय आवाज है ॥३॥

सिद्धान्ताचार्य रमेश मुनि जी कवि लेखक वक्ता पाये।
प्रियदर्शी श्री सुरेश मुनि जी जीवन सुधारक कहलाये ॥
मोहनमुनि भी तपस्या करते ये पूरे तपस्वीराज है ॥४॥

विद्याभ्यासी नरेन्द्र मुनि जी अभयमुनि सेवा भावी।
आत्मार्थी है मन्ना मुनि जी बसन्त मुनि है समभावी ॥
प्रकाश मुनि भी गुरु सेवा अरु विद्या मे रत ये आज है। ५॥

सुदर्शन अरु महेन्द्र मुनिवर लघु शिष्य ये कहलाये।
कान्ति मुनि भी सेवा मे रत ज्ञान गुरु से यह पाये ॥
मुनि गुणियो की माला चमके मही पर आज है ॥६॥

प्रताप गुरु के शिष्य सभी ये एक-एक से बड भागी।
महिमा इनकी कितनी गायें सबकी किस्मत ही जागी ॥
'विजय" माला सभी मिल पाओ संतोष सरल मुनिराज है ॥७॥

गुरु-गुण-माला

[तर्ज —सुनो सुनो ऐ दुनियाँवालो]

—नरेन्द्रमुनि जी 'विशारद'

सुनो सुनो ए भवी जीवो तुम ! महापुरुष की अमर कहानी।
प्रताप मुनि है नाम गुरु का है ज्ञानी अरु निर्मानी ॥टेर॥

राजस्थान मेवाड देश मे देवगढ है सुन्दर है स्थान।
सेठ मोडीराम जी रहते सकल्प जिनके थे महान् ॥
सम्वत् उनीस सौ पैसठ साल मे गुरुदेव ने जन्म लिया।
मातु श्री दाखा ने शुभ प्रतापचन्द यह नाम दिया॥
बाल्यकाल के कुछ दिन बीते मात-पिता की दूरी हुई।
वाद कोविद नन्द गुरुवर प्रतापचन्द को भेट हुई॥
झलक रही थी मुख पर तप-तेज-त्याग की मस्तानी ॥१॥

दर्शन करके हर्षित हुए स्नेह भरा उपदेश सुना।
आत्म-बोध हुआ जागृत तब गुरु को अपना सर्वस्व चुना॥
परिवार जन से आज्ञा माँगी सयम पथ अपनाऊँगा।
सत्य धर्म का शखनाद कर सोई सृष्टि जगाऊँगा॥
देव दुर्लभ देह पाकर निरर्थक नही गवाऊँगा।
आत्मा से परमात्मा बनने का मुख्य लक्ष्य अपनाऊँगा॥
खाने पीने और मौज करने मे नही खोऊँ जिन्दगानी ॥२॥

अति प्रेम से परिवारजन प्रतापचन्द को समझाया।
किन्तु वैरागी वीर प्रताप ने उनकी बातो को न अपनाया॥
रहे अडिग अपने निश्चय पर उनको ऐसा कहते है।
सुख साधन है धर्माराधन क्यो अन्तराय देते है॥
सच्चे मित्र का यह अभिप्राय सहधर्म मय जीवन जीने का।
ठान लिया है मैंने मन मे त्यागमय जीवन विताने का॥
सम्यग्-ज्ञान-दर्शन अरु चरित्र है शिव सुख की खानी ॥३॥

इस तरह सबको समझाकर मन्दसौर नगरे जोग लिया।
न्याति-गोति अरु अन्य से मुख अपना मोड लिया॥
अल्प समय मे सस्कृत प्राकृत हिन्दी का अध्ययन किया।
ज्ञान बढा त्यो गुरु गभीर हुए शासन को चमका दिया॥
सेवा भावी है आप पूरे शीतल प्रकृति के साधक है।
समता सागर भवी-तारक क्षमा के आराधक है॥
देखो ! देखो ! दीप रहे है 'नरेन्द्र मुनि' ये गुरु ज्ञानी ॥४॥

शत-शत-वन्दना...

(तर्ज—देख तेरे ससार)

—विद्यार्थी श्रीकान्ति मुनि जी म०

गुण रत्नो के सागर गुरुवर प्रतापचन्द महाराज,
शत शत वन्दन होवे आज।
तारक उद्धारक पारक मुनिवर और धर्म जहाज,
शत शत वन्दन होवे आज ॥टेर॥

शान्त सुरत है मोहनगारी, शील तेज से दमकती भारी।
ज्ञान दान के हैं भण्डारी, साधना तुम्हारी है सुखकारी ॥
तव चरणो को जिसने भेंटा सुधरे उसके काज ॥१॥

वाणी आपकी ताप बुझाती, जन्म मरण का वेग मिटाती।
अधोगति दूर हटाती, संसार सागर से पार पहुँचाती ॥
पुनर्जन्म का चक्कर मिटे मिले मुक्ति का राज ॥२॥

दीन दुखी के तुम हो त्राता, शीघ्र बनो मुक्ति के दाता।
शिष्य काति मुनि गुण तव गाता, चरण सेवा सदा मैं चाहता ॥
कृपा किरण से सयम मेरा फले फूले गुरु राज ॥३॥

महिमा अपार है!

[तर्ज—जिया वेकरार है]

—आत्मार्थी मुनि श्री मन्नालाल जी म०

गुरु गुण भण्डार है, शासन के शृगार है
गुरु चरण के शरण की महिमा अपार है ॥टेर॥

ओ स्याद्वाद युत वाणी मुख से मानो अमृत बरखे जी।
सुन सुन करके भवि भावुक जन-मन अति हरखे जी ॥१॥

ओ लघुवय मे नन्दीश्वर गुरु के चरण मे दीक्षा धारी जी।
रवि-शशि सम दीप रहे है प्रताप जिनका भारी जी ॥२॥

ओ त्वमेव माता त्वमेव पिता त्वमेव भव सिधु सेतु जी।
त्वमेव द्रष्टा त्वमेव स्रष्टा त्वमेव मोक्ष का हेतु जी ॥३॥

ओ करुणानिधि कृपा करके दीजो आतमा तारी जी।
चौरासी का भटका-भटका दीजो शीघ्र निवारी जी ॥४॥

ओ मन्नामुनि भक्ति भाव युत गुरुवर के गुण गावे जी।
गुरु चरण से मगल हो यह भाव सदा ही भावे जी ॥५॥

गुरु-महिमा

(तर्ज—ख्याल की)

—श्री प्रकाश मुनि जी म० 'विशारद'

गुरु प्रतापमल जी, किस विधि मैं गाऊँ महिमा आपकी ॥टेर॥

देवगढ है बहुत सुहाना वसे जहाँ धर्मी लोग।
श्रावक जैनी वहुत वहाँ पर अच्छा मिला सुयोग ॥१॥

मोडीराम जी नयन सितारे माता दाखाँवाई।
ओसवश मे जन्म लियो है देवगढ मे आई ॥२॥

वादीमान गुरु 'नन्दलाल जी' पूज्यराज पधारे।
आनन्द छाया सारे शहर मे भाग्य सभी के न्यारे ॥३॥

विशाल नेत्र, भुजा प्रवल थी चेहरा वहुत चमकता।
समता भाव मे रमण करते भाग्य सभी का दमकता ॥४॥

ज्ञान भानु थे स्पष्टवक्ता चारित्र जिनका सवाया।
सरल भद्र, शात-स्वभावी नही, जीवन मे माया ॥५॥

स्याद्वाद शैली के वेत्ता व्याख्यान उनका प्यारा।
ऐसे नन्द गुरु जी पधारे चमका भाग्य सितारा ॥६॥

वैराग्यमय उपदेश सुनके हृदय प्रताप का भीना।
सयम लेने का तव आपने दृढ निश्चय कर लीना ॥७॥

सम्वत् उन्नीसौ साल गुण्यासी दीक्षा समय शुभ आया।
मन्दसौर (दशपुर) शहर का देखो चमका पुण्य सवाया ॥८॥

उच्च भाव से दीक्षा लीनी ज्ञान ध्यान भी कीना।
गुरुवर की सेवा वहु करके यश आपने लीना ॥९॥

गाँव-गाँव व नगर-नगर मे धर्म का ठाठ लगाया।
धर्मोपदेश के द्वारा आप ने कई शिष्य वनाया ॥१०॥

प्रसन्न हृदय से रहते हरदम गुरुदेव उपकारी।
स्नेह सगठन समता की वस त्रिवेणी प्रसारी ॥११॥

शिष्य रत्न है वहुत आपके एक-एक वड भागी।
व्याख्यानी व त्यागी वैरागी शात सरल सौभागी ॥१२॥

शात-दात यह सरोज सुहावे गुरु दर्शन मन भावे।
परम प्रतापी सत रत्न के 'प्रकाश मुनि' गुण गावे ॥१३॥

श्रद्धा से नत है.... !

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

श्री प्रताप मुनिवर का मजुल है व्यक्तित्व विशाल,
जिसके प्रति श्रद्धा से नत है विश्व मनुज का भाल।

जैनधर्म मे नही जन्म का, किन्तु कर्म का स्थान,
अपने प्रबल पराक्रम से बनता मानव भगवान।

साधारण से सत असाधारण तुम बने महान्,
बने बिंदु से सिंधु, बीज से शतशाखी फलवान।

अभिनन्दन हे सत ! धरा पर जीओ तुम चिरकाल।
श्री प्रताप मुनिवर का मजुल है व्यक्तित्व विशाल !

विद्या, विनय, विवेक विमलता जीवन मे साकार,
शुचिता, सत्य, सरलता मन की निर्मल है आचार !
प्रतिपल प्रतिपद प्रतिभा का आलोक धरापर निखरे,
अन्तर की निर्वेद-सुधा का रस धरती पर प्रसरे !
ज्योतिर्मय हो बनो शतायु ! वरो, विजय वरमाल,
श्री प्रताप मुनिवर का मजुल है व्यक्तित्व विशाल !

जल प्रवाह की भाँति तुम्हारा जीवन है गतिमान।
दीपक की ज्यो जन-हित जलकर रहता ज्योतिर्मान।
श्रेष्ठ-सुमन की भाति विश्व को करता सौरभ दान।
दिनकर की ज्यो अग-जग मे तुम लाते स्वर्ण विहान।
गमक रहा, समता-उपवन मे शम-रस भरा रसाल।
श्री प्रताप मुनिवर का मजुल है व्यक्तित्व विशा।

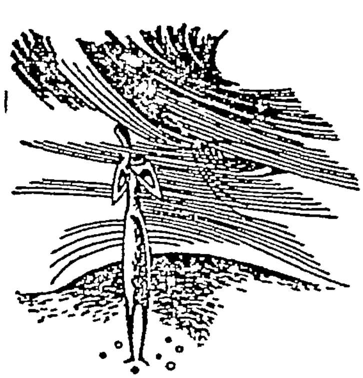

प्रवचन पंखुड़ियां

१. जीने की कला

गौतमकुलक नामक ग्रन्थ में लिखा है—"सव्वकला धम्मकला जिणेई" अर्थात् सर्व कलाओ मे धर्म-कलात्मक जीवन श्लाघनीय माना है। किन्तु आज विपरीत प्रवाह वह रहा है। जहाँ-तहाँ आज मानव समाज अनैतिक एव अधर्म साधनो के सहारे जीवन यापन करना चाहता है। प्रत्येक वर्ग की आज यही शोचनीय स्थिति परिलक्षित हो रही है। जहाँ स्वर्गीय सुखो का निर्माण करना था, जहाँ धर्म-सस्कृति सम्पदा से जीवन को सज्जित करना था वहाँ गहराई से पर्यवेक्षण किया जाता है तो हमे विपरीत वातावरण दिखाई देता है। अतएव वर्तमान मे गुरु प्रवर का "जीने की कला" नामक प्रवचन इसलिए प्रवाहित हुआ है। प्रत्येक पाठक वर्ग के लिए पठनीय एव मननीय है।

—सम्पादक]

प्यारे सज्जनो !

कलाओ का जीवन में महत्व !

आज के प्रवचन का विषय है—"जीने की कला" इस शीर्षक मे जीवन का बहुत बडा समाधान एव रहस्य छुपा हुआ है। विचित्रता से परिपूर्ण दृश्यमान एव अदृश्यमान ससार सचमुच ही नाट्य-गृह का प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करता है। इसकी आश्चर्यजनक लीला की सर्वोपरि ज्ञानानुभूति सवज्ञ के अतिरिक्त और किसी अल्पज्ञ को हुआ नही करती है। कारण यह कि—जगतीतल की परिधि असख्यात योजन मे परिव्याप्त है जिसके अगाध अचल मे असख्यात तारे, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य-चन्द्र विस्तृत योजनो पर्यंत परिव्याप्त उल्का, पहाड, पर्वत, नदी-नाले, अगणित वृक्षावलियाँ एव देव-दानव-मानव-पशु-पक्षी सभी निवास करते हैं। विविध विषमता से भरे-पूरे ससार मे जीवन नैया सुरक्षित कैसे रहे ? जीवन उत्थान की राह कौनसी एव अपना समुचित सुन्दर सुकलामय जीवन कैसे बीताया जाय ? आदि-आदि ज्वलन प्रश्न आज के नही अनादि के हैं। कल के नहीं, पलपल विचारणीय एव अन्वेषणीय रहे है। ऐसे तो जैनदर्शन एव इतर ग्रन्थो मे बहत्तर कलाओ का सागोपाग वर्णन देखने को मिलता है। जिनमे जीने की कला भी अपना अद्वितीय महत्व रखती है—

कला बहत्तर सीखिये तामे दो सरदार
एक पेट आजीविका दूजी जन्म सुधार ॥

जीना कैसे ? अर्थात् ससार मे रहना कैसे ? आप मन-ही-मन विचारो मे डूब रहे होंगे कि क्या यह भी कोई प्रश्न है ? अवश्यमेव। जिन नर-नारियो को ससार रूपी घोसले मे रहना नही आया, अथवा रहने की कला मे जो सर्वथा अनभिज्ञ रहे हैं। ऐसे मानव आकृति से भले मानव के वशज हो परन्तु प्रकृति की अपेक्षा पशु पक्षी की श्रेणी मे माने जाते है। क्योकि धार्मिक जीवन के पहले व्यावहारिक और नैतिक जीवन जीया जाता है। तत्पश्चात् धार्मिक जीवन का श्री गणेश होता है। नीतिशतक मे भर्तृहरि ने कहा है—

मालिक आया और एक वक्त उसने सरसरी निगाह से जमा-खर्च के वही-खाते देखे तो कम्पनी के दस हजार रुपये फर्म मे जमा पाये गये।

मुनीम से पूछा गया—आपने हिसाब कैसे कर दिया ? जबकि कम्पनी के दस हजार रुपये फर्म मे जमा हैं। अस्तु आप शीघ्र जाकर कम्पनी के मेनेजर को ये रुपये दे आवें।

मुनीम—फर्म और कम्पनी का खाता पूरा तो हो चुका है। इसलिए दस हजार की फर्म मे वचत मान कर रहने दो।

नही मुनीम जी ! मुफ्त का धन मैं अपनी फर्म मे नही रख सकता। भूल को सुधारना अपना काम है। अपनी उज्ज्वल परम्परा सत्य पर आधारित है। ७४॥ का अंक प्रामाणिकता का ही प्रतीक माना है। जैसा कि कहा है—

सातो कहे सत राखजो लक्ष्मी चौगुनी होय।
सुख दुःख रेखा कर्म की टाली टले न कोय॥

मुनीम—मैं तो नही जा सकता, अगर साहव विगड जाय तो कौन निपटेगा ?

श्रीमन्त स्वय थैली मे रुपये लेकर पहुचे। टेवल पर रखकर सारी स्थिति कह सुनाई। श्रीमन्त की प्रामाणिकता पर मेनेजर अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह वोला—सेठ ! दूसरा विश्वयुद्ध होने वाला है। इसलिए रंग महगा होने वाला है अतः उसकी खरीदी कर लो ! कहते हैं कि अंग्रेज अधिकारी के कहानुसार उसने रंग खरीद लिया, जिसमे उनको लगभग चालीस लाख का नफा हुआ। कहाँ दस हजार, और कहाँ चालीस लाख। यदि नैतिक जीवन न होता तो कहिए उन्हे ऐसा सुनहरा अवसर मिलता ? इसलिए जीवन मे प्रामाणिकता होनी चाहिए। कवि का कथन है कि—

अन्यायी वनकर कभी दो न किसी को कष्ट।
कर्त्तव्य नीति मे रत रहो कर दो हिंसा नष्ट॥

इसीप्रकार सरकारी कर्मचारी वर्ग को और किसान वर्ग को भी अपने कर्त्तव्यो का ज्ञान होना चाहिए। आज पर्याप्त मात्रा मे सभी कर्मचारी वर्ग मे रिश्वतखोरी पनप रही है। यह दुहरा जीवन, जनता एव सरकार के साथ विश्वासघात जैसा है। इससे राष्ट्र का वहुत वडा अहित हो रहा है। भ्रष्टाचार, अन्याय को वढावा मिलता है। भ्रष्टाचार को वढावा देने का मतलव है—जान बूझ कर समाज एव राष्ट्र को अधःपतन मे घसीटने जैसा है। कवि की वाणी अक्षरशः सत्य वोल रही है—

न्यायालय मे एक भाव से गीले-सूखे सब जलते हैं।
रिश्वत खा-खाकर अधिकारी न्याय नाम पर पलते है॥

—उपाध्याय अमरमुनि

वस्तुतः भ्रष्टाचार को घटाने का यही प्रशस्त मार्ग है कि—रिश्वतखोरी, खाना और खिलाना वन्द करना चाहिए तभी पूर्णतः कर्मचारी के जीवन मे प्रामाणिकता फैलेगी तभी वफादारी मानी जायेगी।

किसानवर्ग मे भी आज हम देखते हैं कि—शहरी जीवन का अनुकरण हो रहा है। यह कैसे ? सुनिये—पहले किसान का जीवन सीधा-सादा, सरल-माया, छल-प्रपच से रहित होता था। आज उनके अन्तर्जीवन मे भी चापलूसी, निष्ठुरता कठोरता एव मायावी प्रवृत्तियाँ चालू हैं। मुझे एक वात

याद आगई। मैं सन्त मण्डली सहित रामपुरा से मन्दसौर की तरफ आ रहा था। मार्ग मे एक कृपक (किसान) मिला।

मैंने पूछा—क्यो भक्त! आज कल क्या धधा करते हो? उसने उत्तर दिया—महाराज! मैं आपके सामने झूठ नही बोलूंगा। मैं हमेशा घी के व्यापार मे तीन रुपये कमाता हू।

मैंने फिर पूछा—यह कैसे?

उसने कहा—डालडा पशु को खिलाता हू मक्खन, के साथ-साथ वह भी मक्खन बन जाता है, गर्म करके असली के भाव मे बेच देता हूँ। ग्राहक असली मानकर ले लेते है।

क्या व्यापारियो (ग्राहक) को पत्ता नही लगता असली नकली का?

नहीं गुरु महाराज! वे लोग सूघते हैं, सूघने मे तो असली जैसी ही गध आती है। घी डबल हो जाता है, तीन के छ रुपये हो जाते हैं अत' तीन का लाभ कमा लेता हू।

भक्त! तुम्हे ऐसा नही करना चाहिए, यह तो उनके साथ विश्वास घात हुआ न?

हाँ गुरुजी! ऐसा करना महा पाप है किन्तु मन नही मानता। महगाई अधिक वढी हुई है, इसलिए ऐसा करना पडता है।

कहने का मतलब यह है कि—उनके जीवन मे कपटाई-चापलूसी घर जमा बैठी। और ऐसे कार्य करने लगे, यह शहरी जीवन की देन है।

अमृत सा मीठा जीवन जीयें —

मैं तो यही मानता हू कि—आज के युग मे ऐसे भी मानव हैं, जिनको धर्ममय जीना आता है। बहुसख्यक मानव तो ऐसे हैं—जिनके भाग्य मे अद्यावधि सही तौर-तरीको से रहने की कला का उदय ही नही हुआ। कतिपय मानवो के कर्ण-कुहरो तक ये शब्द पहुचे अवश्य है। किन्तु अन्तर्हृदय तक नही। ससारी समस्त आत्माओ को भी समार मे रहना है तो मीठा जीवन जीना चाहिए। मीठे जीवन का मतलव यह नहीं कि उसमे शक्कर-गुड अथवा मीठा पदार्थ अधिक मात्रा मे खा करके मीठा बना जाय? नही नही! जीवन में सरलता, दान, दया एव न्यून कपाय वृत्ति, मैत्री भावना, सेवा-सहानुभूति, निर्लोभिता आदि गुणो की वृद्धि होनी चाहिए। महापुरुपो का जीवन जव ससार मे रहता है तव समस्त प्राणियो के प्रति अमृत की धारा वहाने वाला होता है। भ० तीर्थंकरो के समवशरण मे सिंह और वकरी आसपास बैठे रहते हैं। यह तीर्थंकरो के अमृतमय जीवन-अतिशय का महत् प्रभाव है। रघुवश महाकाव्य के निर्माता कवि कालिदास ने रघुवश के दूसरे सर्ग मे लिखा है—जव मर्यादापुरुपोत्तम राम के चरण सरोज वन मे पहुचे तो वहाँ का उग्र वातावरण विना वृष्टि के ही शात हो गया। अनायास वृक्ष, लता, गुल्म, गुच्छे सभी फूलो-पत्तो से लहलहाने लग गये। सभी जीव-जन्तु वैर-विरोध-द्वेप-क्लेश को भूलकर पारस्परिक स्नेह सरिता मे डुबकियाँ लेने लग गये। इस प्रकार सर्वत्र जगल मे मानो शाति का साम्राज्य छा गया था।

> शशाम वृष्ट्याऽपि विना दावाग्निरासीद् विशेषा फल पुष्पवृद्धि।
> ऊनं न सत्वेषु अधिको ववाधे, तस्मिन् वने गोप्तरि गाहमाने॥
>
> —रघुवश महाकाव्य

ऐसा क्यो? इसीलिये कि—उनके जीवन मे स्वर्गीय सुपमा का साम्राज्य था। तदनुसार वाहर भी वैसी ही प्रतिछाया अवश्य पडती है। हालाकि—प्रत्येक ससारी कोई साधु नहीं वन सकते

साहित्य सगीत कलाविहीन साक्षात्पशु पुच्छविषाणहीन ।
तृण न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेय परम पशूनाम् ॥

साहित्य, सगीत एव मुकलात्मक जीवन यदि नही बना पाये तो वह जीवन सचमुच ही पशु-वृत्ति का प्रतीक आका है। भले वह घास फूस नही खा रहा, भले उसके शरीर पर शृग-पुच्छ आदि पाशविक चिन्ह नही हो तो क्या हो गया ? किन्तु भावात्मक दृष्टि से वह पशु की श्रेणी मे है। क्योंकि पशु के मन-मस्तिष्क मे विचारो का मथन नही हुआ करता है और न पारस्परिक विचारो का आदान-प्रदान ही होता है। वस्तुत हेय-ज्ञेय उपादेय क्रिया-कलापो मे बहुधा पशु जीवन विवेक-विकास शून्य सा रहा है।

केवल उपाधियाँ त्राणभूत नहीं :—

आप विचार करते होगे कि—आज दुनियाँ अत्यधिक विवेकशील, अध्ययनशील एव सभ्यता शील बन चुकी है। राकेटो का युग है। राकेट यान मे अनन्त अन्तरिक्ष की उडान भरने मे सन्नद्ध है। समुद्र के गभीर अन्तरतल का पता खोज निकाला है। आकाश पाताल की विस्तृत सधियाँ नापी जा रही है। एव परमाणु शक्ति का तीव्रतर गति मे प्रगति मे जुडे हुए हैं। नित्य नये-नये आविष्कारो का जन्म होता चला जा रहा है, अब कहाँ विवेक की कमी रही ?

भले इस आणविक युग मे मानव 'बी० ए०' एम० ए, बी० कॉम, पी० एच० डी० एल० एल० बी, एव आचार्य, शास्त्री, विशारद, प्रभाकर आदि उच्चतम डिग्रियाँ-उपाधियाँ उपलब्ध करके डॉक्टर-वकील-बेरिष्टर, इजनियर एव ओवरसीयर आदि बन गये है। किन्तु व्यवहारिक-नैतिक एव धार्मिक जीवन का धरातल यदि उनका तिमिराच्छादित है। उनका अन्तर्जीवन अनुशासन हीनता से दुराचार एव अनाचार के कारण मडाने मार रहा है, और आसपास के विशद वातावरण को विषाक्त बना दिया है तो कहिए वे डिग्रियाँ, उपाधियाँ एव पद उनके लिए भूषण स्वरूप है कि—दूषण स्वरूप ? आगम मे कहा है—
"न त तायति दुस्सील—(उ० सू० अ० २५।२८)

अर्थात्—वे उपाधियाँ अधोगति मे जाते हुए उन्हे रोक नही सकती है। मझधार मे डूबते हुए को तार नही सकती है। आगे और ज्ञातपुत्र श्रमण महावीर ने स्पष्ट बता दिया है—

न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासण ।
विसण्णा पावकम्मेहिं बाला पडियमाणिणो ॥

हे चेतन ! थोडा बहुत पढ जाने पर अपने आपको पडित मान लेने हैं वे वास्तव मे अज्ञानी आत्माएँ हैं, जो पाप कृत्यो मे फँसे रहते हैं। वे यह नही जानते हैं कि—प्राकृत सस्कृत आदि अनेक विविध भाषाओ का रटन-ज्ञान सीख लेने पर भी परलोक मे वह भाषाज्ञान रक्षक नही होता है, तो फिर बिना अनुष्ठान के तान्त्रिक कला-कौशल की साधारण विद्या की तो पूछ ही क्या है ? अर्थात् साधारण विद्या त्राणभूत नही बन सकती है।

हाँ तो, जीवन इन भभकेदार चमक-चाँदनी एव भौतिक चटक-मटक से दूर रहे जैसा कि—"Simple living and high thinking" अर्थात्—"सादा जीवन उच्च विचार, यही करता जीवन उद्धार !" जब यह मुहावरा जीवन मे ओत-प्रोत हो जायगा बस वही जीवन जन जन के लिए सम्मान-नीय-आदरणीय माना है। जिसको सात्विक जीवन जीना कहते हैं।

कर्तव्यपरायण बनो :—

आज हम देख रहे हैं कि—भारतीय व्यापारीवर्ग, कर्मचारी एव किसान वर्ग ईमानदारी के स्थान पर पर्याप्त मात्रा मे बेईमानी फैला रहे हैं सभी कर्तव्यभ्रष्ट दिग्मूढ से हो रहे है। उन्मार्ग मे प्रविष्ट होकर जीवन मे आनन्द की थोथी कल्पना कर रहे हैं। व्यापारी वर्ग आज महत्वाकाक्षी बन चुका है। उनके सामने नीति-न्याय ईमानदारी का उतना महत्व नही जितना धन-ऐश्वर्य का है। वस्तुत आमदनी के लिए वह फिर देश-द्रोह, धोखाधडी, दगाखोरी, चोरी, वस्तु मे भेल, माल मे मिलावट, नाप-तोल-मोल मे मनमानी मुनाफाखोरी लेना ही उसका ध्येय रहता है। इस प्रकार अनेक काले कर्म छोटे-मोटे समूचे व्यापारी वर्ग मे दिनो-दिन पनप रहे है। सरकार डाल-डाल तो व्यापारी वर्ग पत्ते-पत्ते पर घूम रहे हैं। फिर जीवन मे क्षेम की कल्पना करना क्या निरीह मूर्खता नही है? क्या आग मे बाग लगाने जैसा दुस्साहस नही है? एक कवि की मधुर स्वर लहरी ठीक ही बता रही है—

कैसे हो कल्याण करणी काली है, नहीं होगा भुगतान हुडी जाली है।

भ० महावीर ने साधु एव व्यापारीवर्ग को निजकर्तव्यो का समीचीन रूप से ज्ञान कराते हुए कहा है—

जहा दुमस्स पुप्फेसु भमरो आवियइ रस।
ण य पुप्फ किलामेइ सो य पीणेइ अप्पय॥

—दशवैकालिक अ० १ गा० २

जिस प्रकार भौरा फूलो से रस ग्रहण करके अपने आप को तृप्त करता हुआ रस दाता को किसी प्रकार का कष्ट नही होने देता।

उसी प्रकार साधु जीवन के पक्ष मे गृहस्थ जन पुष्प तुल्य माने हैं उनके घरो से साधक आवश्यकतानुसार उतनी ही सामग्री ग्रहण करे ताकि अपना कार्य भी बन जाय और गृहस्थ को भारभूत न मालूम हो। वैसे ही व्यापारी पक्ष मे भी ग्राहक जन रस दाता है। उनके साथ व्यापार वृत्ति ऐसी होनी चाहिए कि—उन्हे दु खानुभूति न होने पावे और नफा भी उतना ही ले कि वह प्रसन्न मुद्रा मे दे सके। वह वापिस उसी दुकान पर आने की स्वय इच्छा करे। परन्तु आज देखा जाता है कि व्यापारिक जीवन काफी बदनाम हो चुका है। इसका मुख्य कारण व्यापारी वर्ग स्वय अपने जीवन मे खोजे। व्यापारियो के जीवन मे निम्न गुण होना जरूरी है—वाणी मे मधुरता-नम्रता-हाथो की सच्चाई, जीवन मे प्रमाणिकता, जन-जन का विश्वासी एव देश-गाँव के प्रति वफादारी। इस प्रकार कर्त्तव्य परायण होकर जीवन बीताना सीखे। एक अग्रेज तत्त्ववेत्ता ने कहा है—"Honesty is the best Policy" प्रामाणिकता उत्तम व श्रेष्ठ नीति है।

नैतिक जीवन की वाह वाह!

नैतिक जीवन पर एक मार्मिक घटना इस प्रकार सुनी गई है—भारत मे अग्रेजो का शासन था। उस समय ईस्टइन्डिया कम्पनी का व्यापारिक कारोबार काफी तेज था। कम्पनी एव कलकत्ता के एक सेठिया फर्म के साथ लाखो का व्यापार विनिमय चल रहा था। फर्म के खास मुख्य कार्यकर्त्ता मालिक कहीं गये हुए थे। इधर सहसा कम्पनी की तरफ से तकाजा हुआ कि—अपना कार्य का पूर्ण हिसाब कर लिया जाय। तदनुसार मुनीम ने पूरा हिसाब निपटा दिया। अब कम्पनी की तरफ से सेठिया फर्म का कोई देना-लेना बाकी नही रहा। दोनो ओर से हस्ताक्षर भी हो गये। कुछ दिनो बाद

हैं। किन्तु ससार मे रह करके भी जीवन मे माधुत्व की सुन्दर प्रवृत्तियाँ तो चालू कर सकते हैं। ताकि आस-पास वाले सभी उनका अनुकरण कर सके। मरने पर भी दुनियाँ उन्ही के गीत गाती रहे।

खिदमत करूँ मै सबकी खिदमत गुजार बनकर।
दुश्मन के भी न खटकूँ आंखो मे खार बनकर ॥

व्यावर निवासी सेठ कालूराम जी कोठारी का जब स्वर्गवास हुआ तब एक मुसलमान मुह-फाड कर रोने लगा।

उससे पूछा—तू क्यो रो रहा है ?

वह बोला—आज मेरे बाप मर गये हैं। अब मेरा क्या होगा ?

अरे ! वह जैन और तू मुसलमान। फिर तेरे बाप कैसे हुए ?

उसने कहा—एकदा मेरे शरीर पर लकवे का असर हुआ तो मेरी घरवाली मुझे छोडकर नाते चली गई। मैं अपने घर पर रो रहा था, इधर से सेठ जी निकले। रोते हुए मुझे देखा तो मेरे पास आए, और मैंने आप बीती सारी बात कह सुनाई। तब उन्होने मुझे मास खाने का त्याग करवाकर और आटे दाल का मेरे मिल प्रबन्ध किया। वे अब नही रहे सो मेरा क्या होगा ? इसलिए मैं उनके अमृतमय जीवन को याद कर रहा हूँ। इसीलिए कहा भी है—

ओ जीनेवाले जीना है तो जीवन मधुर बनाया कर।
तन से मन से अरु वाणी से अमृत का कण बरसाया कर ॥

अब जो मुमुक्षु ससारी प्रवृत्तियो से उदासीन रहना चाहते हैं उनके लिए आगम वाणी मे इस प्रकार मार्गदर्शन दिया है —

जहा पोम जले जाय नोवलिप्पई वारिणा।
एव अलित्त कामेहिं त वय बूम माहण ॥

—भगवान् महावीर

हे मुमुक्षु ! जैसे कमल जल मे उत्पन्न होता है, पर जल से सदा अलिप्त रहता है, इसी तरह काम भोगो मे उत्पन्न होने पर भी विषय वासना सेवन से जो दूर रहता है, वह किसी भी जाति व कौम का क्यो न हो, मैं उसी को महान् मानता हूँ।

जिसको गीता मे अनासक्तियोग कहा जाता है और जैन दर्शन की परिभाषा मे अमूर्च्छा भाव अथवा अगृद्धभाव कहते हैं। इस प्रकार ससार-स्थली मे रहकर मुमुक्षु जीव अपनी मर्यादा के अनुसार स्व-पर के लिए भले कोई भी उचित कार्य करे, उनके लिए मुक्ति दूर नहीं। क्योकि—जिसने मातृ-कुक्षि मे जन्मधारण किया उनका प्रथम कर्त्तव्य है कि—वे न्याय नम्रता पूर्वक अपने बडे बुजुर्गों का पालन-पोषण करे, समाज एव राष्ट्र के प्रति पूरा-पूरा वफादार रहे, एव अडोसी-पडोसी की भलाई करते हुए प्राणी मात्र के साथ माधुर्य से पूर्ण मिष्ट और इष्ट व्यवहार करें। चूँकि जितने उत्तरदायित्व उन पर लदे हुए हैं। उत्तरदायित्व से मुँह मोडना मानो जीवन की भारी पराजय है।

अतएव सब की ओर देख भाल करना तो ठीक है किन्तु उनमे उलझ जाना, व्यामोहित हो जाना, कर्त्तव्य मे पतित हो जाना अर्थात् जर, जोरू, और जमीन को ही सर्वस्व जीवन का आधार मानकर गृद्ध हो जाना, जीवन के लिए एक खतरनाक चुनौती है।

जैसे धाई माता वालक-वालिकाओ का तन-मन से लालन-पालन, खिलाना-पिलाना आदि सर्व सेवायें करती है तथापि उनमे मोह की मात्रा नही। क्योकि उसका मन यह भली भाति जानता है कि - यद्यपि मैं उनकी सेवा शुश्रुपा अवश्य करती हू किन्तु—"ण मे अत्थि कोई, ण अहमिव कस्सवि"। मेरे कोई नही न मैं किसी की हू। ये चुन्नु-मुन्नु तो राज के ताज हैं। नि सन्देह देखा जाय तो विश्व वाटिका मे वास करने की यही सरस कला है। मर्यादा के अनुसार सर्व कार्य कलाप पर भी मन मजूषा मे आसक्ति का उद्भव नही, मुख पर हर्ष-अमर्ष के चिन्ह नही और वाणी मे रोप-तोप के तुपार नही।

इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाले मुमुक्षु अवश्यमेव ऋद्धि-सिद्धि एव समृद्धि से भर उठते हैं —

विहाय कामान्य सर्वान् पुमाश्चरति नि स्पृह ।
निर्ममो निरहकार स शांतिमधिगच्छति ।।
तस्मादसक्त. सततं कार्य-कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् सिद्धि परमाप्नोति पूरुष ।। —गीता

हाँ तो, लूखे-सूखे भावो मे सदा रमण-गमन करनेवाले मानव अवश्यमेव अपना व अन्य का उद्धार कर्ता वनते हैं। परन्तु अफसोस गजव है कि मोह-माया की जीव लुभावनी वातावरण की छाया-माया मे ऐसे एकमेक वन जाते हैं कि उन्हे यह भान नही होता कि अपने लिए क्या करना है ? कही जीवन के साथ अन्याय तो नहीं हो रहा है ? कही आत्मवचना तो नही ? कही ऐसा न हो जाय कि— "पुनरपि जनन पुनरपि मरण" की कला का विकास-विस्तार हो जाय। अतएव उदात्त दृष्टि से देखा जाय तो आज मानव समाज के कदम विपरीत दिशा की ओर वढ रहे हैं। विकास नही विनाश का आलिगन करने जा रहे हैं। सुख शाति की खोज नही, दु ख की फौज जुटा रहे हैं।

अतएव प्रत्येक वुद्धिवादी के लिए रहने की कला का प्रशिक्षण करना जरूरी है। यह शिक्षण कालेजों में नहीं, अपितु महापुरुषो की वाणी का सुस्वाद करने से ही प्राप्त हो सकेगा। तभी सभव है कि जीवन मे आनन्द का झरना-प्रवाहित होगा।

इस दुनियां मे हूँ दुनिदां का तलवगार नहीं हूँ।
इस वाजार से गुजरता हूँ पर खरीददार नहीं हूँ ।।

सर्वोदय सिद्धि का सोपान—

सहयोग धर्म

[बुद्धि का विस्तृत भण्डार जितना मानव के कमनीय कर कमलों को मिला हुआ है उतना अन्य किसी गतिवाले जीव-जन्तु को नहीं मिला। ऐसा क्यो ? इसलिये कि—मानव अपने मूल्यवान मस्तिष्क मे स्थित मेधा का उपयोग अन्य के निर्माण मे सहयोग मे एव सृजन मे करता-करवाता है। आज के इस विकासशील युग मे प्रत्येक देश-सीमा की दृष्टि से नहीं, किंतु व्यावहारिक एव वैचारिक दृष्टि से अत्यधिक समीप आ और आये रहे हैं। इसमे सहयोग ही बहुत बडा माध्यम माना जाता है। गुरुदेव द्वारा 'सहयोग धर्म' पर प्रदत्त प्रवचन पढिए ! सम्पादक]

प्यारे सज्जनो !

आर्यसंस्कृति सदैव चैतन्य उपासना मे विश्वास रखती है। वह मृण्मय देह की नही देही की आरती उतारा करती है। वासना की ओर नही उपासना की ओर कदम बढाने का सकेत देती है। चित्र का नही, चरित्र का गुणानुवाद करती है। कारण कि हमारी परम्परा गुणानुरागी है। इसलिए मानव जीवन अत्यन्त गुणो का भण्डार माना गया है। सर्वोपरि अनन्त गुणो का विकास वीतराग दशा की उपलब्धि होने पर ही हो सकता है अन्यथा नही। साधक की साधना, आराधना इसी प्रयोजन के लिये होती है। यद्यपि भव्यात्माओ मे अनन्त गुणो का सद्भाव है तथापि विभाव परिणति के कारण उन अनन्त गुणो मे से कुछेक गुण ही विकसित हो पाये हैं।

सहयोग धर्म की आवश्यकता

सहयोग गुण भी वाह्य एव आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित है। अतएव सहयोग गुण का मानव समाज मे अधिकाधिक विकास होना आज के युग मे अत्यावश्यक है। सहयोग के बिना कोई भी राष्ट्र, समाज, सघ, ग्राम, नगर एव परिवार उभयात्मक जीवन का उत्थान नही कर सकते हैं। एक युग था जिसमें सहयोग की उपेक्षा रखते हुए मानव अकेला जीवन यापन कर लेता, अकेला खा पी लेता, अकेला घूम फिर लेता, और अकेला ही दु ख-सुख की परिस्थितियो मे हँस और रो लेता, पारिवारिक, सामुहिक जीवन की ओर उनका कुछ भी लक्ष्य नही था। वे उत्तरदायित्व से मुक्तवत् थे। इसका मतलब यह नही की वे अनभिज्ञ असभ्य थे। आर्यसंस्कृति व सभ्यता का विकास तो हजारो वर्ष पूर्व हो चुका था, वस्तुत वह निस्पृह जीवन था। अतएव अकेलेपन मे ही उन्हे सुखानुभूति होती थी किंतु इस आणविक युग मे कोई कहे की मैं अकेला रहकर सब कुछ कर लूँगा, साध लूँगा, जीवन का सागोपाग नव निर्माण भी कर लूँगा मुझे किसी मानव के सहयोग की आवश्यकता नही। ऐसी बात मैं नही मान सकता हूँ क्योंकि-साधक या ससारी सभी के लिये सहयोग धर्म की जरूरत रही है। भगवान् महावीर ने कहा है—साधक का साधना मय जीवन भी पृथ्वी, अप, तेऊ, वायु, वनस्पति और ससारी जनो के सहयोग पर ही काफी हद तक टिका हुआ है वरना पग-पग और डग-डग पर विघ्न तैयार है।

सहयोगधर्म की व्याख्या

"परस्परोपग्रहो जीवानाम्" (तत्वार्थ सूत्र) सहयोग गुण का अभिप्राय है एक दूसरा एक दूसरे का महायक बने, सुख किंवा दुःख दर्द भरी घडियो मे भागीदार बने, जैसे पिता, पुत्र, गुरु, शिष्य, स्वामी-सेवक, और अडौसी-पडौसी। चूँकि समस्या एक दो नही अपितु आध्यात्मिक, सामाजिक, व्यवहारिक एव पारिवारिक इस प्रकार अगणित समस्याएँ जीवन के साथ जुडी हुई हैं। मैदान छोडकर सामाजिक प्राणी कही भाग नही सकते हैं। यदि परेशान होकर कही इधर-उधर दुबक भी गये तो कहाँ जायेंगे ? जहाँ भी जायेंगे वहाँ नवोदित वे समस्या समाधान चाहेंगी। एक शायरी मे कहा —

लोग घबरा कर कहते हैं कि मर जायेंगे।
मर कर भी चैन न पायेंगे तो किधर जायेंगे ॥

इस कारण उभरी हुई समस्त समस्याओ से हमे तनिक भी घबराना नही चाहिये और न उनके प्रति हमे उपेक्षाभाव वरतना चाहिए अपितु सभी मिलकर समाधान ढूँढे ताकि समस्याओ का मार्ग प्रशस्त बने और दिल-दिमाग का बोझा हल्का होवे।

मानव पर यह उत्तरदायित्व क्यो ?

सहयोग करना-करवाने का सर्व उत्तरदायित्व महा-मनस्वियो ने मानव की वलिष्ट भुजाओ पर लादा है, ऐसा क्यो ? क्या इस विराट् विश्व की अचल मे अन्यान्य जीव जन्तु नही हैं ? चरिन्दे-फरिन्दे इस प्रकार अनन्त प्राणी सृष्टि की अगाध खाड मे कुलबुल कर रहे हैं तथापि मेधावी मानव को ही सहयोग धर्मानुरागी अभिव्यक्त किया है ? दर असल बात ठीक है, अन्य प्राणियो की अपेक्षा मानव असीम बुद्धि का भण्डार है, वह हिताहित का ज्ञान-विज्ञान रखता हुआ स्वपर के उत्थान विकास सर्वोदय मे अपना भी अभ्युदय मानता है। इसी अभिप्राय के अन्तर्गत महर्षिव्यास ने कहा—

"न हि मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित्।"

वत्स ! आज मैं तुम्हारे समक्ष अनुपम गूढातिगूढ रहस्योद्घाटन कर रहा हूँ वह यह है कि सारे विश्व मे मनुष्य से श्रेष्ठ दूसरा कोई भी प्राणी नही है इसलिए मानव के समूह विशेष को 'समाज' की सज्ञा दी है और पशु के समूह को समाज न कहकर 'समज' कहा है। अतएव तन-मन-धन से मानवसमाज सहयोग करने मे सर्वथा सुयोग्य है। धन-सम्पत्ति द्वारा किन्ही निराश्रित-निर्बल आत्माओ को सहायता करके तारीफ बटोर लेना काफी सरल है किंतु काया से दुःखित, दलित जीवो की मदद करना अतिदुष्कर माना है। हँसते-मुस्कराते जीवन के अमूल्य क्षणो को पर पीडा निवारण मे बिताना अति कठिन माना है। एक महिला अपने वृद्ध पति की सेवा-सहायता करती हुई ऊब गई तब वह मन ही मन प्रभु से प्रार्थना करने लगी—

आया वर्ष जब सैकडा तन-मन हुआ खोखरा।
पतिव्रता पति सु कहे अब मरे तो सुधरे डोकरा ॥

यत्किंचित् नर-नारी ही भाग्यवान् होगे, जो निज काया से सेवाकार्य करते हुए कभी भी ऊबते नही हैं, जिनको कभी भी ग्लानी पैदा नही होती, परन्तु सहयोग करके प्रसन्नचित्त होते हुए अपने भाग्य को सराहते हैं। ऐसे मानव सृष्टि के लिए भार नही हार स्वरूप माने गए है। किन्तु आज यहाँ-वहाँ दृष्टिपात करते हैं तो हमे आज के जमाने पर तरस आती है। आज भाई-भाई का तिरस्कार, बहिष्कार, यहाँ

तक की कचन-कामिनी के पीछे कोर्ट-कचहरी की पेढियाँ नाप रहे हैं। एक दूसरे एक दूसरे को शत्रु मान रहे हैं। एक कुक्षी से जन्म लिया, एक थाल मे भोजन किया, और एक ही धूलि के कणो मे खेले, व फूले-फले वडे हुए हैं, आज उन्ही के साथ कोई सहयोग नही। माधुर्य भरा व्यवहार नही, कितनी शोचनीय स्थिति वन चुकी है ? वास्तव मे मानव की वुद्धि का भले विकास हुआ हो किंतु मानव का हृदय दिन प्रतिदिन छोटा होता जा रहा है। मानवी व्यवहार पर दानवी वृत्तियाँ हावी हो रही है, फलस्वरूप आज सभी भयातुर हैं। इस अनिष्टकारी प्रवृत्ति के कारण लाखो-करोडो भारतीय नर-नारी पाश्चात्य सस्कृति के अनुयायी अर्थात् ईसाई वने और वनते जा रहे हैं। ऐसी दु खद घटना निश्चय मानिये आर्य सस्कृति के लिये घातक एव वरदान नही अभिशाप सिद्ध हुई है। ऐसी गलतियाँ उनकी नही, हमारी हैं। हम लोगो ने परमार्थता, उदारता, विशालता, सहयोग, सहानुभूति एव अपनत्व-भ्रातृत्व को भुला दिया और प्रत्येक वात मे स्वार्थपना ले आये, इस कारण आये दिन हमे कटुफल भोगने पड रहे हैं।

उपदेश को कार्यान्वित करें

स० १८-२८ की वोधप्रद एक घटित घटना है, ववई के कुष्ठि दवाखाने मे एक ईसाई मिशन कार्य कर रहा था। सैंकडो हिन्दु और मुसलिम कुष्टि नर-नारी ईसाई वनते चले जा रहे थे। धर्म परिवर्तन की कहानी सरकार तक पहुँची। विधान सभा से पूछा गया कि—क्या यह कुष्टि दवाखाना है या धर्म परिवर्तन की कार्यशाला ? उत्तर मिला कि वास्तव मे धर्म परिवर्तन की प्रणाली मानव समाज के लिये अतिघातक है अतएव शीघ्रातिशीघ्र रोकथाम होनी चाहिए। प्रस्ताव स्वीकृत होते ही हिन्दु धर्म की सुरक्षा के लिये पडितो की और इस्लामधर्म की सुरक्षा के लिये मौलवियो की व्यवस्था की गई।

पडित पहुँचे, महाभारत, गीता का उपदेश देने लगे। यह ईश्वर का प्रकोप है। पूर्व जन्म के किये हुए अपने ही अशुभ कर्मो का फल है—

> अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम् ।
> नाभुक्त क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।।

अर्थात्—कृतकर्मो को अवश्यमेव भोगना ही पडेगा। विना भोगे कर्म विपाक मे कभी भी छुटकारा नही मिल सकता है भले कितना भी काल क्यो न वीत जाय, इस कारण आप शाति-पूर्वक सहन करते हुए धर्म का परित्याग न करें।

अव मौलवी कहने लगे—अल्लाह की इवादत न भूले, खुदा की वन्दगी करें, वह तुम्हे सभी गुन्हा माफ करेगा। दवाई, इलाज की वात दूर रही किंतु कही रोग हमारे न लग जाय इस कारण न किसी रोगी को छुआ, न स्पर्श किया और नहीं कोई सहानुभूति सहयोग भावना प्रगट की, केवल धर्म की वातें वह कर चलते वने।

कुछ समय वाद ईसाई सेवक उपस्थित हुए जो अन्य के मन-मस्तिष्को को वात की वात मे वदल दे, उनके पास उपदेश नही अन्तरात्मा के जादू भरे मृदुस्वर थे। उन रोगियो को सान्त्वना देते हुए, घावों को धोते हुए विना ग्लानि किये मरहम पट्टी करके साफ सुथरे वस्त्र पहनाये तत्पश्चात् पार्थिव देह के लिये शक्ति वर्धक खाद्य वस्तु खिलाते हुए सुमधुर वाणी का सुन्दर उपहार उन मरीजो को समर्पित करते हैं। रुदन दुनियाँ उनकी वन गई। न गीता न कुरान का उपदेश उनके मन-मन्दिर को वदल सका। यह निर्विवाद सत्य है कि टन और मण भर उपदेश की अपेक्षा क्षण भर का सहयोग-

महानुभूति पापाणवत् कठोर मन मस्तिष्क को वदल सकती है—इस कारण जीवन मे उपदेश को अवश्यमेव कार्यान्वित करें—जैसा कि भ० महावीर ने कहा—

"असगिहीय परिजणस्स सगिण्हणयाए गिलाणस्स अगिलाणए वेयाच्चकरणयाए अब्भुट्ठेयव्व भवइ।"

—स्थानाग सूत्र ८

जो असहाय एव अनाश्रित है उन्हें सहयोग एव आश्रय देने मे, तथा जो रोगी है उनकी परिचर्या करने मे सदा तत्पर रहना चाहिए।

अन्तकृतांग सूत्र मे श्री कृष्ण वासुदेव सम्बन्धित वहुत ही हृदयस्पर्शी प्रसग आपने कईबार सुना होगा। श्रीकृष्ण वासुदेव हजारो सामन्तो के साथ भगवान श्री अरिष्ठनेमि के दर्शनो के लिए जा रहे थे। मार्गवर्ति एक वृद्ध ईटो के ढेर मे से एक-एक ईट उठाकर मकान के अन्दर रख रहा है। ढेर काफी वडा था। दयनीय दृश्य देखकर वासुदेव का हृदय द्रवित हो उठी तत्क्षण मानवी कर्त्तव्य समझ कर सहयोग करने मे तत्पर हो गये। "राजानमनुवर्तन्ते यथाराजा तथा प्रजा" तदनुसार साथवालो ने भी वैसा ही अनुकरण किया। वात की वात मे सारा ढेर अन्दर पहुँच गया। वहुत वडा कार्य हजारो-हजार हाथ मिलने से कुछ ही क्षणो मे पूर्ण हो गया। उस वृद्ध के अन्तरात्मा के तार झकृत हो उठे।

महापुरुष ही दुनियां में दुखियो के दुख को हरते हैं।
अपना कार्य वने न वने पर अन्य का कार्य वे करते हैं॥

सहयोग धर्म का व्यापक स्वरूप

सहयोग धर्म मे शून्य जीवन इस धवल धरा पर धिक्कार का पात्र माना है। वह जीवन पशु से क्या पाषाण से भी गया वीता माना है। यदि देहधारी के जीवन मे पारस्परिक सहयोग की आकाक्षा, प्राय मृत सी हो गई है तो एक पत्थर मे और उस चलते-फिरते पुतले मे क्या अन्तर है? पत्थर के टुकडे को आप तोडेंगे-फोडेंगे तो समीप पडे हुए दूसरे पाषाण मे आत्मीयता की कोई प्रतिध्वनि नही होगी। अपमान एव सवेदना की स्फुरणा नहीं होगी, किंतु दुखी-दर्दी प्राणी की चित्कार को सुनकर देह धारी की आत्मा चीख उठेगी। उसके दिल मे कष्ट निवारण की हलचल अवश्य हिलोरे मारने लगेगी। सुरक्षा सहयोग की अनेकानेक अनुभूतियाँ स्वत उभर उठेगी। यदि स्फुरणा नही हुई है तो ऐसा मानना पडेगा कि—अभी तक उसने निज कर्त्तव्यो को पहिचाना नही, परखा नही, कहा भी है—

अगर तेरे दिल मे दयाभाव ही नहीं,
समझ ले तुझे दिल मिला ही नहीं।
वह मुर्दे से भी बदतर है जो सुख न किसी को देता है।
लोहारो की धोकनी सदृश बेकार सास वो लेता है॥

जैन दर्शन मे ही नही, अपितु वैदिक एव वौद्धदर्शन मे भी रत्नत्रय का महात्म्य अच्छे ढग से अभिव्यक्त किया है। सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये रत्न भव्यात्माओ को लिए भारी सहायक हैं। रत्न त्रय की सहायता विना भव्यात्माओ को स्वकीय-परकीय एव हेय, ज्ञेय उपादेय का कुछ भी प्रवोध नही होता है। इनकी वदोलत नर से नारायण, मानव से महावीर और आत्मा से परमात्मा पदवी तक को प्राप्त करते हैं कहा है—

नाणेण जाणई भावे दसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाई तवेण परिसुज्झई॥

वत्स ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र एव तप की सहायता से यह जीवात्मा भली प्रकार से जीवादि तत्वो को जानता है, श्रद्धता है। आगत कर्माश्रव को रोकता एव समस्त कर्मों का क्षय करने मे सफलता भी प्राप्त करता है। इस प्रकार गुरु की मदद विना गोविन्द, और अरिहन्त की कृपा विना सिद्ध स्वरूप का सम्यक् ज्ञान कदापि नही होता है। इस तथ्यानुसार गोविन्द एव सिद्ध प्रभु की अपेक्षा, गुरु एव अरिहन्त प्रभु का माहात्म्य अधिक माना है क्योकि ये हमारे लिये परोपकारी है। जैसा कि कहा है—

गुरु गोविन्द दोऊ खडे काके लागु पाय।
वलिहारी गुरुदेव की गोविन्द दिया वताय॥

परम सहायक का गुण गान करना सम्यक् दृष्टि को पहिचाना है। सम्यक्दृष्टि के शम-सम्वेग-निर्वेद-अनुकम्पा और आस्था, ये व्यावहारिक लक्षण माने गये हैं, इसमे अनुकम्पा चौथा लक्षण है। सहयोग रूपी सुधा-रस का सिंच न पाकर ही अनुकम्पा गुण समृद्धि विकास को प्राप्त करता है। धर्म रूपी वृक्ष परिपुष्ट होता हुआ जीवन सागर सदृश्य अवश्य विराट वनता है। स्नेह-सगठन एव समता के झरने अवश्य ही प्रस्फुटित हुए विना नही रहते हैं। थोडे मे कहूँ तो सत्य शिव-सुन्दरम्, ये तीनो गुण सहयोग धर्म मे समाविष्ट है। रोते हुए को हँसाना, गिरे को उठाना और अनाथ को नाथ के पद पर आसीन करना सहयोग धर्म का मगल कार्य है। सुनिये जीवन-स्पर्शी उदाहरण—

साधारण वस्त्र पहिने हुए एक नन्ही वालिका थोडा दही लेकर आ रही थी। कुछ लोग सामने से गुजर रहे थे एक भाई उस वालिका से टकरा गया। विचारी का दही सडक पर विखर गया। वर्तन भी फूट गया लडकी जोर-जोर से रोने लगी। आने जाने वालो ने उस वच्ची को चुप रहने का उपदेश दिया पर कोई सहयोग का हृदय लेकर नही आया। अन्त मे एक सज्जन पुरुष आया और वोला-वेटी ! क्या हुआ, दही गिर गया ? अच्छा रोओ मत चुप हो जाओ और लो यह पैसे दही और वर्तन ले आओ। वैसा ही हुआ, वह लडकी अपना सामान ले आई और प्रसन्न मुद्रा मे नाचती-कूदती अपने घर चली गई। कहा है—

हाथ फैलाओ कि हम फैलायें हाथ हैं।
साथ तुम हमे दो हम तुम्हारे साथ हैं॥

आप जरा गहराईपूर्वक सोचे, इजिन मे सैंकडो मन वजन ले जाने की शक्ति है किंतु पटरी के अभाव मे ? मछली मे दौड लगाने की क्षमता है किंतु जलाभाव मे ? इसीप्रकार जीव और पुद्गलो मे गति करने की क्षमता है किन्तु धर्मास्ति काय का सहयोग नही रहा तो क्या इधर-उधर जा पाओगे ? विल्कुल नही। इसी तरह प्रत्येक द्रव्य पारस्परिक सहयोगी है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु जैसे कि—नदी, नाले, झाड-पर्वत, निर्झर, रवि-राकेश, सभी जीव एव पुद्गलो के लिये मददगार है, अर्थात्-सहयोग धर्म से परिपूर्ण है।

यद्यपि समय काफी हो चुका है, मुझे आशा है कि—आप मेरे विचारो को अपने दिल-दिमाग से सोचेंगे व जीवन की पवित्र प्रयोग शाला मे कार्यान्वित भी करेंगे जव ऐसी आत्मिकस्फुरणा का अन्तर हृदय मे उद्भव होगा तभी सहयोग धर्म इसका सहज स्वभाव वन जायगा। जव अपने समान दूसरो को भी सुखसम्पन्न वनाने की आपकी अन्तरात्मा मे उत्कण्ठा जागेगी वही उत्कण्ठा आपके भविष्य को चमकायेगी-दमकायेंगी एव सुख सम्पन्नता से भरेगी इतना कहकर मैं अपने वक्तव्य को विराम देता हूँ।

३. संयममय जीवन

आज हम जिधर भी दृष्टि डालते हैं। उधर भौतिकवाद का बोल-वाला है। सभ्य समाज के प्रत्येक नर-नारी भौतिक सुख-सुविधा मे और फैशन मे अधिकाधिक मदोन्मत्त बनते जा रहे हैं। सयमी नहीं, असयमी एव मर्यादित नहीं अमर्यादित जीवन बिताना अधिक पसन्द कर रहे हैं। ऐसा क्यो ? यह दोष आध्यात्मिकवाद का नहीं अपितु भौतिकवाद का रहा है। जिसने आहार-विचार और आचार मे बहुविध विकृतियाँ पैदा की है। वस्तुत. आहार की विकृति से विचार विकृत हुए और विचारो की विकृति से मानव का सदाचार (सयम) भी कलकित होना स्वाभाविक है। इसी वातावरण को दृष्टिगत रखकर गुरु प्रवर ने "सयम ही जीवन है" प्रवचन फरमाया है जो प्रत्येक मुमुक्षु के लिए प्रेरणाओ का स्रोत रहा है।

— सपादक

प्यारे सज्जनो !

आज के इस विराट् विश्व की वाटिका मे करीब-करीब तीन-चार अरब जितनी जनसख्या निवास कर रही है। जिसमे चीन प्रथम श्रेणी में, हिन्द द्वितीय, तृतीय श्रेणी मे रसिया और क्रमश फिर अन्य देशो का नम्बर आता है।

आज हिन्द की लगभग ५५ करोड जितनी जनसख्या मानी जाती है। फलस्वरूप प्रत्येक देश की बढती हुई जन-आबादी को देखकर आज केवल हिन्द को ही नही, अपितु प्रत्येक राष्ट्र को भय-सा प्रतीत हो रहा है। सभी के समक्ष आज एक प्रकार की जटिल समस्या और एक गम्भीर प्रश्न आ खडा है। वह समस्या इस प्रकार है कि बढती हुई प्रजा को कहाँ बिठाएँगें ? क्या खिलाएँगे ? क्या पिलाएँगे और क्या पहनाएँगे ? आदि-अहर्निश उपरोक्त प्रश्न प्रत्येक राष्ट्र को बेचैन सा बना रहे हैं।

अभी-अभी थोड़े वर्षो पूर्व काग्रेस-कान्फ्रेन्स का अधिवेशन नागपुर मे हुआ था। जिसमे बढती हुई जनसंख्या के प्रश्न पर भी कुछ विचार-विमर्श किया गया था कि इस जनवृद्धि के लिए हमे भविष्य मे क्या करना चाहिए। विशाल रग-मच पर कितनेक वक्ताओ के इस समस्या सम्बन्धित भाषण भी हुए थे। किसी-किसी का अभिमत यह था कि—जन्मते ही बालक-बालिकाओ को क्यो न काल के गाल मे डाल दिया जाय और किसी के उद्‌गार यह थे कि—वैदेशिक-औषधि-इजेक्शनो का उपयोग किया जाय ताकि किसी की उत्पत्ति ही न हो और सदा के लिए वृद्धि का मार्ग ही अवरुद्ध हो जाय। आज भी कतिपय नर्स अनेको गाँवो मे घूमती है और औषधियो का प्रयोग करने का स्त्री समाज मे जोर-शोर से प्रचार कर रही है।

अब विद्वद् समाज ही पैनी बुद्धि और शात मन-मस्तिष्क मे सोचे कि क्या उपर्युक्त उपाय मानव-जीवन को लाभ और शाति सतोषप्रदायक है ? "न भूतो न भविष्यति।" अर्थात् कदापि नहीं।

नि सन्देह ऐसे उपायो का उद्घाटन करनेवाले और ऐसे उपायो का व्यवहारिक जीवन मे आचरण करने वाले नर-नारी भारी भूल के पात्र है। वे मानव-समाज का हित नहीं अहित करते हैं। मानव जीवन को पतन के गहरे गर्त मे गिरने का भारी जाल तैयार कर रहे है। इन उपायो से मानव-जीवन का उत्थान कल्याण असम्भव है।

इस प्रकार आज का वैज्ञानिक वर्ग 'सतति-निरोध' इस समस्या का समाधान ढूँढने मे तल्लीन और प्रयत्नशील है। तथापि अद्यावधि सफलता का सूर्योदय नही हुआ है। परन्तु लीजिए इस तुच्छ समस्या का समाधान तो पतित-पावन-पवित्र प्रभु महावीर स्वामी ने आज से २५ शताब्दियो पहिले ही अपनी विमल-विशद वाणी द्वारा कर दिया था **"सयम खलु जीवनम्"।**

हे मुमुक्षु! सयममय जीवन ही वास्तविक जीवन कहा जाता है। और देखिए — **वर मे अप्पा दन्तो, सजमेण तवेण य।"**

— भ० महावीर

हे जितेन्द्रिय! प्रत्येक मानव को यह अवश्यमेव जानना चाहिए कि—सयम और तप के द्वारा ही वह अपनी आत्मा का दमन करे। क्योकि—इन साधनो से आत्मा को वश मे करना सर्वोत्तम है। और भी कहा है – **लज्जा दया सजम बभचेर कल्लाणभागिस्स विसोहिठाण।**

—दशवैकालिक सूत्र

अर्थात् लज्जा, दया, सयम और ब्रह्मचर्य, कल्याण चाहने वालो के लिए विशुद्धि के स्थान माने है।

"सयम्यते नियम्यते स्वरूपे स्थाप्यते आत्मा पाप पु जात् अनेन इति-सयम ॥

अपने आप को पाप पु ज से हटाकर निजस्वरूप मे स्थापित करना ही सयम की परिभाषा है। सयम का मतलव यह नही कि—सभी साधु वेश के धारक होवें। किन्तु इन्द्रिय एव त्रय योग (मन-वचन-काया) जो पाप और आश्रव की ओर वढ रहे हो उन्हे नियन्त्रित कर सदा-सदा के लिए तीन करण तीन योग के माध्यम से जो सवर की ओर मोड देना, वह सर्वा श सयमी जीवन कहलाता है और कुछ नियमित काल के लिए जो सावद्यप्रवृत्ति से निवृत्ति ग्रहण करते है वह देश रूप मे सयमी जीवन कहलाता है।

वास्तव मे सयममय जीवन ही महान् जीवन कहलाता है। सयम एक महान् शक्ति है—जो नर-नारी को नारायण का रूप प्रदान करने वाली है। अन्धकार से प्रकाश की और प्रेरित करने वाली और दशो दिशाओ मे जीवन को चमकाने-दमकाने वाली है। जैसे लालटेन मे तेल जितना गहन-गम्भीर होगा, तो प्रकाश की तीव्रता भी उतनी ही वढेगी। मानव जीवन के लिये सयम-ब्रह्मचर्य तेल है। और प्रज्ञा की प्रभा यह प्रकाश है। मानव जीवन मे सयम रूपी तेल का अजस्र स्रोत प्रदीप्त होता रहेगा तो बुद्धिमत्ता उतनी तेजस्विनी होती रहेगी। अगर जीवन मे किसी भी वात का सयम (कण्ट्रोल) नही, तो निश्चय ही सर्वशक्तिया कमजोर और शुष्क हो जाएगी। सयम आध्यात्मिक जीवन को तथा भौतिक जीवन को ऊँचा उठाने वाला एक सर्वोत्तम साधन है। विनोवा जी भी यही कहते हैं —'सयममे ही जीवन का विकास सम्भव है"।

एकदा महातमा गाधी जापान की यात्रा पर गये। जापान देश-सभ्यता सस्कृति एव कला विज्ञान मे काफी अगुआ रहा है। जापान पहुचने पर वहाँ के निवासियो ने भाव भीना स्वागत सत्कार कर अपनी सस्कृति सभ्यता की पूरी जानकारी अवगत करवाई। वापू ने वहाँ कई विशेष नई-नई चित्रित

वस्तुएँ देखी। जिसमे तीन वन्दरो का एक मूक चित्र भी सम्मिलित था। एक बन्दर ने अपने दोनो कानो पर हाथ दे रखा, दूसरे ने आँखो पर और तीसरे ने मुँह पर हाथ दे रखा था। विस्मय मे डालने वाले उस चित्र को देखकर महात्मा गाँधी वहाँ के कार्यकर्ताओ से बोले—इन चित्रो से क्या प्रयोजन ?

कार्यकर्ता—हमारे देश मे सयम का अत्यधिक महत्त्व माना गया है। दुनिया को उपदेश देने के लिए घर-घर कौन जावे ? उपदेशक के पास इतना समय भी तो नही। उस कमी को हमारे ये तीनो वन्दर पूरी करते हैं। ये हमारे कलाकारो की विशेष सूझ-बूझ है।

एक वन्दर मानव को सकेत करता है कि—किसी की ओर बुरी दृष्टि नही डालना।

दूसरा वता रहा है—बुरे वचन अपने मुँह से नही उगलना।

तीसरा सकेत करता है—किसी की निन्दा, मिथ्यालोचना एव बुरी वाते न सुनना।

कहिए, यह उपदेश क्या कम है ? इन्द्रियाँ और मन को सयमित करने का कितना सुन्दर मार्ग है। आँखे, कान और मुँह पर सयम रहने पर वहुत से क्लेश दूर हो जाते हैं। शिक्षा भरी वातें सुनकर वापूजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। और वापिस लोटते समय उन चित्रो को अपने साथ लेकर भी आये।

इन्द्रिय एव मनोनिग्रह पर भ० महावीर ने तो वहुत ही जोर दिया है। यथा—

जहा कुम्मे स अगाइ सए देहे समाहरे। एव पावाइ मेहावी अज्झप्पेण समाहरे ॥

हे आर्य ! जैसे कछुआ अपना अहित होता हुआ देखकर अपने अगोपागो को अपने शरीर मे सिकोड लेता है, इसी तरह मेधावी भी विपयो की ओर जाती हुई अपनी इन्द्रियो को आध्यात्मिक ज्ञान से सकुचित कर रखते हैं। और भी कहा है—

आस्रवो भवहेतु. स्यात् सवरो मोक्षकारणम् ।
इतीयमार्हती दृष्टि - रन्यदस्या प्रपचनम् ॥

आश्रव (वाह्य-निष्ठा) भव का हेतु है और सयम-सवर (आत्म-निष्ठा) मोक्ष का हेतु है। अर्हत् की सार दृष्टि मे इतना ही है, शेप सारा प्रपच है।

वेदान्त के आचार्यों ने भी इन्ही स्वरो मे गाया है —

अविद्या वन्धहेतु स्यात् विद्या स्यात् मोक्षकारणम् ।
ममेति बध्यते जन्तु न ममेति विमुच्यते ॥

अविद्या (कर्म-निष्ठा) वन्ध का हेतु है और विद्या (ज्ञान-निष्ठा) मोक्ष का हेतु है।' जिसमे ममकार है वह वँधता है और ममकार का त्याग करने वाला मुक्त हो जाता है।

वेदो मे सयमी जीवन विताने की सुन्दर व्यवस्था का वर्णन है —ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम। अर्थात २५ वर्ष की वय मे लगन करते और ४५ वर्ष की वय मे पुन वे सासारिक कार्यों से निवृत हो जाते थे और सहर्ष मगलमय जीवन-यापन करते थे।

रघुवश नामक सस्कृत महाकाव्य के निर्माता महाकवि कालिदास ने रघुवश के राजकुमारो के कार्य कलापो का सुन्दर चित्रण निम्न श्लोक मे प्रस्तुत किया है -

शैशवेऽभ्यस्तविद्याना यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्द्धक्ये मुनिवृत्तीना योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥

अर्थात—रघुवश के कुमार शैशव काल मे विद्याध्ययन करते, यौवन वय मे जन-धन की वृद्धि करते और वृद्धकाल मे सयम योग की साधना करते हुए प्राणो का उत्सर्ग करते थे।

श्री राम, लक्ष्मण एव सीता सम्बन्धित एक बहुत ही सुन्दर प्रसग आता है जिसमे लक्ष्मण का सयमी जीवन अधिकाधिक निखरता हुआ बतलाया है—राम, लक्ष्मण और सीता एकदा तीनो वन-विहार कर रहे थे। सहसा भ० राम कही पीछे रह गये और सीता भगवती को अधिक थकान का अनुभव हो रहा था। सेवा चतुर भावज-भक्त लक्ष्मण को मालम होते ही निकट घने वृक्ष की शीतल छाया मे घुटनो का तकिया बनाकर मातृवत् सीता को आराम करने के लिए आमन्त्रण दिया। सीता भगवती आराम कर रही थी कि इतने मे राम शुक पक्षी के रूप मे परीक्षार्थ उस वृक्ष पर उपस्थित होकर बोले—

पुष्प दृष्ट्वा फल दृष्ट्वा दृष्ट्वा योषित यौवनाम्।
त्रीणि रत्नानि दृष्ट्वैव कस्य नो चलते मन ?

लक्ष्मण ! फल-फूल एव स्त्री के खिलते हुए यौवन को देखकर किसका मन चलित नही होता ? अर्थात् तीनो रत्नो को देखकर अवश्य ही मन चचल होता है। तब लक्ष्मण बोले—

पिता यस्य शुचीर्भूतो माता यस्य पतिव्रता।
उभाभ्या य. समुत्पन्न तस्य नो चलते मन ॥

हे शुक ! भाग्यवान् पिता एव पतिव्रता माता की पवित्र कूँख से जिसका जन्म हुआ है, उसका मन कदापि चलित नही होता है।

शुक ने पुन मार्मिक प्रश्न रखा—

घृतकुम्भ समा नारी तप्तागारसम पुमान्।
जानुस्थिता परस्त्री चेद् कस्य नो चलते मन ?

लक्ष्मण ! घृत कुम्भ सम नारी और तप्त अगार तुल्य पुरुष को माना है। तो भला जिसके घुटने पर पर स्त्री सोई हुई है क्या उसका मन सयम मे रह सकता है ?

प्रत्युत्तर मे सौम्यमूर्ति लक्ष्मण ने कहा—

मनो धावति सवत्र मदोन्मत्तगजेन्द्रवत्।
ज्ञानाऽकुशे समुत्पन्ने तस्य नो चलते मन ॥

हे शुक ! माना कि पागल हाथी की तरह मन इतस्तत अवश्य दौडता है किंतु जिसके पास ज्ञान रूपी अकुश विद्यमान है उसका मन कभी भी चलित नही होता है।

सागोपाग उत्तर को सुनकर शुक रूप मे रही हुई राम की अन्तरात्मा अत्यधिक प्रसन्न हुई, राम असली रूप मे प्रगट होकर भाई लक्ष्मण को स्नेह पूर्वक गले लगाया और अन्त करण से बोले—बन्धु ! तेरे सयमी जीवन से सारा रघुवश गौरवान्वित हो रहा है। वास्तव मे तेरे जैसे भाई दुनिया मे विरले ही होंगे। सोने को तपाने पर वह निखरता है उसी प्रकार लक्ष्मण तेरा अन्तर्जीवन भी श्लाघनीय है। इस प्रकार इस दृष्टान्त मे इन्द्रिय एव मन का महत्वशाली सयम दर्शाया है। जो नर-नारी के लिए आचरणीय और अनुकरणीय है।

सयम के इस तरीके से यदि आज का मानव-समुदाय काम ले तो फिर वैज्ञानिको को यह

कहना न पडे कि—मार दो ! खत्म कर दो। परन्तु खेद है कि आज के वैज्ञानिक वर्ग विपरीत गली मे गमन कर रहे हैं। पूर्वजो के महान् उपदेशो को भूल रहे हैं। उनके वाक्यो की अवहेलना-उपेक्षाकर रहे हैं। तभी तो अमानुषिक दानवी साधनो का आविष्कार करके मानव-जीवन पर कुठाराघात कर रहे हैं। औषधि इजेक्शनो का जो तरीका अपनाया जाता है भले ही वह बाह्यदृष्टि से आज के युग को सतुष्ट करने वाला हो, परन्तु आभ्यन्तर दृष्टि से जरा मनन-मथन किया जाय तो और अधिक स्वेच्छाचार, भ्रष्टाचार और असयम का वर्धक है। इससे मानव जीवन का पतन है। मानव जीवन का पतन ही समाज का और समाज का पतन ही राष्ट्र का पतन है।

मानव जीवन के पतन के कई कारण समाज और देश मे वर्तमान है। जिसमे कितनीक तो जीर्ण-शीर्ण रूढियाँ हैं। जो मानव-जीवन को असयम की ओर घसीटती हैं। जैसे कि—लघुवय मे माता-पिता अपने लडके-लडकियो के गले मे शादी रूपी जहरीला फाँसा डाल देते हैं। जिससे होनहार बालक-बालिकाओ का जीवन तार अस्त-व्यस्त हो जाता है। नेत्रो की रोशनी और चेहरे की चमक-दमक शुष्क नीरस और फीकी पड जाती है। वे फिर विचारे घाणी के बैल की तरह जीवन पर्यंत उसी विषैली फाँस मे मकडी के मानिंद जकडे रहते है। सयमी जीवन बिताने का अथवा सयम पालने का सुनहरा अवसर ही उन्हें प्राप्त नही होता है। और कितनेक पतन के कारणो का आविष्कार आज के वैज्ञानिको ने किया है। जिससे क्षण-क्षण मे नवयुवक का सयमी जीवन लूटा जा रहा है। प्रथम कारण—सिनेमा। इसके द्वारा नवयुवक समाज का भारी पतन हुआ है। गन्दे गायनो से भी मानव-जीवन का भारी पतन हुआ है। दिनो-दिन नानाविध फैशनो का जन्म हो रहा है। इससे भी हानि ही हुई है। शृगार-साहित्य तथा खोटे साहित्य का आज भी पर्याप्त रूपेण सृजन हुआ है और हो रहा है। मास अण्डे कैसे खाना, यह तरीका आज के अध्यापकगण नूतन साहित्य के आधार से नन्हे-नन्हें बालक-बालिकाओ को सिखाते हैं।

यह महती कृपा आज के वैज्ञानिक वर्ग की है। उपरोक्त कारणो से मानव के सयमी जीवन को भारी क्षति पहुँची है। इन पतनवर्धक आविष्कारो की सारी जिम्मेवारी आज के वैज्ञानिक वर्ग पर ही है। क्यो नही आज का जनतन्त्र-राष्ट्र इन उपरोक्त पतन के कारणो की इति श्री करें ? ताकि भ्रूण मारने की और औषधियाँ आदि देने की नौबत ही न आए। 'न रहे बास न बजे बासुरी'। क्यो न चोर की माँ को खत्म कर दिया जाय ताकि चोर का जन्म ही न हो। यानी असयम के स्रोत को ही नष्ट करना बुद्धिमत्ता है।

विकास की ओर बढने की भावना रखने वाले मानव के लिए सयमीवृत्ति का विकास करना अनिवार्य है। ऐन्द्रिक, शारीरिक और मानसिक शक्तियो का सुकार्यों मे व्यय करना ही सयम है। यह सयम या सयमी जीवन ही उत्थान है। और असयम या असयमी जीवन ही पतन है। सयम ही सुख का राजमार्ग और असयम ही दु ख की विकराल वीथिका है।

इस अशांति से बचने के लिये भ० महावीर, वैदिकशास्त्र और विनोबा आदि सयम की ओर निर्देश करते हैं कि—सयम सजीवनी है। जो दु ख से बेभान बने हुए प्राणियो को नव-जीवन प्रदान करती है। सयम ही वह रामबाण औषधि—इजेक्शन है जिसके सेवन करने मे अशातिरूपी व्याधि भस्म हो जाती है। सयम ही अमृत है और असयम ही विष है। सयम का अमृत पान करने के लिए भ० महावीर ने यही घोषणा की थी—"**सयम खलु जीवनम्**"।

☆

सच्चे मित्र की परख ४.

'सच्चे मित्र की परख' यह गुरुदेव का प्रेरक प्रवचन मानव समाज को सकेत दे रहा है कि—भौतिकवस्तु भले कितनी भी सुन्दरतम एव विपुल मात्रा मे तुम्हारे पास क्यो न हो; तथापि तुम्हारी रक्षा नहीं हो पावेगी चू कि—जड वस्तु स्वय पराधीन व परिवर्तनशील है और आत्मिक बन्धु आत्मा का धर्म है। वह मृत्यु रूपी गीदड से बचाने वाला और सदैव साथ निभाने वाला है। इन्हीं विस्तृत भाव व्यजनाओ का दिग्दर्शन निम्न प्रवचन मे है। पढ़िए

सपादक]

सज्जनो !

विश्व के समस्त पशु-पक्षियो की अपेक्षा मित्र की अधिकाधिक जरूरत मानव समाज के लिए रही है। मित्र-सहयोगी बिना मानव का जीना दुष्कर माना गया है। क्योकि—भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एव राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रो मे सुहृदयी की परमावश्यकता सर्व विदित है। कहा भी है—**न वृत्ति न च बान्धव**" अर्थात् जहाँ जीवनोपयोगी वृत्ति और हित चिन्तक न रहते हो, वहाँ बुद्धिजीवी को वास करना उचित नही है—**तत्र वासो न कारयेत्**"। कारण कि मानव को जगतीतल का सर्वोत्तम बुद्धि का धनी-मानी माना गया है। वस्तुत उसके बलिष्ट कधो पर विविध प्रकार के उत्तरदायित्व लादे हुए हैं।

कई प्रकार की योजनाए तो मानव के मन-मस्तिष्क से ही उद्भव होती है। और मानव के मन-मस्तिष्क की अनौखी सूझ-बूझ से ही वे योजनाए साकार होती है। उपर्युक्त कार्यो की सफलता-सबलता मे सलाह दे, सहयोग दे, एव प्रशस्त मार्गदर्शन भी दे । इस कारण पग-पग और डग-डग पर आत्म-विश्वास के साथ-साथ साथी के विश्वास की भी चाहना सदैव बनी रही है। वह विश्वास सही मित्र के बिना अन्यत्र दुष्प्राप्य माना गया है। अतएव मार्गदर्शन एव सलाह-सबल ठीक मिल जाने पर दुरुह मार्ग-मजिल को भी हँसी-खुशी और सुगमता-सुविधा के साथ पार कर ली जाती है। वरन् अकेले उस मार्ग को तय करने मे पैर लड़खडाने की सभावना बनी रहती है। इसलिये सखा-सहयोग की जरूरत प्रत्येक मेधावी मानव के लिए सर्वथा उचित है।

अब प्रश्न यही है कि—सच्चे मित्र कौन ? मित्रता का वास्ता किसके साथ जोडना ? ऐसे तो आज किसी को कुछ खिलाया कुछ दिया अथवा कुछ पिलाया कि बात की बात मे अनेक मित्रो की खासी भीड भी जमा हो जायेगी। लेकिन सभी को मित्रता की श्रेणी (स्टेज) पर ला बिठाना किंवा उन पर विश्वास कर लेना अपने आपको धोखे मे डालना है। चूँकि—केवल खाने, पीने के रसिक न किसी के हुए और न होने के हैं जैसा—"All are not friends that go to church,,

"जो अपने घर से निकल कर चर्च की ओर बढ रहे हैं, उन सभी जन को सज्जन (मित्र) समझने की भूल मत करो।"

यदि धन को सच्चा साथी स्वीकार कर लिया जायगा तो नि सदेह कई प्रकार के प्रश्न खडे होंगे। इस विशाल भूमण्डल पर अगणित धन कुवेर हो गये है जिनका अद्यावधि न कोई पता और न पहुँच आ पाई। उनकी पीढी दर पीढी न जाने कहाँ गायव हो गई ? मृत्यु के मुँह मे कैसे समा गये ? जव कि हीरे, पन्ने, मणि, मोती, सोना चाँदी, दास, दासी, पशु-पक्षी यहाँ तक कि आठो सिद्धियाँ, नव निधियाँ जिनके खाट तले दासीवत् खडी रहा करती थी। कहते हैं कि—सिकन्दर के खजाने की चावियाँ चालीस ऊँटो पर लदी की लदी रहती थी। ऐतिहासिक तथ्य है कि—वादशाह शाहजहाँ के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि—आज के इतिहास विज्ञ उसकी सम्पत्ति को आक नही सके। फ्रांस और ईरान के राज्य कोष की सयुक्त सम्पत्ति से भी अधिक सम्पत्ति शाहजहाँ के कोष मे थी। एक दिन कोषाध्यक्ष ने वादशाह से खजाने की दीवारे चौडी करने की अपील की। क्योकि सम्पत्ति के लिए खजाना छोटा पड रहा था। शाह ने इस समस्या के लिए "तख्त ताउस" नामक एक सिंहासन वनवाया। जिसका मूल्य उस युग मे ५३ करोड रुपये का था। उसमे कीमती हीरे, जवाहरात जडे थे। तख्ते-ताउस मे ३५ मन सोना और ७ मन जवाहरात लगा। राज्य के कुछ कारीगरो ने सात वर्षों मे तैयार किया था।

मुहम्मद गजनी १७ वार मे सोमनाथ के मदिर मे से वीस मन जवाहरात, २०० मन सोना, एक हजार मन चाँदी वह लूटेरा वनकर ले गया और रोकडे कलदारो की गिनती ही नही थी। तथापि धनपतियो की जान एक ही क्षण मे न जाने कहाँ छूमन्तर हुई, जवकि अपार ऐश्वर्य के अम्वार जिनके अगल-वगल मे पडे थे। जिन पर उनको पूर्ण विश्वास और गर्व था कि—कालरूपी पिशाच सिर पर मण्डराने पर मेरी रक्षा और कोई नही कर सकेंगे तो यह धन तो अवश्य करेगा। लेकिन यह मिथ्या भ्राति भी वालु की इमारत की तरह ढह गई। धन सम्पत्ति मे उस त्राणशक्ति का नितान्त अभाव पाया जाता है। गई हुई जान-ज्योति को फिर से ढूँढ लावे अथवा वाजार-मार्केटो मे से खरीद कर उस पार्थिव पुतले से पुन प्रतिष्ठित कर दे। परन्तु इस अद्वितीय प्रयोग मे धन सर्वथा असफलता का मुख ताकता रहा है। क्योकि कहा भी है—

"Money will not buy every thing" अर्थात्—धन द्वारा प्रत्येक वस्तु नही खरीदी जा सकती है। हाँ, धन द्वारा जड वस्तु की खरीदी का तोल-मोल अवश्य होता है, किन्तु आत्मिक गुणो का नही, आज श्रीमतो के घरानो मे सगाई एव विवाह के प्रसग पर सतानो की बिक्री तोल-मोल माँगनी का जो सिलसिला चल रहा है वह केवल उस पार्थिव देह का है, न कि देही का। यदि देही की कीमत करते तो शील-सदाचार एव सद्गुणो का माध्यम अपनाते।

कहते हैं कि—कवि माघ का विद्वान पुत्र कवि तो वना, किन्तु साथ ही साथ गरीबी की परिताडना से तग आकर चोरी कला भी सीख गया। एकदा वह घूमता २ अर्ध-रात्रि के समय राजा भोज के महल मे जा पहुँचा। उस वक्त भोज जाग रहा था। कही मुझे देख न ले इस कारण वह भोज के पलग के नीचे जा बैठा। स्वर्णिम पलग पर लेटा हुआ सम्राट भोज अपने तुच्छ वैभव के सम्बन्ध मे गर्वोक्तियाँ इस प्रकार अभिव्यक्त कर रहा था।

चेतोहरा युवतय सुहृदोऽनुकूला,
सद्वान्धवा प्रणयनम्र गिराश्च भृत्या।
वल्गन्ति दति निवहास्तरलास्तुरगा,

—चित्ताकर्ष कई युवतियाँ (रानियाँ), आज्ञा पालक अनेकानेक सज्जनवृन्द, सहचरी बान्धव, जी हुजूरी करने वाले सैकडो नौकर-चाकर, मदोन्मत्त हाथी एव घोडो की सुदूर लम्बी कतार एव अखूट धन-राशि की मुझे प्राप्ति हुई है। मेरी शानी का दूसरा सम्राट् आसपास है कहाँ ? इस प्रकार कहता हुआ श्लोक के तीन चरण तो बना लिये किन्तु चतुर्थ चरण के वाक्य विन्यास ठीक प्रकार से जम नही रहे थे। उपर्युक्त गर्वित बातें सुनकर उस चोर पंडित से रहा नही गया। वह एकदम चौथे पाद की पूर्ति करता हुआ बोल पडा—'समीलिते नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति'। राजन् ! तेरी आँखे बन्द हुई अर्थात् तुझे निद्रा आई कि यह महा मूल्यवान् धन राशि गायब हुई समझो। यानि मैं चोरी कर ले जाऊँगा। सुनकर राजा चोक पडा। यह कौन ? आवाज आई कहाँ से ? इतने मे तो स्वय चोर सम्मुख खडा था। उसने अपना परिचय कह सुनाया। नृप उसके उद्बोधन पर बेहद खुश था। तू चोर नही, मेरा गुरु है। तेरे चतुर्थ पाद ने मेरी अन्तरात्मा को जगा दिया है। मैं मिथ्या अभिमान पर व्यर्थ ही फूल कर कुप्पा हो रहा था, वास्तव मे यह वैभव मैं जिन्दा हूँ वही तक है। मेरी आँखें बन्द हुई कि सेल खत्म है। कहते हैं कि नृप भोज की गुणग्राहक बुद्धि ने फिर कभी भी इस अनित्य वैभव पर गर्व नही किया।

हाँ तो धन के चमकते-दमकते ये ढेर यहाँ-वहाँ धरे पडे हैं लेकिन वे भोक्ता-द्रष्टा एव सग्रह कर्ता अनन्त काल के गाल मे समा गये। अत विश्वास किया जाता है कि—पार्थिव वैभव मानव का सच्चा मित्र नही है। बल्कि यदा-कदा धन, नर-नारी के लिये घातक भी बन जाता है। इस कारण धन को जीवन का सगी मानना भारी भूल ही मानी जायेगी। क्योकि सच्चा जो साथी होता है वह प्रत्येक स्थिति मे साथ देता है। जैसा कि—

उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे।
राज द्वारे श्मशाने च यद्तिष्ठति स बान्धव।

किनु धन ऐसा नही कर पाता है। धन कहता है—मैं पार्थिव शरीर का अश हूँ। मेरे विषय मे पडित जन ठीक कहते हैं "धनानि भूमौ" यह सिद्धान्त सत्यमेव सही है।

पशु-पक्षी भी मित्र की श्रेणी मे नहीं —

पशु-पक्षियो को सच्चा मित्र मानना युक्ति सगत नही जचता, कारण कि पशु-पक्षियो मे प्रभूत अविवेक, अज्ञानता एव असहिष्णुता पाई जाती है। हिताहित के थर्मामीटर का उनके पास अभाव सा रहता है। लक्ष्य और उद्देश्य विहीन उनका सारा जीवन ज्यो का त्यो खाते-पीते एव वजन ढोते एक दिन काल के भेट हो जाता है। न खुद के लिए और न अन्य के लिए कुछ रचनात्मक कार्य कर पाते हैं। हाँ यदा-कदा मूर्खता और अविवेक के कारण वे अपने प्यारे पालक-पोषक के लिए घातक बन जाते है।

बुद्धिजीवी के समझने के लिए पचतत्र नामक ग्रथ मे बहुत ही सुन्दर एक कहानी इस प्रकार है—अत्यधिक प्रेमपूर्वक एक राजा ने एक अनाथ बन्दर को पाला। समयानुसार उस बन्दर शिशु को मानवीय सस्कार एव कुछ-कुछ मानवीय भाषा ज्ञान भी सिखाया गया। ताकि पाशविक सस्कारो मे सभ्यता का सचार होवे, बदर की अभिवृद्धि पर राजा काफी खुश था। अगरक्षक के रूप मे उस बन्दर को नियुक्त भी किया गया। एकदा राजा शयनकक्ष मे सोया हुआ था। बन्दर हाथ में तलवार लेकर अपने स्वामी के अग की देख भाल कर रहा था। किंतु मक्खियाँ नही मान रही

थी। वार-वार आकर नृप की देह पर वैठ रही थी। वस्तुत परिणाम के सोचे विना उस विवेकहीन वन्दर को आवेश आया और आवेश के अन्तर्गत तलवार राजा की छाती पर दे मारी। मक्खियाँ तो भाग गई किंतु उस घटना स्थल पर राजा की मृत्यु हो गई। इसलिए कहा है—

पडितोऽपि वर शत्रु न मूर्खो हितकारक।
वानरेण हतो राजा ...।

कतिपय जानवरो की जातियाँ ऐसी भी पाई जाती हैं जैसा कि—कुत्ता, हाथी, गाय, घोडा, तोता आदि २ जो स्वामी भक्त होते हैं। घातक एव अनिष्टकारी तत्वो से अपने स्वामी को सावधान एव सुरक्षित करने मे काफी मददगार सिद्ध हुए। अल्प समय के लिए भले उन्हे अगरक्षक मान लिया जाय, लेकिन आत्मिक मित्र की कोटि मे नही। क्योकि काल रूपी वाज के समक्ष वे भी निर्वल-निराधार वन जाते हैं तो अपने शासक महोदय को कैसे वचा सकते हैं? अतएव ठीक ही कहा है—'पशवश्च गोष्ठे' अर्थात् पशु-पक्षी वाडे मे खडे २ देखते, रेंगते, चिल्लाते, चित्कारते ही रह जाते है। और मालिक को सव कुछ छोड कर रवाना ही होना पडता है।

पारिवारिक सदस्य भी नहीं —

पारिवारिक सदस्य भले माता, पिता, भाई, भगिनी, भार्या, काका, मामा आदि कोई भी क्यो न हो, उनके जीवन के कण-कण और रोम-रोम मे मतलव की वू कूट-कूट के भरी रहती है।

जो स्वार्थ गगन मे उडाने ले, वे सच्चे मित्र कहलाने के हकदार कैसे? हाँ, यह भी माना कि यदा-कदा लाभ सुख-सुविधा पहुँचाने मे उनका पूरा-पूरा सहयोग साथ मिलता है। लेकिन कहाँ तक? 'मुल्ला की दौड मस्जिद तक' की कहावत के अनुसार मतलव सधे वहाँ तक। वरना वही तिरस्कार, वहिष्कार, दुत्कार से सजा गुलदस्ता उपहार मे दिया जाता है।

जव जीवन की सरसब्ज वाटिका हरी-भरी, फूली-फली रहती है तव तो सव आ आकर ऐश आराम आनद लूटते है। कदाच आपत्ति-विपत्ति की श्याम घटा अनायास ही आ धमकती है तो सव यही कहते सुने गये हैं कि वेटा! ये कर्म तो तुझे ही भोगने पडेंगे, चूँकि तूने ही किये हैं। कर्म कर्ता का पीछा करते हैं यह एक शाश्वत नियम है। हाँ, यदि शरीर पर सोने-चादी का वजन हो तो वेटा! उसे उठाकर एक तरफ रख लें। लेकिन यह दु ख दर्द की घटा हमारे लिए असहाय एव अभोग्य है।

इस प्रकार मृत्यु के भयावने थपेडो से मुक्त करने के लिये वे सर्वथा कमजोर-कातर रहते है। अत ठीक ही कहा है—"भार्यागृहद्वार जन श्मशाने" अर्थात् ज्यादा से ज्यादा साथ भी देंगे तो कहाँ तक? घर वाली गृह द्वार तक, अन्य अडोसी-पडौसी व सगे-सम्वन्धी लोक-लाज के कारण श्मशान घाट तक, अन्तिम राम-राम कर, धाम काम की ओर पुन लौट आते है। अतएव उनको पक्का मित्र मानना किंवा उन पर विश्वास कर वैठे रहना और भविष्य के लिए तैयारी नही करना इससे वढकर और क्या मूर्खता होगी!

धन दारा अरु सुतन मे रहत लगाए चित्त।
क्यो रहीम खोजत नहीं गाढ़े दिन को मित्त॥

उपरोक्त मित्रो की कसौटी होने पर अव आध्यात्मिक क्षेत्र मे गोते लगाना उचित ही है। क्योकि सच्चे मित्र मुक्तावलियो की माता आध्यात्मिक स्थली मानी गई है। अतएव जिनकी जहाँ प्राप्ति

हो, वही पर मेधावी मानव को खोज करनी चाहिए अन्यथा सारा किया-कराया परिश्रम बेकार व "खोदा पहाड निकली चूहिया' वाली कहावत चरितार्थ होगी। अतएव सही मित्र के विषय मे आगम पुराण कहते है—"धर्मो मित्र मृतस्य च।"

मानव मात्र का ही क्यो, प्राणि मात्र का सच्चा सही मित्र अढाई अक्षर वाला वह "धर्म" है। जिनके विषय मे सर्व ग्रथ-पथ एव मत एक स्वर से गुणगान गीत गाते हैं—

जरा मरण वेगेण वुज्झमाणाण पाणिण।
धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तम ॥

हे मुमुक्षु! जन्म, जरा, मृत्यु रूपी जल के प्रवाह मे डूबते हुए प्राणियो को मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला धर्म ही निश्चल आधार भूत स्थान और उत्तम शरण रूप एक टापू के समान है। अतएव जो नर-नारी धर्म की हर तरह से रक्षा करते हैं वे अपने अमूल्य जीवन की रक्षा करते है और जो धर्म को फलाते-बढाते है नि सदेह वे अपने जीवन को ठोस मजबूत एव परिपुष्ट कर रहे हैं।

भौतिक विज्ञान की चकाचौंध मे उन्मत्त बना हुआ आज का मानव समाज जिसमे भी अधिक रूप से विद्यार्थी समाज सचमुच ही आर्यसस्कृति व सभ्यता के विपरीत चरण धर रहा है। तभी तो अनुशासन हीनता के जहाँ-तहाँ दिग्दर्शन हो रहे हैं। ये सब चलचित्र अधर्म की निशानियाँ व कुविद्या का प्रभाव ही माना जायेगा।

अहिसा धर्म के पुजारी, आज हिसा धर्म के एजेंट बनते जा रहे हैं। जहा तक धर्ममित्र की अपेक्षा के बदले उपेक्षा रहेगी, वहाँ तक मानव समाज को दुर्भिक्ष से सुरक्षित रहना कठिन रहेगा, स्पष्ट भाषा मे कहे तो मानव के पापमय कुकृत्यो ने ही आज पशु-पक्षी आदि सभी को तग कर रखा है। "ले डूबता है एक पापी नाव को मझधार मे" यह कहावत आज चरितार्थ हो रही है। तभी तो कुदरत अपना प्रकोप बता रही है।

यदि राष्ट्र व समाज का वास्तविक विकास करना है तो प्रत्येक भारतीय को धर्म रूपी सुहृदय की शरण मे जाना ही पडेगा तभी सम्भव है कि मानव समाज की रिक्त गोद अक्षुन्न, अखण्ड, अमिट सुख-समृद्धि से भर उठेगी, बस वही दिन सतयुग का प्रथम दिन माना जायगा।

धर्मेण हन्यते व्याधिः धर्मेण हन्यते ग्रह।
धर्मेण हन्यते शत्रु. यतो धर्मस्ततो जय ॥

५. भगवान महावीर के चार सिद्धान्त

जीवन में अहिंसा। विचारों में अनेकान्त। वाणी में स्याद्वाद। समाज मे अपरिग्रहवाद।

गुरुप्रवर का यह प्रेरक प्रवचन एक मौलिक महत्व रखता है। भाव गांभीर्य मय यह प्रवचन सचमुच ही वर्तमान युगीन सामाजिक उलझी गुत्थियो को सुलझाने मे सक्षम है। हाँ, यदि भगवान् महावीर प्रदत्त देशना को सही तौर-तरीके से मानव निज जीवन मे उतारने का प्रयत्न करें, उस पर चलने मे तत्पर हो तो निःसंदेह उभरे हुए वातावरण मे आशातीत राहत मिल सकती है। महावीर जयती के मगल प्रभात मे जावरा की विशाल मानव मेदिनी के समक्ष दिया गया प्रवचनांश जो पाठकगण के हितार्थ यहाँ अंकित किया गया है—

सपादक]

'प्यारे सज्जनो!

अहिंसा के प्रतिष्ठापक भ० महावीर इस युग के अन्तिम तीर्थंकर हुए हैं। विक्रम से लगभग चार सौ सत्तर वर्ष पूर्व माता त्रिशला की कुलीन कुक्षि से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की रात्रि को 'कुण्डलपुर' नामक नगर मे चरम तीर्थंकर भ० महावीर का जन्म कल्याणोत्सव सम्पन्न हुआ था। पुत्ररत्न के शुभागमन पर सम्राट् सिद्धार्थ ने करोडो का दान-पुण्य किया एव हर्षोद्घोष से जगतीतल को भर दिया था।

पूर्वस्थिति · सिंहावलोकन

भगवान् महावीर के जन्म के समय समाज की स्थिति बहुत ही विषम थी। मानव जीवन मे सर्वत्र छुआछूत, स्वार्थ परायणता व हिंसा का साम्राज्य व्याप्त था। उस समय निम्न सिद्धान्त मानव समाज मे गहरी जडे जमाये बैठा था "जीवो जीवस्य भक्षणम्" अर्थात् यह पाखण्ड धर्म के नाम पर जोर-शोर से चल रहा था। फलस्वरूप जो धर्म प्राणी मात्र के सुख-शांति और उद्धार के लिए माना जाता था वही हिंसा-हत्या विषमता एव अशांति का अस्त्र बना हुआ था।

होनेवाली हिंसा और व्याप्त विषमता से भगवान महावीर अहर्निश चिंतित रहते थे। करुणा-पूरित उनका अन्तर्हृदय मूक प्राणियो की दुर्दशा पर नवनीत सदृश द्रवित हो जाता था। वे मानव समाज के लिए ही नही, अपितु प्राणी मात्र के लिए अहिंसा की पुन प्रतिष्ठा करना चाहते थे। सभी अपने-अपने क्षेत्रो मे समान हैं, सभी को एक समान जीने का अधिकार है। फिर विषमता की विष वल्लिका समाज के बीच क्यो पनप रही है? वस्तुत भ० महावीर चाहते थे—यत्र तत्र ऊँच-नीच की इति श्री हो और वहाँ सर्वोदय का नारा बुलद होवे एव प्रत्येक नर-नारी समाजवाद को समझे और कार्यान्वित करें। इस कारण परमोपकारी तीर्थंकर ने मानव हितार्थ मुख्य चार सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। जो जैन धर्म की सुदृढ नीव कही जा सकती है। जिस पर जैनागम का भव्य वृक्ष पल्लवित-पुष्पित हो रहा

है। वे सिद्धान्त निम्न प्रकार है—जीवन मे अहिंसा, विचारो मे अनेकातदृष्टि, वाणी मे अपेक्षावाद एव समाज मे अपरिग्रह सिद्धान्त।

जीवन में अहिंसा :

भ० महावीर ने धर्म के विस्तृत क्षेत्र मे सर्व प्रथम अहिंसा-शख पूरा। जीवन के अस्तित्व का सद्भाव अभिव्यक्त कर प्राणी मात्र को जीने की स्वतन्त्रता प्रदान की। उन्होने वताया कि—कोई भी नर-नारी अपने निजी स्वार्थ के लिए किसी अन्य भूत-सत्व को मिटाता अथवा मरने का दुस्साहस करता है, तो वह अपने को ही मारता है, मिटाता है जैसा कि—

"तुमसि नाम त चेव ज हतव्व ति मन्नसि।"

—आचारागसूत्र, १।५।५

नि सदेह वह अहिंसावृत्ति से दूर भागता है। माना कि स्वार्थी नर नारी कभी भी दूसरो के हित की परवाह न कर अपने हित की रक्षा करते हैं। इसकेलिए वह अपर जीवो के अस्तित्व को मिटाने का दुस्साहस करता है। वस्तुत इस दयनीयवृत्ति से उसे आत्मशाति कैसे मिल सकती है? चू कि अन्याय अत्याचार एव हिंसा-हत्या आदि अशाति के मूल कारण है। जिन्हे वह अन्तर्हृदय मे स्थान दे वैठा है। फलस्वरूप वह भयभीत वना रहता है, कही मेरा शत्रु मुझपर आक्रमण न कर दे। मेरे अस्तित्व एव सत्ता को कोई छीन नही ले। इस प्रकार सकल्प-विकल्प के अन्तर्गत जीवन विताता हुआ सिद्धान्तो के विपरीत आचरण करता है। सिद्धान्त मे तो कहा है—

"सव्वे जीवा वि इच्छति जीविउ न मरिज्जिउ।"

—दशवैकालिक सूत्र

अर्थात्—सभी जीव राशि मरने की अपेक्षा जीना और दुख की अपेक्षा सुखी होना चाहते हैं। सभी को जीवन प्रिय है। अतएव ज्ञानी के ज्ञान का यही सार है कि—वे सभी को समान जाने एव ऐसा जानकर किसी की हिंसा न करे। **"एव खु नाणिणो सार ज न हिंसइ किंचण"**।

—सूत्रकृताग सूत्र, १।१।४।१०

आर्य धर्म के प्रति जो पूर्ण श्रद्धावान् है, उन्हे चाहिए कि वे **"अहिंसा परमो धर्म"** के केवल नारे लगाकर जीवन को वहलावे नही, अपितु "जीवो और जीने दो" को अन्तरात्मा मे स्थान दें। भावात्मक दृष्टि से उसे कार्यान्वित करे। अहिंसा भगवती का अत्यधिक महत्व है -

एसा भगवई अहिंसा—भीयाण व शरण, पक्खीण व गयण, तिसियाण व सलिल, खुहियाण व असण, समुद्द मज्झे व पोतवाहण, दुहियाण च ओसहिवल, अडवि मज्झे व सत्थ गमण, एत्तो विसिट्ठ तरिया अहिंसा।"—(प्रश्नव्याकरण सूत्र)

अहिंसा भगवती—त्रसितो के लिए शरणदायी, प्यासो के लिए पानी, वुभुक्षुओ के लिए आहार, ससार-समुद्र मे पोत (जहाज) के समान, रोगियो के लिए औपधि एव भव-वन मध्य सार्थवाह के समान है, ऐसा भ० महावीर ने कहा है। तदनन्तर ही अहिंसामय जीवन के अतराल से मैत्री भावना का मधुर निर्झर प्रस्फुटित होता है। तदनन्तर ही पर वेदनानुभूति हो सकती है।

विचारो में अनेकांत दृष्टि

"जीवाजीवे अयाणतो कह सो नाहीइ सजम।" अर्थात्—जीव-अजीव के स्वरूप को नही

जानने वाला वह साधक सयम को कैसे जानेगा ? वस्तु विज्ञान की जानकारी के अभाव मे विचारो मे अनेकात नही आ सकती और अनेकात सिद्धान्त के विना वस्तु का वास्तविक परिज्ञान मुमुक्षु को कैसे होगा ? कहा है—"**अर्थस्तुस्वतो न सम्यक् नाप्यसम्यगिति**"। (स्याद्‌वाद मजरी टीका) अर्थात् वस्तु अपने आप मे न बुरी न अच्छी है। अच्छाई और बुराई का प्रश्न प्रयोगकर्ता पर निर्भर है। क्योकि वाद विवाद वस्तु मे नही। कभी भी ऐसा अवमर नही आया कि वस्तु वस्तुत्व से मर्वथा नष्ट हो गई हो, इतना अवश्य ध्यान रहे कि वस्तु की पर्याय मे प्रतिपल परिवर्तन अवश्य होता रहता है।

जैनदर्शन किसी भी सत् द्रव्य को वेदान्त दर्शन की भाँति केवल ध्रुव या नित्य नही मानता, वौद्ध दर्शन की भाति क्षणिक, एव साख्य दर्शन की तरह ऐसा भी नही मानना कि—पुरुप तो कूटस्थ नित्य और प्रकृति परिणामी नित्य है। अपितु अर्हत्‌दर्शन की यह विशेपता रही है कि—वह सभी पदार्थों को परिणामी के साथ ही नित्य भी मानता है। अर्थात् "**सर्वेहि भावा द्रव्यार्थिक नयापेक्षया नित्या पर्यायार्थिक नयापेक्षया अनित्या.**।" स्पष्ट वात यह है कि—भले अचेतन या चेतन, अमूर्त या मूर्त, सूक्ष्म या स्थूल इत्यादि समस्त पदार्थ "**उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत्**।" जो उत्पत्ति विनाश और स्थिरता युक्त है वही सत् है। जिसके सामान्य लक्षण निम्न हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, सत्व और अगुरु लघुत्व। आचार्य प्रवर ने विपय को अति सुगम वना दिया है। एक लघु रूपक के माध्यम से—

घटमौलि - सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थिति स्वयम्।
शोक प्रमोद माध्यस्थ जनो याति सहेतुकम्॥

—न्यायदर्शन

तीन मानव एक स्वर्णकार की दुकान पर पहुँचे। एक स्वर्णिम कुम्भ खरीदने का इच्छुक, दूसरा मुकुट का और तीसरा केवल सोने का ग्राहक था। दुकान पर पहुँचते ही देखा कि स्वर्णकार सचमुच ही कुम्भ को तोडकर मुकुट वना रहा है। कुम्भ पर्याय का विनाश होता देखकर कुम्भ खरीददार को दुख हुआ, मुकुट पर्याय की उत्पत्ति को देखकर मुकुट लेने वाले को प्रसन्नता हुई और केवल सोने के ग्राहक को न शोक न हर्प अपितु वह मध्यस्थभाव मे था। कारण कि—मूल वस्तु ज्यो की त्यो स्थिर थी।

हाँ तो, जिस वस्तु को जिस दृष्टिकोण से तुम देख रहे हो, वह उतनी ही नही, कई दृष्टिकोण से विरोधी मालूम होती है। विरोधी धर्म भी वस्तु मे विद्यमान हैं। अपने मन मे यदि पक्षपात की भावना को तिलाजलि देकर दूसरे के दृष्टिकोण से विपय को देखो तो पता चलेगा कि—वस्तु कैसी है ? वस्तु न एक धर्मात्मक है और न सर्वधर्मात्मक। अनतधर्मात्मक वस्तु मे सर्व समस्याओ का समाधान निहित है। अतएव जड के अनन्त धर्म जड मे और चेतन के अनन्त धर्म चेतन मे विद्यमान हैं। एक दूसरे का धर्म न पर द्रव्य मे प्रविष्ट होता है और न निज स्वभाव से पृथक ही। कहा है—"**सग सग भाव न विजहति**" अर्थात् निश्चय नय की दृष्टि से कोई भी द्रव्य निज स्वभाव का कदापि परित्याग नही करता है। अगर ऐसा होने लग जाय तो वस्तु सर्वथा नष्ट हो जायेगी।

सर्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च।
अन्यथा सर्व सत्व स्यात् स्वरुपस्याप्यसभव॥

- न्यायदर्शन

स्वभाव की अपेक्षा सभी वस्तुएँ सद्‌भावमय हैं और परभाव की अपेक्षा नास्तिरूप है।

यदि यह व्यवस्था नही मानी जाय तो वस्तु का अस्तित्व खतरे मे पडना स्वाभाविक है फिर न जड़ रहेगा और न चेतन ही । अतएव सभी स्वतत्र सत्ता के धारक हैं । तात्पर्य यह है कि वस्तु अत्यधिक विराट-विज्ञान मय है । इतनी विस्तृत है कि अनन्त दृष्टिकोण मे देखी और जानी जा सकती है । अपनी दृष्टि का आग्रह करके दूसरो की दृष्टि का तिरस्कार करना स्वय की ना समझी है ।

इस तरह जब वस्तु अनन्तधर्मात्मक है तब मनुष्य सहज ही मे यो सोचने लगेगा कि दूसरा मानव जो कुछ कह रहा है उसके अभिप्राय को भी स्थान देना चाहिए । जब इस प्रकार वैचारिक समन्वय का सुन्दर सगम हो जायगा, तब उलझी हुई सर्व समस्या स्वत सुलझ जायगी । भगवान् महावीर का यह अद्वितीय सिद्धान्त रहा है ।

वाणी मे स्याद्वाद :

'स्यात्' का अर्थ कथचित् है और वाद का अर्थ है—कथन । इस प्रकार स्याद्वाद का अर्थ कथचित् कथन होता है इसका अर्थ 'शायद्' नही लेना चाहिए । क्योकि शायद् शब्द का अर्थ सशय है, जो कि—मिथ्याज्ञान का प्रतीक है । और न स्याद्वाद का अर्थ सभावना लिया जा सकता है । क्योकि सभावना मे वस्तु का असली स्वरूप नही आ सकता । इसी प्रकार स्याद्वाद का अर्थ न सशयवाद है न अनिश्चयवाद और न सभावनावाद किन्तु अपेक्षा प्रयुक्त निश्चयवाद है—जैसे एक स्त्री बुढिया होने से दादी कहलाती है, किंतु उसका बूढा होना 'दादी' का ही सूचक नही है अपितु वह अपेक्षा से किसी की नानी, मामी, बुआ और किसी की भाभी भी कहलाती है । इस प्रकार ही बुढिया अनेकानेक विशेषणो से पुकारी जाती है । वस्तुत इससे न तो बुढिया को ही बाधा है और न पुकारने वाले को आपत्ति है । इस सिद्धान्तानुसार एक वस्तु जिसमे अनेक धर्म है उन्हे अपेक्षा से कहे जाते है । जैसा कि—

> दशरथ राजा के पुत्र राम - लव कुश के पिता कहलाते हैं ।
> पिता-पुत्र के उभय धर्म उस रामचन्द्र मे पाते हैं ।।
>
> —जैनदिवाकर जी म०

दशरथ राजा की अपेक्षा राम उनके पुत्र है तो लव-कुश की अपेक्षा राम पिता भी है । अनेक अपेक्षाओ से अनेकधर्म एक वस्तु मे विद्यमान हैं । इस प्रकार सर्वत्र स्याद्वाद शैली मे कार्य करना चाहिए । फलत अनेक विवाद स्वत हल हो जायेगे । क्योकि—कहनेवाला अपने दृष्टिकोण से कहता है और सुननेवालो को कहने वालो का दृष्टिकोण समझना चाहिए । यदि वक्ताओ के विचारो से वह सहमत नही हो तो सुनने वालो को अपना अभिमत वक्ताओ के समक्ष रखना चाहिए और समझना चाहिए कि मैं इस अपेक्षा से कह रहा हूँ । अतएव विवाद छोडकर अनेक धर्मात्मक वस्तु को समझना चाहिए । इसको समझने के लिए छ अन्धो की हाथी वाली कहानी पर्याप्त रहेगी ।

उपर्युक्त पक्तियो मे अनेकात व स्याद्वाद पर पृथक-पृथक प्रकाश डाला है । यद्यपि अधिक रूपेण आज का समाज दोनो शब्दो मे विशेष भेद नही मानता है किंतु दोनो मे अवश्य अन्तर है । अनेकान्त मानस शुद्धि के लिए है और स्याद्वाद वचन शुद्धि के लिए है ।

समाज में अपरिग्रहवाद :

जैन मुनि के जीवन के लिए परिग्रह रखना अथवा रखवाने का विधान नही है । यद्यपि वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि मुनि जीवन मे सम्बन्धित है तथापि उपर्युक्त धार्मिक उपकरणो को भ० महावीर

ने परिग्रह नही कहा है जैसे—"**न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा ।**" अपितु सयम के बहिरग साधन अवश्य माने है । इन पर मुनि की ममत्व बुद्धि नही रहती है । अनासक्त भावना पूर्वक उपयोग मे अवश्य लाना है । इस कारण मुनि जीवन को अपरिग्रही जोवन माना है ।

यद्यपि गृहस्यजीवन के लिए परिग्रह रखने का किसी भी तीर्थंकर ने बिल्कुल निपेध नही किया है किन्तु मर्यादा बाधने का स्पष्ट उल्लेख है । अर्थात् जितनी भी वैभव धन सपत्ति रखनी है उतनी रखने के बाद तो परिमाण (मर्यादा) इच्छा निरोध करना ही चाहिए । इच्छानिरोध नही करने पर रेगिस्तान की तरह उस देहधारी के मन-मस्तिष्क मे निरन्तर इच्छाओ का जाल फैलता रहता है । फलस्वरूप अपार पूँजी पास होने पर भी उस स्वामी का जीवन चिन्तातुर एव व्याकुल दिखाई देता है । क्योकि—वह दुनियाँ भर का धन इकट्ठा करना चाहता है जिसके कारण वह दूसरो का विनाश करने पर उतारु भी हो जाता है । इसी दुर्भावना से प्रेरित होकर पूर्वकाल मे बडे-बडे सघर्ष, द्वन्द्व हुए हैं । परिग्रहवाद ने ही मानव भावना मे, भाई-भाई मे, बाप-बेटे मे एव पडोसी-पडोसी के बीच द्वेप-क्लेश की दीवारें खडी की हैं । खूनी क्राति का जनक यदि है तो परिग्रहवाद ही है । जिसमे भयकरता, विपमता, हत्या-हिसा का बोल-बाला है । जैसा कि—

आदमी की शक्ल से अब डर रहा है आदमी ।
आदमी को लूट कर घर भर रहा है आदमी ।।
आदमी ही मारता है मर रहा है आदमी ।
समझ कुछ आता नहीं क्या कर रहा है आदमी ।।

अतएव अपरिग्रह सिद्धान्त मानव समाज के लिए सर्वोदय का प्रतीक है । जिसके अन्तराल मे "**आत्मवत् सर्वभूतेषु**" और "**वसुधैव कुटुम्बकम्**" की मगल भावना छिपी हुई है । 'सत्य, शिव, सुन्दरम्' के सुमधुर स्वर गुजारव के साथ सभी प्राणियो का भाग्योन्मेष विकसित होता है । बहिरग एव अतरग जीवन सुख-सुविधा-सतोप से भर जाता है जिसके अन्दर न शोपण एव न दलन की गुजाइश है ।

जो मानव अपरिग्रह सिद्धान्त का उल्लघन करता है वह सचमुच ही मानवता के सिद्धान्त का लोप करता हुआ महत्वाकाक्षी बनता है । अपरिग्रह सिद्धान्त का जब तक समाज मे अमल होता रहेगा, वहाँ तक मानव समाज सुख शाति का अनुभव करता रहेगा और व्यक्ति-व्यक्ति मे आत्मीयता भाव की सवृद्धि भी होती रहेगी । हाँ, तो मेरा सभी से अनुरोध है कि भ० महावीर द्वारा प्रतिपादित 'जीवन मे अहिंसा' 'विचारो मे अनेकांत' 'वाणी मे स्याद्वाद दृष्टि' एव 'समाज मे अपरिग्रहवाद' इन चार सिद्धातो को गहराई से सोचे, समझे और जीवन मे उतारे ।

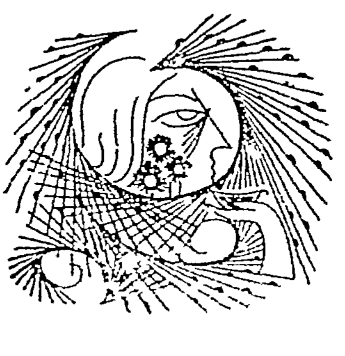

मृत्युंजय कैसे बने ? ६.

गुरु प्रवर का 'मृत्युंजय कैसे बने ?" नामक यह प्रवचन दुनिया को अटपटा सा प्रतीत होगा। क्योंकि कलात्मक जीवन यापन करना सभी के लिये स्पृहणीय रहा है। किन्तु मृत्युंजय कला के लिए क्या प्रशिक्षण ग्रहण करना आवश्यक है ? क्यो नहीं ! जिसको ठीक तौर-तरीके से मरना नहीं आया सच-मुच ही वे नर-नारी मृत्युंजय कैसे बनेंगे ? कहा भी है "मरने पर ही पाइए पूरण परमानन्द' अर्थात पार्थिव देह का परित्याग किये विना पूर्णानन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती है। फलस्वरूप देहधारी को मृत्युंजय कला का ज्ञान विज्ञान व तत्सम्बन्धी मार्ग-मंजिल की जानकारी उतनी ही जरूरी है जितनी अनभिज्ञ राहगीर के लिए द्रव्य राह की जानकारी। माना कि—कालानुसार पामर प्राणियो को मरना ही पडता है। आचाराग सूत्र मे भी कहा—"नत्थि कालस्स अणागमो" मौत के लिये कोई काल नहीं है।

आज जहां-तहां अपघात दुर्घटना का दौड-दौडा है। इस दृष्टि को सामने रखकर गुरुदेव ने बालमरण एवं पंडितमरण की व्याख्या प्रस्तुत कर दुनिया के मिथ्यान्धकार को हटाने का सफल प्रयास किया है। —सपादक

प्यारे सज्जनो !

आज के इस भौतिकवादी युग मे जैसे आजादी, आवादी और वर्वादी आदि का विस्तार हुआ और हो रहा है, वैसे ही 'आत्म हत्या' नामक वीमारी का विस्तार भी क्या जैन समाज, क्या वैष्णव समाज और क्या इतर समाज आदि मे दिन दुगुना और रात चौगुना पराकाष्ठा को पार कर आगे वढ रहा है।

नित्य प्रति समाचार पत्रो मे ऐसी घटनाओ के समाचार पढते हैं। कई वार हम अपनी आँखो के समक्ष देखते और कानो से सुनते भी हैं कि—अमुक व्यक्ति, अमुक महिला और अमुक लडके ने विष खाकर, अग्नि मे जलकर, वृक्षादि से फासी खाकर, शस्त्र द्वारा घात कर, कूप-बावडी-पानी मे डूबकर और पहाड इत्यादि से गिरकर आत्म-हत्या कर ली। ऐसे हृदय विदारक सन्देश आए दिन कर्ण-कुहरो मे गूंजते ही रहते हैं।

"कारणेन विना कार्य न भवति" इस सत्य युक्ति के अनुसार अव हमे उपर्युक्त कार्य के कारणो की ओर सिंहावलोकन करना है। आज राष्ट्र समाज और परिवारो मे इस आत्म-हत्या के कारण भूत कई दूषित तत्व और कई जीर्ण-शीर्ण, सडी-गली रूढियां परम्पराये वर्तमान हैं। जैसे आर्थिक कमजोर स्थिति, पारिवारिक कलह क्लेश, अप्रशस्त राग-मोह, लोभान्धता और पूर्णत धार्मिक ज्ञान का अभाव। आदि-आदि कारणो से स्वत मानव धैर्य से चलित और लज्जित हो कर आत्मघात कर वैठना है और कई व्यक्ति लोभान्ध होकर अन्य व्यक्ति की भी हत्या कर वैठते हैं। इस प्रकार यह क्रम चल रहा है।

आज अधिकाश रूप से जो आत्महत्याएँ होती हैं उनमे आर्थिक स्थिति कमजोर होना ही मुख्य करण है। धन के अभाव मे निर्दोप मानव तथा महिलाओ की चन्द ही घन्टो मे आत्म-हत्याएँ हो जाती हैं। जैसे किसी लडकी को अपने पिता ने दहेज मे धन कम दिया, जितना वायदा किया था, उतना किसी कारणवश पूरा नही कर सका, वस धन के लोलुपी ससुराल पक्ष वालो ने उस होनहार निर्दोप वालिका पर मिट्टी का तेल छिडक कर निर्दयता पूर्वक हत्या कर दी।

किसी व्यक्ति ने व्यापार-विनिमय किया। सयोगवशात् एकवार तो आशातीत लाभ हुआ। लोभातुर होकर दूसरी वार फिर व्यापार-सट्टा आदि किये। परन्तु विधि की विडम्वना ही विचित्र है—**"लाभमिच्छतो मूलक्षतिरायाता"** अर्थात्—लाभ की लालसा मे मूल भी जाता रहा। यहाँ तक कि—चल-अचल सारी सम्पत्ति वेच दी गई, तथापि सिर पर कर्ज का भार वना रहा —

हाट वेच हवेली वेची वेच्यो घर को गेणो।
उभी राख सेठाणी वेची तो ई न चूक्यो देणो॥

अव वह कर्ज के भार से भारी वना हुआ शर्म का मारा वाहर कही जा नही सकता, फिर नही सकता। क्योकि वाहर यदि घूमता है तो लोग उससे पैसे मागते हैं, दुत्कारते हैं, अपमानित भी करते हैं, भले वुरे शब्दो की वोछार कर वैठते हैं। ऐसी विकट वेला मे सगे सम्वन्धी और इर्द-गिर्द वाले इतने परोपकारी सज्जन तो हैं नही, जो उस पतित को ऊँचा उठाने मे भागीदार वन सकें। जव उसकी गोद मे कमला क्रीडा किया करती थी, तव तो सव आते जाते थे। परन्तु आज उसका मुँह देखना भी पसन्द नही करते हैं, तो भला वे सपूत सहायता क्यो देने लगे ? गले से गले और सीने से सीना क्यो लगाने लगे ? और मधुर भापण भी क्यो करने लगे ? जैसे कि—

दुना भरा ऊपर चढ़ा सम्मान भी पाने लगा।
जव माल हुआ खाली तो ठोकरें खाने लगा॥

उसके पास दो चार वाल-वच्चे हैं। सर्दी गर्मी और वर्पा व्यतीत करने के लिए जो वुरा-भला, जीर्ण-शीर्ण एक मकान था वह भी पूजीपतियो के चगुल मे जाता रहा, दैनिक खर्च के लिए भी भारी कठिनाइयाँ आ खडी हुई तो भला मासिक और वार्पिक खर्च की तो वात ही क्या ?

सोचनीय परिस्थिति मे वह विचारता है कि अव मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? जिधर जाता हू, उधर लोग अथवा भाई वन्धु देते तो कुछ है नही परन्तु घृणित-निन्दनीय दृष्टि से निहारते हैं। उपालम्भ का उपहार ही मिलता है। फलस्वरूप सव तरह से निराश व हताश, परेशान और धैर्य साहस छोडकर न अपने भूत-भविष्य का, न अपने नन्हे-नन्हे वाल वच्चो का विचार कर कुछ विपैली वस्तु खाकर अपने इस देव-दुर्लभ जीवन दीप को जानवूझ कर वुझा ही देता है।

पारिवारिक कलह-क्लेश की पृष्ठभूमि भी जर, जोरू, जमीन पर ही आधारित है। अहर्निश आपसी सघर्प-विग्रहो से तग आकर वहुत से दुस्साहसी कायर नर-नारी आवेशान्वित होकर आत्महत्या करके अपनी जीवन लीला को समाप्त कर वैठते हैं।

अप्रशस्त राग मोह मे अधिकाश युवक युवतियो के हाथ रहते हैं। जो पहिले तो विना सोचे-समझे एक दूसरे के स्नेही वन जाते हैं। परन्तु जव पाप घट का भण्डाफोड होता है और अपने-अपने माता-पिता को इस काली करतूत के गुप्त रहस्यो का ज्ञान होता है, तव वे अपनी खानदानी और इज्जत

आवरू को सुरक्षित रखने के लिए अपने अगज-अगजा को भरसक प्रयत्न से रोकते तथा विरोध भी करते हैं।

तव युवक-युवती जिनका जीवन केवल भौतिक ज्ञान की अस्थाई वालु की दिवाल पर ही टिका हुआ है ऐसी खोखली कमजोर डावाडोल नींव वाले वे चोर की तरह इतस्तत पलायन होने की कोशिश करते हैं, परन्तु राजकीय भय से उस कार्य मे सफलता नही मिलती है, तव दोनो रागान्ध होकर किसी एक गुप्त स्थान मे जाकर अपने-अपने गले मे फासा डालकर मर ही जाते हैं—

लोग घवराकर कहते हैं कि मर जायेंगे।
मरकर चैन न मिली तो किधर जायेंगे?

पहिले से ही इनके मन मस्तिष्क और दिल-दिमाग मे मिथ्या मान्यता घर वना के रहती है कि—हम दोनो यहाँ से मर जायेंगे तो पुन अवश्यमेव आगामी जीवन मे मिल जायेंगे। वहाँ फिर किसी प्रकार के पारिवारिक व सामाजिक वन्धन नही रहेगे। स्वतन्त्रता-सुख पूर्वक जीवन यात्रा चलायेंगे। ऐसी गल्त कपोल-कल्पित कल्पना के वशवर्ती होकर अपने महान् मूल्यवान् जीवन को क्षणिक अप्रशस्त सुख-सुविधा के पीछे जोड देते हैं। तदनन्तर उस नर-नारी को भव-भव मे मानवीय चोले के लिये रोना ही पडेगा, चूंकि आप जानते हैं कि—जिस किसी को एक वक्त सुन्दर समय मिल गया और अज्ञानी आत्मा की तरह यदि वह प्राप्त हुई वस्तु का सरासर दुरुपयोग करके 'इतोभ्रष्ट ततोभ्रष्ट' होता है, तो कहिए दुवारा वह उस वस्तु को पा सकता है? कदापि नही। उसी प्रकार मानव भव पुन उस देहधारी के लिए अलभ्य रहेगा। आगम मे भ० महावीर ने कहा है—

'वालाण अकाम तु मरण असइ भवे।" —उ० सू० अ० ५ गा० ३)

ऐसे भोले भाले अज्ञानियो का निष्काम जन्म-मरण वार-वार हुआ ही करता है। और भी—

सत्यग्गहण विसभक्खण च जलण च जलपवेसोय।
अणायार भण्डसेवी जम्मण मरणाणि वधन्ति॥

—भ० महावीर

हे मुमुक्षु! जो आत्म-हत्या करने के लिये तलवार, वरछी, भाला कटार आदि शस्त्रो का प्रयोग करे, अफीम, सखिया हिरकणी आदि का प्रयोग करे, अग्नि मे पडकर या कुँआ, वावडी नदी तालाव मे गिरकर मरे तो उसका यह मरण अज्ञानपूर्वक है। इस प्रकार मरने से अनेक जन्म और अनेक मरणो की वृद्धि के सिवाय और कुछ नही है। वह फिर तिर्यंच, नरक, मनुष्य और देवता आदि अनन्त ससार रूपी विपिन मे भटकता ही रहता है।

ऐसे महा पापमय कार्य को वही मानव करता है, जिसके जीवन मे आध्यात्मिक-धार्मिक ज्ञान का नितान्त अभाव है। जो नास्तिक विचारधारा के पोषक और धार्मिक जीवन के आगे पीछे न कुछ मानते एव न कुछ जानते हैं।

हाँ तो, आत्मघाती जिस अन्तर्द्वन्द्व को जिस अभिलाषा और जिस आवेश मे अन्धे होकर अपने देव दुर्लभ देह को चन्द ही घण्टो मे मौत के मुँह मे झोक देता है, उससे उसका कुछ भी प्रयोजन सीधा नही होता है। वल्कि पहिले की अपेक्षा शत सहस्र गुणाधिक दुखो की पार्सल उसके सम्मुख आ खडी होती है। क्योंकि पापों से न तो कभी धर्म पुण्य हुआ और न कभी शान्ति। 'स्व' व 'पर' का आत्म-घात

भी तो एक भारी हिंसामय पाप है। अत जहाँ पापो की व हिंसा की पैदास है, वहाँ निश्चित रूप से वर्तमान अथवा भावी दुखो की बुनियाद खडी करना है, ऐसा करनेवाला स्वय के लिए तथा राष्ट्र-समाज-परिवार और विद्यमान परम्परा के लिए कलक भरी कालिमा छोड जाता है। खुद तो मरता है और पीछे रहनेवालो को भी मार जाता है। अर्थात् आत्महत्या करके मरना सभी दृष्टि से समदृष्टि प्राणियो के लिए सर्वथा निन्दनीय एव जीवन की बहुत बडी पराजय मानी है। क्योकि—उभरी हुई परिस्थितियो से घबराकर वह मर रहा है, मैदान छोडकर भाग जाना वीरो का नही, कायरो का काम है। बुजदिल और डरपोक नर-नारी ही ऐसे कुत्सित अधर्म कार्य किया करते हैं। किन्तु धर्मविज्ञ कदापि उल्टे कदम उठाया नही करते है। हाँ, परिस्थितियो का सामना अवश्य करते हैं। कहा भी है—

मर्द दर्द को ना गिने दर्द गिने नहीं मर्द।
दर्द गिने सो मर्द नहीं दर्द सहे सो मर्द॥

यदि किसी को मरना ही है तो वे सही तौर तरीके से इस पार्थिव देह का उत्सर्ग करें, ताकि मृत्यु ही उनसे सदा-सदा के लिए पिंड छोडकर भाग जाय और वह देहधारी मृत्यु जय बनकर अमरता को प्राप्त करले। किन्तु पहले प्रत्येक समस्या को समझे, समस्या को समझे बिना समाधान कैसा ? मृत्यु जय होना यह भी महत्वशाली समस्या है। जिसको यत्किंचित् नर-नारी ही समझ पाये होगे। और जो समझ पाये हैं वे मृत्यु जय बन भी गये। वस्तुत समस्या का समाधान करते हुए कवि ने कहा है—

मरना मरना सब कोई कहे मरना न जाने कोय।
एक बार ऐसा मरे फिर न मरना होय॥

आगम मे भी भ० महावीर ने कहा है —

"सच्चस्स आणाए उवट्ठिए से मेहावी मारं तरइ।"

—आचारागसूत्र

सत्य साधना के मार्ग पर आसीन मेधावी मृत्यु को जीतता है। जिसको शास्त्रीय भाषा मे पडितमरण अथवा सुखान्त मृत्यु कहा गया है। सम्यक् साधना आराधना के अन्तर्गत जो भौतिक शरीर का त्याग होता है ऐसा मरण स्वर्ग-अपवर्ग सुखो की उपलब्धि अवश्य कराता है। जैसा कि—

जिस मरण से जग डरे मेरे मन आनन्द।
मरने पर ही पाइए पूर्ण परमानन्द॥

पामर प्राणी मृत्यु के नाम मात्र से काप उठता है। वह स्वप्न मे भी नही चाहता कि मैं मरूँ, मैं इस घर, परिवार को छोडकर अन्यत्र जाऊँ, यदि मर गया तो पता नही कहाँ जाऊँगा ? हाय ! अब क्या होगा राम ! इस प्रकार पश्चात्ताप की भट्टी मे अवश्य झुलसता है किन्तु मरने को तैयार नही होता। ज्ञानी के लिए यह बात नही। ज्ञानी मृत्यु को महोत्सव मानता है। वह भावी समस्याओ से निश्चिन्त रहता है। वह बिल्कुल निर्भीक निडर रहता है, कारण यही कि—उसने पेट के साथ-साथ ठेट को भी परिपुष्ट किया है। मृत्यु जय समस्या को समझा है और समझकर सुलझाने मे प्रयत्नशील रहता इसलिए तो उसकी अन्तरात्मा का उद्घोष है—"जिस मरने से जग डरे मेरे मन आनन्द।"

एकदा चित्त-सभूति की आत्मा हस के भव से मुक्ति पाकर दोनो जीव वाराणसी मे भूतदत्त

नामक चण्डाल के यहाँ पुत्र रूप मे उत्पन्न हुए । उनका नाम चित्त और सभूति रखा गया । दोनो भाइयो मे प्रगाढ स्नेह था । प्रत्येक क्रिया दोनो मिलकर करते थे । दोनो यौवन वय मे आए । वे गीत-वादिन्त्र एव मधुर स्वर द्वारा मनुष्यो को मोहित करने मे अद्वितीय थे । वे वीणा और मृदग हाथ मे लेकर ज्यो ही तान मिलाकर गाते कि—सारी जनता मत्रमुग्ध होकर उनकी ओर दौड पडती ।

हस्तिनापुर मे मदनोत्सव की धूम थी । नागरिक जन भिन्न-भिन्न टोलियाँ बनाकर बाहर उद्यान मे क्रीडा-रत थे । चित्त-सभूति बन्धु भी अपनी स्वरलहरी मे वातावरण को उत्तेजित करते हुए उधर से निकले तो सारी जनता उनके पीछे-पीछे जाने लगी । इस कारण मदनोत्सव के कार्य-कलाप मे फीकेपन को देखकर अनुचर ने नरेश से निवेदन किया—स्वामी ! "दो चण्डाल पुत्रो ने अपने मधुर स्वर से सभी को पागल सा बना दिया है । उसी से उत्सव मे फीकापन आया हुआ है ।"

राजा ने तत्काल नगर-रक्षक को आज्ञा दी—उन दोनो लडको को नगर मे बाहर निकाल दो । और पुन उन्हे नगर मे प्रवेश न करने दो । अनुचरो ने राजाज्ञानुसार वैसा ही किया ।

कालान्तर मे पुन उत्सव के दिन आए । वे दोनो श्वपाक-पुत्र अपने को रोक नही सके । राजा की आज्ञा का उल्लघन करके सुन्दर वस्त्र पहनकर आये । किन्तु भाग्य की विडम्बना ही समझिए कि—उनके मधुर स्वरो ने ही उनकी पोल खोल दी । जनता पहिचान गई कि ये चण्डाल पुत्र हैं । जिनको बाहर निकाल दिया गया था । ये पुन नगर मे आ गये हैं । जनता बिगड गई, मारने-पीटने लगी । बडी कठिनाई से गिरते-पडते आखिर उद्यान मे आये । अब सोचने लगे – हमारे पास सगीत का गजब जादू होने पर भी हमे जनता दुत्कारती है । अपमान करती है इसमे जाति हीनता ही कारण है । हमारा जन्म अधमकुल मे हुआ है, इस जीवन से तो मृत्यु ही श्रेष्ठ है । इस प्रकार अधम विचार करके आत्मघात के लिए पार्श्ववर्ती गिरी के निकट पहुच गये । उस पहाड पर से नीचे गिरने का सकल्प किया । और दोनो ऊपर चढ गये ।

गिरने के लिए कगार पर आते हैं, किन्तु हिम्मत नही होती । पीछे हटते, फिर आगे बढते, इस प्रकार चक्कर काटने लगे । शरीर की प्रतिछाया के हलन-चलन को नीचे खडे ध्यानस्थ मुनि ने देखा ! उसी समय दोनो को अपने पास बुलाया और गिरी से गिरने का कारण पूछा—उन्होंने अपनी सारी कहानी सुन कर मरने का सही सकल्प भी बता दिया ।

मुनि—भव्यो ! तुम आत्मघात करके इस दुर्लभ मनुष्यभव को क्यो व्यर्थ नष्ट कर रहे हो ? मरने मे यह शरीर तो नष्ट हो जायेगा । परन्तु पाप नष्ट नही होगे । यदि तुम्हे पाप नष्ट करना है तो पडित मरन से मरो जिसकेलिए साधना का प्रशस्त मार्ग स्वीकार करो इससे तुम्हारा भविष्य सुख-सामग्री से प्लावित होगा । मुनिवर का श्रेष्ठ उपदेश दोनो को अभीष्ठ लगा । दोनो निर्ग्रन्थ अणगार बनकर रत्न त्रय की आराधना करने लगे । कालान्तर मे दोनो महामनस्वी मुनि हो गये । आत्म-हत्या की भयकर दुर्घटना से बच गये । कहा भी है—

> मृत्युमार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागो ददातु मे ।
> समाधिबोधपाथेय यावन मुक्तिपुरी पुर ॥ —मृत्युमहोत्सव

जिसप्रकार विदेश जाते समय घर के स्नेही जन जानेवाले के साथ मार्ग मे खाने-पीने की सामग्री साथ बाधते हैं । जिसको सबल भी कहते हैं जिससे कि—मार्ग मे कष्ट न पडे । उसी प्रकार हे

देवाधिदेव ! मैं मृत्यु मार्ग पर अग्रसर हो रहा हूँ। मुझे मुक्ति रूपी नगरी मे पहुचना है। मुक्तिपुरी तक सकुशल पहुचने के लिए मुझे समाधि का बोध प्रदान करें। जिससे मेरी यात्रा सानन्द पूर्ण होवे। इस प्रकार मेधावी नर-नारी ऐसा चिन्तन-मनन किया करते हैं। क्योकि उनकी अन्तरात्मा मरण के प्रकार को समझ चुकी है। ऐसे पडितो का मरण बार-बार नही हुआ करता है। जैसा कि—

पडियाणं सकाम तु उक्कोसेण सइं भवे ।

—उत्तराध्ययन अ० ५ गा० ३

अर्थात्—आत्मवेत्ताओ का सकाम (पडित) मरण होता है। और वह भी उत्कृष्ट एक बार ही होता है। उन्हे फिर मरना नही पडता है। अपितु आत्मभाव मे जो जाग चुके हैं वे स्वय मृत्यु को परास्त करने मे लगे रहते हैं। इसकारण एक क्षण भी व्रत नियम मर्यादा से जीवन को रिक्त नही रखते हैं। सोने के पहले भी ऐसी सुविचारना की प्रतिज्ञा करके फिर निद्रा लेते हैं -

"भक्खति, डज्झति, मारति, किंवि उवसग्गेण मम आउ अन्तो भवेज्ज तहा सरीरसग मोह-ममता अट्ठारस पावट्ठाणाणी चउव्विहपि असण, पाण खाइम, साइम वोसिरामि, सुहसमाहिएण निद्दावइक्कती तओ आगारो।"

- जैनतत्त्व प्रकाश

प्रभो ! सोते समय यदि मुझे सिंह आदि खा जाय, आग लगने से शरीर जल जाय, पानी मे बह जाऊँ, शत्रु आदि मार डाले या किसी अन्य उपसर्ग से मेरी आयु का अन्त हो जाय तो मैं अपने शरीर सम्बन्धित मोह-ममता का व अठारह पाप स्थानो का और चार प्रकार के आहारो का त्याग करता हूँ। अगर सुखपूर्वक जाग्रत हो गया तो सब प्रकार से खुला हू। उपर्युक्त विचारो के साथ-साथ—

आहार शरीर उपधो पचखूं पाप अठार ।
मरण पाऊँ तो वोसिरे जीऊँ तो आगार ॥

हाँ तो सज्जनो ! बालमरण और पडितमरण के विषय मे मैंने काफी कह दिया है। अतएव प्रशस्त मार्ग को लेना बुद्धिमान का कर्त्तव्य है। पडित मरण ही मृत्यु जय बनने का अचूक मार्ग है। चित्त सभूति दोनो भ्राताओ ने अन्ततोगत्वा पडित मरण को ही वरा। रत्न-त्रय की विशुद्ध साधना मे जीवन को नियोजित करें ताकि अमरता की प्राप्ति होवे।

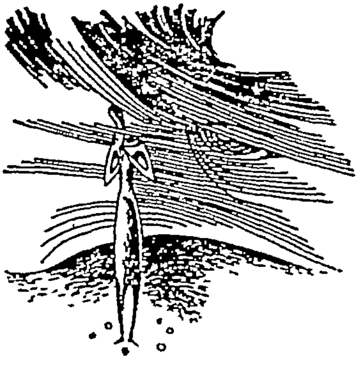

ऐसे तो वक्ताओ की वाणी भाषणवाजी मे चतुर हुआ करती है। परन्तु 'दर्शनशास्त्र' पर व्याख्यान करना, प्रत्येक वक्ताओ के वश की वात नही है। चूँकि दर्शनशास्त्र का अध्ययन अपने आप मे अत्यधिक महत्त्व रखता है। अतएव पूर्ण जानकारी के विना उन्हे पीछी खानी पडती है। तिस पर भी यदि कोई भी दर्शनशास्त्र को लेकर उटपटाग उडानें भरता है तो सचमुच ही वह हँसी का पात्र होता है। गुरुप्रवर का दर्शन शास्त्र पर प्रशसनीय अध्ययन है। जीवन स्पर्शी प्रवचन पढिए। —सपादक]

सज्जनो ! यह आर्यभूमि दार्शनिको की पावन क्रीडा स्थली रही है। समय-समय पर अनेकानेक धर्मप्रवर्त्तक अवतरित हुए। जिन्होने दर्शनशास्त्र की गभीर मीमासा प्रस्तुत की, जिनके अन्त करण से गहरी अनुभव की अनुभूतियाँ नि सृत हुई हैं। उन्हें दर्शन (सिद्धान्त) नाम से पुकारा जाता है।

'दर्शन' शब्द का अर्थ-देखना, 'दर्शन, शब्द का अर्थ "ज सामन्नगहण दसण" और दर्शन शब्द का अर्थ—श्रद्धा एव सिद्धान्त (Vision) कहा गया है। यहाँ दर्शन (सिद्धान्त) की ओर श्रोतागण को मेरा सकेत है। आर्यभूमि पर जितने भी दार्शनिक वृन्द हुए हैं उतने पाश्चात्य सस्कृति सभ्यता के वीच नही हुए हैं। कारण स्पष्ट है कि इस धवल धारा का कण-कण महा मनस्वियो की पाद-धूलि से पवित्र हो चुका है। वस्तुत आचार-विचार एव आहार सहिता की सदैव उत्तमता रही है। फल स्वरूप यहाँ का अध्ययनशील तो क्या, किन्तु अनपढ नर-नारी भी आत्मा, परमात्मा, पुण्य, पाप एव पुनर्जन्म पर पूर्ण विश्वास रखता है। यह भारतीय वाङ्मय की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। दर्शनो के विभिन्न भेद इस प्रकार हैं—

दर्शनानि षडेवात्र मूल भेद व्यपेक्षया। देवता तत्त्व भेदेन ज्ञातव्यानि मनीषिभि ॥
बौद्ध नैयायिक सांख्य जैन वैशेषिक तथा। जैमनीयं च नामानि दर्शनानाममून्यहो ॥

—षड्दर्शन समुच्चय

वौद्ध, नैयायिक, साख्य, वैशेषिक जैमनी और जैन इस प्रकार मुख्य रूप से षड् दर्शन अभिव्यक्त किये हैं। ये सभी आत्मा के अस्तित्व मे विश्वास रखते हैं अतएव इन्हे आस्तिक दर्शन कहा गया है। सभी दार्शनिक विचार धाराओ को दो दर्शन मे विभक्त करता हूँ। क्योकि मेधावी मानव के लिये हेय क्या और उपादेय क्या ? यह भेद विज्ञान भी अत्यावश्यक है। एक मिथ्यादर्शन और दूसरा सम्यक् दर्शन।

जीवन की विपरीत दृष्टि (मिथ्यात्व)

आत्मा अनादिकाल से वधनो मे आवद्ध है। वन्धनो से मुक्त होने के पहिले मानव को वधन का स्वरूप समझना आवश्यक है। चूँकि वधन के यथार्थ स्वरूप को जाने विना मुक्त होने की कल्पना निरर्थक है। वन्धन का मुख्य कारण मिथ्यादर्शन माना है।

"अनित्याशुचि दुखात्मसु नित्य-शुचि-सुखानात्मख्यातिरविद्या"

—योगशास्त्र

अर्थात्—अनित्य को नित्य, अशुद्ध को शुद्ध, दु ख को सुख और आत्मा को अनात्मा मानना ही मिथ्यादर्शन कहलाता है।

मिथ्यादर्शन को सीधी-सरल भाषा मे 'झूँठा दर्शन' और शास्त्रीय भाषा मे कहे तो **"विपरीत श्रद्धान मिथ्या दर्शनम्"** अर्थात् सत्कार्यों के प्रति जिनकी श्रद्धा-विश्वास विपरीत हो दान-देना, तप-तपना, सदाचार का पालन करना आदि-२ कार्य पुण्य तथा मोक्ष के हेतु हैं परन्तु जिसकी दृष्टि पर मिथ्यात्वरूपी घने बादल छाये हुए हैं, उसे पुण्य-काय ढोग-ढकोसले के रूप मे ही दिखाई देते है जैसा कि—

अदेवे-देव बुद्धिर्या गुरुधीरगुरौ च या, अधर्मे धर्म बुद्धिश्च मिथ्यात्व तन्निगद्यते ॥

— योग-शास्त्र

अर्थात्—अदेव मे देव बुद्धि, कुगुरु मे गुरु बुद्धि एव अधर्म मे धर्म की परिकल्पना करना मिथ्या दर्शन कहलाता है। और भी—

समदृष्टि को सम विषम दृष्टि को विषम लखाता है।
जैसा चश्मा हो आँखो पर वैसा ही रग दिखाता है॥

हाँ तो, पीलिये रोग के ग्रस्त रोगी को पूछिये कि—तुम्हे यह सृष्टि कैसी दिखाई देती है ? उत्तर मे वह यही कहेगा कि—मुझे यह विशाल सृष्टि पीले रगवत् दिखाई देती है। अत यह उचित ही है कि—**यादृशी दृष्टि तादृशी सृष्टि**" यानी जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

इस प्रकार मिथ्यादर्शी जिनेन्द्र देव की आज्ञा का आराधक नही बन सकता है। हालाँकि—मिथ्यादर्शी जीव को जीव मानता है गाय को गाय, घोडा को घोडा और स्वर्ण-रजत आदि को तद्वद् रूप से मानता-जानता है तो फिर शका होती कि—मिथ्यात्वी की उपाधि मे उसे कलकित क्यो किया जाता है ? इसका समाधान यह है कि ऐसा कहने तथा मनुष्य को मनुष्य मानने मात्र से ही उसका मिथ्या-दर्शन छूट नही जाता है और सम्यक् दर्शन आ नही जाता है। कारण कि— जिसके दर्शन मोहनीय का क्षय, क्षयोपशम या उपशम होगया हो और जो पुण्य-पाप, स्वर्ग नरक आदि पर श्रद्धा प्रतीति लाता हो, बस, वही सम्यक्दृष्टि हो सकता है। अन्यथा भौतिक तत्त्ववेत्ताओ को भी सम्यक् दृष्टि ही मानना पडेगा। क्योकि उन्होंने विश्व को अचरजकारी शक्तियाँ अर्पित की है। परन्तु ऐसा मानना उचित नही है। कारण कि दर्शन मोह के क्षयोपशमादि न होने से वे सम्यक् दर्शन के उपासक नही कहला सकते है। और शास्त्रो मे कहा गया कि—अश मात्र भी अश्रद्धा हो तो वह सम्यक्दृष्टि नही होता।

"द्वादशागमपि श्रुतं विदर्शनस्य मिथ्ये।"

यदि किसी ने १२ अग भी पढ लिये परन्तु दर्शन (श्रद्धा) शुद्ध नही है तो वह अध्ययन नही के बराबर ही है। और देखिए—

"मिथ्यादृष्टि परिगृहीत सम्यक्श्रुतमपि मिथ्याश्रुत भवति"

—तर्क-भाषा

मिथ्यादृष्टि द्वारा ग्रहण किया हुआ सम्यक्श्रुत भी उसके लिये वह मिथ्याश्रुत ही है। भले उसके सामने भगवती के भागे, स्थानाग की चौभगियाँ और उत्तराध्ययन के अनमोल अध्यायो को खोल के रख दो तथापि विपरीत रूप से परिणत करेगा।

मिथ्यादर्शन के अन्तर्गत आचरित दुष्कर करणी एव कथनी मोक्ष का कारण नही अपितु ससारवर्धन का कारण माना है । ससारी सुख सपदा-परिवार-पद-प्रतिष्ठा-हाट-हवेली एव राज्य श्री की उपलब्धि करवा सकती है किन्तु वीतराग दशा की प्राप्ति करवाने का सामर्थ्य मिथ्यादर्शन मे कहा ? माना कि —जीवात्मा अधिकाधिक कर्मों का वधन एव कर्मों का नाश प्रथम गुणस्थान पर ही करता है। तथापि आत्मा की वास्तविक विजय नही, पराजय ही मानी गई है चूँकि सामर्थ्य-विहीन विजय निश्चय-मेव पराजय मे वदल जाती है। कहा भी है—

कुणमाणोऽविनिविक्त परिच्चयतोऽपि सयणधण भोए।
दितोऽवि देहस्स दुक्ख मिच्छादिट्ठि न सिज्झति ॥

अर्थात्—देहधारी प्राणी स्वजन-धन-भोग-परिभोग आदि का परित्याग करता हुआ एव शरीर को प्राणान्त कष्ट देता हुआ भी मोक्ष को प्राप्त नही करता है, कारण कि—उसके अन्त करण मे मिथ्या-दर्शन का सद्भाव स्थिति है। आगम मे भी कहा है

'मासे मासे तु जो वालो कुसग्गेण तु भुजए।
न सो सुयक्खायधम्मस्स कल अग्घइ सोलसिं ॥

—उत्तराध्ययन

"जो वाल (अज्ञानी) साधक महीने-महीने के तप करता है और पारणा मे कुश के अग्र भाग पर आए उतना ही आहार ग्रहण करता है, वह सुआख्यात धर्म (सम्यक् चारित्र रूप मुनिधर्म) की सोलहवी कला को भी पा नही सकता है।"

अत यह मिथ्यादर्शन ही आत्मा को अनादि ससार मे रुलाता है। जन्म-मरण की अपार खाई (खाड) का वर्धक है। और शिव-सुखो से वचित रखता है। इसलिए मिथ्यादर्शन एकात जीवात्मा के लिये हेय है।

एक व्यक्ति अपने मित्र को कार्ड लिखता है। वह कार्ड वडा ही मजवूत और मनोहर है। वेल-वूटे आदि चित्रो से रमणीय वना हुआ है। अनेक रग विरगी स्याहियो से तथा परिश्रम से उस पत्र को सुन्दर अक्षरलिपि से सुसज्जित किया गया है । परन्तु उस पर प्राप्त करने वाले व्यक्ति का पता लिखना लेखक महोदय भूल गये हैं, कहिये क्या वह पत्र सही स्थान पर पहुँच सकेगा ? कदापि नही। रद्दी की टोकरी के सिवाय उस पत्र की कोई गति नही हो सकती है, यही स्थिति समदर्शनरूपी मोहर से रहित जीवात्मा की है। सब कुछ रूप से मानव युक्त हो, लेकिन समदर्शन न हो तो मोक्ष-क्षेत्र मे उस जीवन का कोई मूल्य नही है।

विपक्ष को जानकर अव सम्यक् दर्शन किसे कहते हैं इसका जानपना करना भव्यात्माओ का स्वाभाविक धर्म है और मुमुक्षुओ के लिए अनिवार्य भी है —"**तत्वार्थ श्रद्धान सम्यक्दर्शनम्**' ।

—तत्वार्थ सूत्र

नव तत्त्व आदि पर गाढी श्रद्धा-प्रतीती लाना ही सम्यक्दर्शन कहलाता है—अनादिकाल से दर्शनमोहनीय कर्म के कारण भव्यात्मा का यह गुण आच्छादित है। ज्यो ही दर्शन मोहनीय कर्म दूर हुआ कि—सम्यक्त्व गुण इस प्रकार प्रगट हो जाता है—जैसे मेघो के हट जाने पर भास्कर।

सम्यक्त्व प्राप्ति का क्रम

यह जीवात्मा काललब्धि पाकर तीन करण करता है। तव सम्यक्दर्शनरूपी महान् सत्य

को प्राप्त करता है। काललब्धि का प्राजलार्थ यह है कि—जैसे एक शिलाखड जल की तीव्र चचल तरगो मे टकराता हुआ, गिरता हुआ कई दिनो मे जाकर वर्तुलाकारवाला वन जाता है। उमी प्रकार यह जीवात्मा अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि मे प्रवेश करता है। फिर क्रमश द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय आदि पर्यायो मे परिभ्रमण करता हुआ, अनत जन्म-मरण और अकाम निर्जरा करता है।

कम्माण तु पहाणाए आणुपुव्वी कयाई उ।
जीवा सोही मणुपत्ता आययति मणुस्सय ॥ —भ० महावीर

अनुक्रम से इतने ममय के वाद, कर्मों की न्यूनता होने पर कभी यह जीवात्मा शुद्धता प्राप्त करता है, सज्ञी मनुष्यत्व को प्राप्त होता है। उसे काललब्धि कहते हैं।

इस अवस्था मे रहकर यह जीवात्मा तीन करण करता हैं। पहला यथाप्रवृत्तिकरण करता है—जिसमे आत्मा के परिणामो की (विचार) धारा इतनी शुद्ध हो जाती है कि—आयुष्य कर्म के अतिरिक्त शेप सप्त कर्मों की स्थिति को पल्योपम के सख्यातभाग न्यून कोडा-कोडी सागरोपम प्रमाण कर देता है। पश्चात् दूसरी सीढी को प्राप्त होता है जिसको अपूर्वकरण कहते हैं। इस करण मे भी भावों की धारा और अधिक शुभ्रता शुद्धता की ओर वढती है। शेप कर्मों की रही अवधि मे से एक मुहूर्त जितनी स्थिति को न्यून करती है। विशेपता यह है कि—अनादिकालीन मिथ्यादर्शन, अनन्तानुवन्धी चौकडी और अज्ञान आदि को हेय (त्याग ने लायक) और सम्यक् दर्शन को उपादेय समझता है। यानी सत्य, क्षमा, अहिंसा आदि को अच्छा और हिंसा क्रोध आदि को वुरा समझता है। यहाँ जीव मार्गानुसारी वनता है। आत्मा ज्यो-ज्यो और गहराई मे अवगाहन करता है, त्यो-त्यो विमल-विशद भावो की धारा रूपी शुभ्र मदाकिनी प्रवाहित होती है। तव अनिवृत्तिकरण आ खटकता है। यहाँ पर भी शेप कर्मों की स्थिति मे से एक मुहूर्त स्थिति और न्यून करता है। विशेप मजे की वात तो यह है कि अनादिकालीन मिथ्यादर्शन की समूल इति श्री करके मम्यक्त्व को प्राप्त करता है। सम्यक्दर्शन का उद्भव दो प्रकार से होता है—"**तन्निसर्गादधिगमाद्वा**"।

अर्थात्—निसर्ग-स्वभाव से और अधिगम अर्थात् सद्गुरु के उपदेश आदि वाह्य निमित्त से उत्पन्न होता है।

मम्यक्दर्शी जीव की दृष्टि निर्मल वन जाती है। सच्ची श्रद्धा और हृदय भी सरल सच्चा रहता है। मिथ्यादृष्टि अथवा वायस की भाति वह फिर किसी मानव के दुर्गुण रूपी घावो की तरफ नही झाँकता है। क्योकि मम्यक्दृष्टि को तो सारा विश्व गुणमय, पुण्यमय और धर्ममय दिखाई देता है।

"सम्यकदृष्टि परीगृहितं मिथ्याश्रुतमपि सम्यक्श्रुतं भवति"। —तर्क भापा

सम्यक्दृष्टि के हाथ मे आया हुआ मिथ्यादर्शन भी सम्यक्-श्रुत वन जाता है। आशय यह है कि—भले ही वह कैसे ही शास्त्र, ग्रन्थ या वस्तु क्यो न हो, परन्तु सम्यक्दृष्टि का अनुयायी तो उसमे से कृष्ण वासुदेववत्, या हंसवत् उपादेय को ही ग्रहण करता है और हेयवस्तु को त्याग देता है। अत गुण ग्रहण करना यह मम्यक्दर्शी का प्रधान चिह्न है। जैसा कि—वीरसेन-सूरसेन दो सगे भाई थे। वीरसेन जन्म से ही अघा था किंतु गायन कला मे प्रवीण था। और सूरसेन धनुर्विद्या मे। भ्राता की जाहो-जलाली सुनकर वीरसेन ने भी सतत् प्रयत्नपूर्वक धनुर्विद्या का अध्ययन किया। सहसा अन्य शत्रु चढ आये और उस चक्षु विहीन राजकुमार वीरसेन को वन्दी वना लिया। मालूम होने पर कनिष्ठ

राजकुमार सूरसेन ने ज्येष्ठ भ्राता को शत्रुओ के घेरे से मुक्त भी कराया और शत्रुपक्ष को परास्त भी किया। इसी प्रकार सम्यक् दर्शन रूपी आँखो के अभाव मे उस देहधारी के पास मे भले कितना भी ज्ञान था, किन्तु वह ज्ञान तारक नही सिद्ध हुआ। क्योकि सद्दर्शन के अभाव मे पठित ज्ञान कुज्ञान माना गया है। हाँ तो, कर्मरूपी शत्रुओ से मुक्ति पाने के लिये सम्यक्दर्शन ही सफल प्रयोग माना है।

सम्यक् दर्शन ही मुक्ति महल का प्रथम सोपान है। यह एक कल्पवृक्ष के समान है, जो इच्छित (मोक्ष) कार्य की पूर्ति करवाता है। यह एक चिंतामणिरत्न के सदृश है, जो शारीरिक, मानसिक और दैविक त्रिताप के झझावातो से छुटकारा देता है, और शाश्वत सुखो को प्राप्त करवाने मे सहायक वनता है। यह वह प्रकाशस्तम्भ है, जो मिथ्यात्वरूपी घने तिमिर को चीरकर, परमशाति का महामार्ग दर्शाता है। यह वह रामवाण औषधि है, जो मिथ्यात्वरूपी ज्वर की जड को उखाड फेकता है। और अक्षुप सत्य की प्राप्ति करवाता है और यह एक महान्-विशाल विराट्सेतु है, जो तीन यावत् पन्द्रह भव तक तो अवश्य मेव अपार ससार-सागर को पार करवाता है। अत सम्यक् दर्शन की पूरी तरह से रक्षा करना भव्यात्माओ का प्रथम कर्तव्य है क्योकि सम्यक्दर्शन से भ्रष्ट आत्मा कदापि कल्याण को प्राप्त नही कर सकता है। यथा—

> भट्ठेण चरित्ताओ दंसणमिह दढयरं गहेयव्व।
> सिज्झति चरणरहिया दसण रहिया न सिज्झति॥
>
> —षड्दर्शन समुच्चय

अर्थात्—यदि कोई साधक चारित्र से पतित हो गया हो, तथापि उस साधक को चाहिए कि—वह सम्यक्-दर्शन को खूब मजबूत पकड के रखे, क्योकि चारित्र के गुणो से रहित आत्मा को फिर भी शाश्वत सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है परन्तु दर्शन (श्रद्धा) से रहित आत्मा को सिद्धि से वचित ही रहना पडता है।

जैसे अक के विना विन्दुओ की लम्वीलकीर वना देने पर भी उसका न कोई अर्थ और न सख्या ही होती है। उसी प्रकार सम्यक्त्व के विना ज्ञान और चारित्र का कोई उपयोग नही। और वे शून्यवत् निष्फल हैं। अगर सम्यक्त्व रूपी अक हो और उसके वाद ज्ञान और चारित्र है तो जैसे प्रत्येक शून्य से दस गुनी कीमत हो जाती है, वैसे ही वह ज्ञान और वह चारित्र मोक्ष के साधक होते हैं। मुक्ति के लिए सम्यक् दर्शन की सर्वप्रथम अपेक्षा रहती है—

> नादंसणिस्स नाण नाणेण विणा न होंति चरण गुणा।
> अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमुक्कस्स निव्वाणं॥
>
> —भ० महावीर

हे साधक! सम्यक्त्व के प्राप्त हुए विना मनुष्य को सम्यक् ज्ञान नही मिलता है, ज्ञान के विना आत्मिक गुणो का प्रगट होना दुर्लभ है। विना आत्मिक गुण प्रगट हुए, उसके जन्म-जन्मातरो के सचित कर्मों का क्षय होना दु साध्य है और कर्मों का नाश हुए विना किसी को मोक्ष नही मिल सकता है। अत सवसे प्रथम सम्यक्त्व गुण की आवश्यकता है।

८. वैराग्य : विशुद्धता की जननी

जव आप किसी पहाड़ की ऊँची चोटी पर चढते हैं, तो नीचे के समस्त पदार्थ क्षुद्र दिखाई देते हैं। इसीप्रकार जव साधक वैराग्य की ऊँचाई पर आरोहण करता है, तव ससार के सव वैभव, मान, सम्मान, पूजा प्रतिष्ठा भोग विलास तुच्छ एवं क्षुद्र मालुम पडते हैं। संसारी वस्तुओ का महत्त्व उसकी दृष्टि मे नीचे झुके रहने तक है। ऊँचे चढ जाने के वाद नहीं रहता है। तत्सम्बन्धित गुरु प्रवर का "वैराग्य : विशुद्धता की जननी" नामक मौलिक प्रवचनाश पढ़िए। —सपादक]

प्रिय सज्जनो !

वैराग्य की परिभाषा इस प्रकार की जाती है "विगत राग यस्मात् इति विराग" अर्थात् जिससे अथवा जिसका राग चला गया है। वह विराग कहलाता है और "विरागस्य भाव इति वैराग्यम्।"

जव आत्मा पर (प्रेय) अर्थात् सासारिक और भौतिक (पौद्गलिक) सर्व वस्तुओ से मुँह मोडकर तथा राग-मोह-ममता आदि की ग्रन्थि को भेद करके स्व (श्रेय) अर्थात् अपने स्वरूप मे रमण करती है और अपने जन्म-मरण के मूल कारणो का अन्वेषण करती है तव आत्म-सरोवर मे ही एक प्रकार की निर्वासना युक्त 'सत्य, शिव, सुन्दरम्' भावो की शान्त स्वच्छ धारा निस्सृत होती है। जिससे निरन्तर आध्यात्मिक पथ की ओर गमन करने की पवित्र-प्रेरणा प्राप्त होती है। ऐसे भावो (विचारो) का नाम ही वैराग्य है। यह वैराग्य आत्मा का ही एक नीजि गुण है, जो कदापि आत्मा से विलग नहीं होता है।

जिस प्रकार मानव जीवन मे जप, तप और दया, दान आदि का विशिष्ट महत्त्व है उसी प्रकार वैराग्य को भी मानव जीवन मे प्रमुख अग माना है। जव तक हृदय रूपी जलाशय मे सच्चे वैराग्य भावो की लहरें उठती नही, तव तक मानव भले कठोराति कठोर-क्रिया-कलापो का आचरण करें। परन्तु निस्सार और निष्फल है क्योकि—इच्छित वस्तु की उपलब्धि नही हो सकती है। जैसा कि भ० महावीर ने कहा है :—

अट्टदुहट्टियचित्ता जह जीवा दुक्खसागरमुवेंति।
तह वेरग्गमुवगया कम्म सुमुग्ग विहाडेंति॥

—जैनदर्शन

हे गौतम ! जो आत्मा वैराग्य अवस्था को प्राप्त नही हुए हैं, सासारिक भोगो मे फँसे हुये है वे आर्त्त-रौद्र ध्यान को ध्याते हुये मानसिक कुभावनाओ के द्वारा अनिष्ट कर्मों को सचय करते हैं। और जन्म-जन्मान्तर के लिये दुख-सागर में गोते लगाते हैं। जिन आत्माओ की रग-रग मे वैराग्य रस भरा पडा है, वे सदाचार के द्वारा पूर्व सचित कर्मों को वात की वात मे नष्ट कर डालते हैं।

वैराग्य ऐसे तो कई प्रकार के वाह्यनिमित्तो को पाकर उद्भव होता है परन्तु वहाँ मुख्य रूप से तीन ही कारण बताये जाते हैं। शेप कारण उपरोक्त तीन कारणो मे समावेश हो जाते हैं।

यद् दु खेन गृह जहाति विरतस्तद् दु खगर्भ मतम्।
मोहादिष्टजनेमृते मुनिरभूत् तन्मोहगर्भ खलु ॥
ज्ञात्वाऽऽत्मानमल मलादुपरतस्ज्तज्ज्ञानगर्भ पर।
सच्छास्त्रेऽधम मध्यमोत्तमतया वैराग्यमाहु स्त्रिधा ॥

दुख से होने वाला वैराग्य

धन, धरती, पुत्र, परिवार आदि की अनुकूलता ठीक न होने पर तथा प्रतिकूलता प्राप्त होने पर मानव को आराम नही मिला, दुत्कारें मिली, तिरस्कार मिला या मनमानी चीज नहीं मिली तो मन मे भाव-उर्मिया जाग उठी कि – छोडो इस इन्द्रजाल को और इन स्वार्थी परिवार के सदस्यो को। यह दु ख-गर्भित वैराग्य है। इस प्रकार के वैराग्य का उतार-चढाव मानव जीवन मे अनेक बार आया करता है पर स्थाई रग नही रहता है। अत यथार्थ वैराग्य की कोटि मे नही है। जैसा कि—एक भाई को खिचडिया वैराग्य उत्पन्न हुआ। सदैव घरवाली के सामने गीत गाने लगा – "मैं दीक्षा स्वीकार करना चाहता हूँ। तू मुझे जल्दी इजाजत लिख दे। नारी का स्वभाव सदा भयातुर होता है। घर वाली विचारी गडबडा उठी। हाय ! मेरा क्या होगा ? जीवन कैसे बीतेगा ? मैं निराधार बन जाऊँगी।"

चिन्तातुर बनी हुई पडोसिन बुढिया के यहाँ पहुची। अम्मा जी ! मैं तो बहुत परेशान हो गई। आप के पुत्र दीक्षा लेना चाहते हैं। और अनुमति के लिये मुझे हमेशा परेशान करते हैं।

पडोसिन माँ ने सोचा—यह वैराग्य नहीं, पाखण्ड होना चाहिए। बोली—बहू ! वैराग्य कब से आ गया ?

एक रोज तपस्वी मुनि मेरे यहाँ गोचरी आए थे। उनके पात्र मे घी से भरी खिचडी मिष्ठान्न आदि थे। बस उसी दिन से यह रट शुरु हुई है।

अच्छा मैं समझ गई। इसका इलाज भी करना जानती हू।

बहू ! यह सामग्री अपने घर पर ले जा। बढिया खिचडी बना करके उसमे पूरा घी उडेल देना। घट जायगा तो मैं और दे दूँगी। किन्तु कजुसाई मत करना।

उसने वैसा ही किया। भोजन करके बोला—वाह ! वाह ! आज तो मजा आ गया। ऐसी खिचडी हमेशा मिलती रहे तो भगवान् ! कौन बाबा बने ? वैराग्य, वैराग्य के ठिकाने लगा। इसको खिचडिया वैराग्य अथवा वैराग्याभास भी कहते हैं।

उसमे जो एक प्रकार की आकुलता-व्याकुलता है—वह वैराग्य का रूपान्तर मात्र है। उसमे तो राग ही कारण है। क्योकि दु ख के कारण हटने पर अर्थात् मनोनुकूलता प्राप्त हो जाने पर तथा कुटुम्बीजन मन-मुताबिक सेवा-शुश्रूषा करने पर जो ससार त्यागने के भाव थे, उन भावो मे पुन शिथिलता विकृति आ जाती है। यानि त्याग-वैराग्य का भाव रहना कठिन है। उसमे केवल जो पदार्थों को दु ख का कारण समझने का भाव है, वही वैराग्य का अश है। अत उसे अधम वैराग्य कहा गया है। किन्तु उस समय यदि सुगुरु आदि का बढिया सग मिल जाय तो वही वैराग्य खूब बढकर आत्मोद्धार का कारण भी बन सकता है। इसलिये उसे वैराग्य कहा है।

अनेक मानवो को भय से भी वैराग्य उत्पन्न होता है। यथा-स्वास्थ्यरक्षा-भय, राज-भय, ममाज-परिवार-भय, जन्म-मरण भय, और नरक-भय आदि।

रुग्ण मानव की शारीरिक डावाँडोल स्थिति को देखकर मन मे विचार आये कि—उफ ! इस मानव का यह गौर वर्ण मण्डित शरीर पहले कितना हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर चमक-दमक काति वाला था ? वाह ! वाह ! देखते ही वनता था, परन्तु आज इसके चारो तरफ रोग ने डेरा डाल रखा है, वृद्धावस्था विभीषिका ने विद्रोह करके अपने चँगुल मे फँसा लिया है। पुन स्वस्थता को यह कैसे प्राप्त करेगा ? इस प्रकार अन्य को देखकर वैराग्य प्राप्त करना—सो स्वास्थ्य-भय, वैराग्य कहलाता है।

करते-धरते कोई काम विगड जाने से अथवा भारी कलक आ जाने से अब समाज मे से वहिष्कार-तिरस्कार मिल रहा है। समाज तथा परिवार मे पैर रखने जितना ही स्थान नही रहा जिधर जाए उधर मानव अगुलियाँ दिखावे थू-थू करे। ऐसी स्थिति मे जो वैराग्य होता है उसे 'ममाज परिवार' भय से होने वाला वैराग्य कहते हैं।

कही चोरी, डाका डालने पर अथवा किसी की हत्या करने पर उम अपराधी को जीवन पर्यन्त कारागार या मृत्युदट मिलता है। इस प्रकार कुकर्मो के कटु परिणामो को प्रत्यक्ष देखकर या परोक्ष रूप से सुनकर के जो ससार के प्रति उदासीनता आती है उसे राज-भय वैराग्य कहते हैं। जिम प्रकार चम्पा निवासी श्रेष्ठी श्रमणोपासक पालित के सुपुत्र समुद्रपाल के वैराग्य का नैमित्तिक कारण चोर, राज्य कर्मचारी एव आखो के सामने तैरने वाला अशुभ कर्म का विपाक था। हाथ पैरो मे वन्धित हथकडी वाले चोर को कर्मचारियो द्वारा ले जाते हुए तस्कर को प्रत्यक्ष देखकर समुद्रपाल की अन्तरात्मा जाग उठी, वोल उठी—

त पासिऊण सविग्गो, समुद्दपालो इणमव्ववी।
अहोऽसुहाण कम्माण, निज्जाण पावग इम ॥
सबुद्धो सो तहि भगव, परमसवेग मागओ।

—उत्तराध्ययन अ० २१।६-१०

अहो ! अशुभ कर्मों का अन्तिम फल पाप रूप ही है। यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। इस प्रकार वोध पाकर समुद्रपाल परम-सवेग को प्राप्त हुए। तदनुमार कोई रोते हुए, कोई चिल्लाते हुए और कोई जय-जय नन्दा, जय जय भद्दा, "राम नाम सत्य" की धुन गाते हुए एक निष्प्राण देह को उठाकर श्मशान घाट को तरफ जा रहे हैं। ऐसे भयावने दृश्य को देखकर समार के प्रति अरुचि आती है, अरे ! यह जन्म और मरण तो सर्व समारी जीवो के पीछे लगा हुआ है। एक दिन मैं भी इस नश्वर शरीर को छोड के खाली हाथो चला जाऊँगा। अत क्यो नही मैं ऐसा शुभ काम करू ताकि इस अनादि कालीन जन्म-मरण पर ही विजय प्राप्त कर लू। ऐसे विचारो से जो वैराग्य होता है—वह जन्म मरण-भय, वैराग्य कहलाता है।

महारभ, परिग्रह, हिंसा, मद्यमास के सेवन और काम, क्रोध, लोभ आदि वृत्तियो के वश होकर शास्त्रो के विपरीत पदार्थो का अन्याय अनुचित पूर्वक भोग-परिभोग करने से 'रत्न, शर्करा, वालुका, पक धूम, तम और तमतमाप्रभा आदि नरको की प्राप्ति होती है। वहाँ अनेक भयानक कष्ट उठाने पडेंगे। यहाँ का विषय सुख तो क्षणिक है परन्तु इसके परिणाम मे प्राप्त होने वाली नारकीय असह्य पीडा अनन्तगुणी भयावनी, दु खकारी, त्रास देनेवाली और पल्योपम, सागरोपम तक रहने वाली

होगी। इस भय से होने वाले वैराग्य को—नरक-भय वैराग्य कहते है। और भी अनेक भय कारणो से वैराग्य होता है, ये भय के सर्व कारण दु ख से होने वाले वैराग्य की कोटि मे आते हैं।

मोह-गर्भित वैराग्य—

किसी मानव को अपने माता-पिता पुत्र आदि सगे-सम्बन्धियो पर घनिष्ठ प्रेम था। परन्तु "जो आया सो जायगा, राजा रक फकीर", इस युक्ति के अनुसार कुछ ही दिनो के बाद वह प्यारी अथवा वह प्यारा काल के गाल मे चला जा रहा। मोह के वश आतुर होकर अब यह पुन-पुन आर्त-रौद्र ध्यान करता हुआ आँसू बरसाता है और सिर पीटता है। परन्तु अन्ततोगत्वा काल के सामने निराश ही होना पडा। अब उसका सासारिक कारोबार मे दिल दिमाग नहीं लगता है। पागल सा बना हुआ रात-दिन उसकी स्मृति मे अन्दर का अन्दर ही सूखा जा रहा है, न खाने का, न पीने का और न वस्त्र पहनने का ध्यान है।

कुछ समय बाद किंचित मोह का नशा उतरा, तब विचार करने लगा कि—हाय! यह ससार ही ऐसा है वास्तव मे—

"कौन है तेरा, तू है किसका, आंख खोलकर जोय।
तेरा अपना यहाँ नहीं कोय॥

इस प्रकार वैराग्यमय विचारो की धारा मे बहते हुए जो भाव उमगते है, उसे मोह-गर्भित वैराग्य कहा जाता है। यह वैराग्य मध्यम कोटि का है। एक कवि ने कहा है—

नारी मुई घर सम्पति नासी। मु ड मु डाए भए सन्यासी॥

ज्ञानगर्भित वैराग्य—

मै कौन हू, आया कहाँ से रूप क्या मेरा सही।
किस हेतु यह सम्बन्ध है? रखू इसे अथवा नहीं॥
यदि शान्ति और विवेक पूर्वक यह विचार कभी किया।
सिद्धान्त आत्मज्ञान का तो सार सारा पा लिया॥

आत्मा वास्तव मे चेतन स्वरूप, अनन्त ज्ञान विज्ञान शक्ति का स्वामी है। आत्मा शरीर नही शरीर आत्मा नही। दोनो भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वाले हैं। एक अविनाश, अविकार और अविध्वस स्वभाव वाला है तो दूसरा सडन-गलन विध्वस स्वभाव वाला है। मोक्ष के सर्वोत्तम सुखो को शरीर नही, आत्माराम ही प्राप्त करने वाला है। परन्तु घने कर्मों की वजह से इस शुद्ध चैतन्य ने ससार परिभ्रमण किया है और कर रहा है। लेकिन भविष्य मे इसे गत्यनुगति मे भटकना न पडे इसका इलाज अवश्यमेव मुझे कर लेना चाहिये। कही ऐसा न हो कि—यह आत्मा किसी योनि विशेष मे जा गिरे जहाँ देव, गुरु, धर्म, रत्नत्रय की प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ हो जाय। जैसे भ० ऋषभोवाच—

सबुज्झह किं न बुज्झह, सबोही खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हूवणमंति राइओ, नो सुलभ पुणरविजीविय॥

हे पुत्रो! सत् बोध रूपी धर्म को प्राप्त करो। सब तरह से सुविधा होते हुए भी धर्म को प्राप्त क्यो नही करते? अगर मानव जन्म मे धर्म बोध प्राप्त न किया तो फिर धर्म बोध प्राप्त होना बहुत कठिन है। गया हुआ समय तुम्हारे लिये वापस लौटकर नही आने वाला है और न मानव जीवन ही सुलभता से मिलने वाला है।

अत इस समय मुझे मानव भव मे आत्मा को महान् बनाने की सर्व सामग्रियाँ उपलब्ध हैं। जो भी मुझे प्रशस्त कार्य करना है, वह विना विलम्ब से कर लूँ। ताकि यह आत्मा भविष्य मे अनन्त सुखो को प्राप्त कर सके।

इस प्रकार आध्यात्मिक विषय का ही चिन्तन, मनन, मन्थन करने से तथा सत्-असत्, हेय-ज्ञेय और उपादेय आदि का विवेक पूर्वक विचार विमर्श करने से जो वैराग्य फव्वारे की भाँति हृदय प्रागण मे प्रस्फुरित होता है उसे ज्ञान-गर्भित तथा सर्वोत्तम वैराग्य कहा गया है।

एक वार मानव अपने सतापो मे पीडित होकर भगवान के पास गया और दीन याचना करने लगा—प्रभो! मुझे शक्ति दो, मैं इन सतापो से लड सकू।

भगवान—वत्स! इन सतापो से मुक्त होने के लिये शक्ति की नही, विरक्ति की जरूरत है। शक्ति तो स्वय सताप का स्रोत है। जहाँ शक्ति है, वहाँ अह है, जहाँ अह है वही सघर्ष हैं, सताप ताप की हजारो हजार लहरें परस्पर टकराती हैं। मुक्ति के लिये विरक्ति करो।

वास्तव मे ससारशक्तिसम्पन्न होने की दौड कर रहा है। पर शक्ति तो स्वय अशान्ति पैदा करती है। शान्ति की प्राप्ति के लिये मानव को शक्ति से हटकर विरक्ति की ओर आना होगा। क्यो कि विरक्त भाव आत्मिकशक्ति वर्धक माना है। जैसा कि—

अझप्पसज्जे पसरत तेए, माणभुराए परिभासमाण।
फत्तो तमो सुसर भोग पको, सिग्घ पलायति कसाय चोरा॥

—सुभाषित

आध्यात्मिक सूर्य के प्रखर तेज से जिसका मन रूपी नगर आलोकित हो चुका है। वहाँ अन्धकार कहाँ? अहकार रूपी कर्दम सूख जाता है और कषाय चोर भी शीघ्र पलायन हो जाते हैं।

अनेकानेक वैराग्य के मार्ग बताए गये हैं। मोक्षाभिलाषी यात्रियो को चाहिए कि—वे येन-केन-प्रकारेण हृदय मन्दिर मे वैराग्य को पैदा करे। इसका महत्त्व पूर्ण स्वरूप इस सूत्र मे बताया है।

'जगत्कायस्वभावौ च सवेगवैराग्यार्थम्"।

अर्थात्—सवेग और वैराग्य के लिये ससार और शरीर के स्वभाव का विचार करना चाहिए। साथ ही साथ जब हम ज्ञान का पठन करेंगे तभी इसका उद्भव होगा। विना ज्ञान के वैराग्य विना तेल के दीपक के समान है। ज्ञान प्राप्त करने के लिये क्रम पूर्वक उन शास्त्रो का अध्ययन करना चाहिये, जिनमे आप्तपुरुषो के आचार-विचार विषयक उपदेश सग्रहित हो। इसके साथ तत्त्वज्ञान के भिन्न-भिन्न ग्रन्थो का अध्ययन भी बुद्धिमान पुरुषो को अवश्य करना चाहिए। क्योकि वैराग्य मे रमण करने वाले की अन्तरात्मा फिर सासारिक कार्यों से निर्भय हो जाता है। जैसा कि- नीति शतक मे कहा है—

भोगे रोगभय कुले च्युतिभय वित्ते नृपालाद् भय।
मौने दैन्यभय वले रिपुभय रूपे जराया भयम्॥
शास्त्रे वादभय गुणे खलभय काये कृतान्ताद्भय।
सर्वं वस्तु भयान्वित भुवि नृणा वैराग्यमेवाऽभयम्॥

अर्थात् भोग मे रोग का, कुल परिवार मे हानि का, धन मे 'नृप आदि का, मौन मे दीनता का, शक्ति मे शत्रु का, सौन्दर्यता मे बुढापा का, शास्त्र ज्ञान मे वाद विवाद का, गुणी जीवन मे दुरा-

रमाओ का और पार्थिव देह के पीछे मृत्यु का भय मण्डराया हुआ है। इस प्रकार वैराग्यवान आत्मा के अतिरिक्त समस्त ससारी जीव भयाकुल है। इसी विषय की सम्पुष्टि निम्न-श्लोक मे सुनिए अर्जुन ने श्री कृष्ण से मन-योग सम्बन्धित समाधान पूछा —

चचल हो मन कृष्ण, प्रमाथि वलवद् दृढम् ।
तस्याह निग्रह मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

प्रभो ! सशक्त मन रूपी अश्व इतना चचल है कि उसका निग्रह करना वायु की तरह अति दुष्कर है ऐसा मैं मानता हू। समाधान देते हुए श्री कृष्ण वासुदेव बोले—

असशय महावाहो ! मनोदुर्निग्रह चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वैराग्येण च गृह्यते ॥

हे कौन्तेय ! निसन्देह मन रूपी घोडे का निग्रह दुष्कर अति दुष्कर माना है। किन्तु साधना के माध्यम से एव वैराग्य भावना पूर्वक साधक मन का निग्रह करने मे सफल वनता है।

अतएव वैराग्यभाव आत्मिक सुख सम्पदा को देने वाला है। उसकी उत्पत्ति आत्मा से ही होती है। देहधारी को विदेह दशा तक पहुचाने मे वैराग्यभाव वहुत वडा सहायक है। वीतराग दशा की उपलब्धि विराग भाव की अभिवृद्धि किये विना नही हो सकती है। इस प्रकार वैराग्यमय साधक की भावना वलिष्ट मानी है। भले आप किसी स्थान पर किसी गुरु के समीप एव किसी भी परिधान मे रहें। किन्तु विरागता की ओर अवश्य आगे वढें। इतना कहकर मैं अपने वक्तव्य को विराम देता हू।

पंचनिधि माहात्म्य

यह व्याख्यान काफी वर्षो पुराना है। सम्वत् २०१७ का वर्षावास रामपुरा था। उस वक्त आप द्वारा श्री स्थानांग सूत्र का तात्विक एव समन्वयात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा था। श्रोता गण काफी चाव से श्रवणार्थ उपस्थित हुआ करते थे। सलिल प्रवाह की तरह गुरु प्रवर के वाणी का शीतल-मन्द-सुगन्ध प्रवाह श्रोताओं के हृदय को छूता हुआ निर्बन्धन के रूप मे यो हीं चला जा रहा था। तत्पश्चात् कुछेक व्याख्यान अवश्य सग्रहित किये गये थे। किन्तु असावधानी की वदौलत उनमे से पचनिधि नामक यह एक व्याख्यान ही हमे मिल पाया है। सचमुच ही व्याख्यान के भावार्थ मानव के अन्तरग जीवन को स्पर्श करता है। पढिए और मनन कीजिए। —सम्पादक]

प्यारे सज्जनो !

आप के सामने काफी दिनो से स्थानाग सूत्र के प्रवचन हो रहे है। इस सूत्र का दायरा वहुत विशाल एव गहन-गभीर रहा है। वक्ता एव श्रोतागण को वोलने की एव समझने सुनने की काफी गुजाइश रही है। पचनिधि सम्वन्धित आज मै आप से कुछ कहूगा। यह विषय मानव के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन को स्पर्श करता है। 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति'' सूत्र मे नवनिधि के नाम एव विस्तृत वर्णन मिलता है। जैसा कि– उवगया णवणिहीओ त जहा—नेसप्पेणिही, पडुअए णिही, पिगलए णिही, सव्वरयणे णिही, महपउमे णिही · सखणिही।" यहाँ मेरा अभिप्राय नवनिधि से नही किन्तु पचनिधि से है।

निधि का अर्थ है—खजाना, कोप, भण्डार आदि-आदि। आज का मानव केवल चाँदी स्वर्ण और रुपयो को ही प्रधान निधि स्वीकार करता है। ओर वह फिर इस ऐश्वर्य प्राप्ति के पीछे इधर-उधर भटकता और धक्का खाता है। अधिक अतुल परिश्रम भी करता है। नही करने योग्य अमानुषिक कृत्यो को भी कर वैठता है। यहाँ तक कि इज्जत आवरु को भी मिट्टी मे मिला देता है। तथापि वह अन्धा मानव पुण्य के अभाव मे इच्छित निधि (खजाना) को प्राप्त करने मे विफल ही रहता है।

भ० महावीर ने धनसम्पति को ही मुख्य निधि की सज्ञा नही दी। सूत्र स्थानाग मे पाँच प्रकार की निधि का सुन्दर सरल वर्णन किया गया है।

"पचणिही पण्णत्ता त जहा—पुत्तणिही, मित्तणिही, सिप्पणिही धणणिही, धान्नणिही।"

पुत्रनिधि

पुत्र की गणना भी निधि मे की गई है सो उचित ही है। क्यो कि आज के ये होनहार वालक (सपूत) कालान्तर मे राष्ट्र, समाज और धर्म के पालक एव रक्षक वनेगें। राष्ट्र, समाज और धर्म रूपी विशाल रथ इन्ही सपूतो के कधो पर विकास के विराट मार्ग को पार करेगा। दीन-हीन गरीब

देश समाज भी इन्ही सपूतो के बल-बुद्धि और विद्या द्वारा ही ऋद्धि-सिद्धि एव सर्व आवश्यकताओ से सम्पन्न हो उठेगे। तभी तो भारतीय कवि की भाव वीणा गूँज उठती है।

"पूत-सपूत तो क्यो धन सचै'

आज, अमेरिका, रसिया, इगलैण्ड और जापान आदि ऐश्वर्य सम्पन्न समझे जाते है। और भौतिक उन्नति मे होडा-होड लगा रहे है। इस उन्नति मे उन्ही देशो के सपूतो के भरसक परिश्रम का ही फल है। भारत धर्म-प्रधान देश के नाम से विख्यात है। इसमे भारत माता के लाडले उन त्यागी ऋषि मुनियो की कृपा का ही सुफल कहा जायगा। हा तो प्रत्येक देश और समाज के उत्थान-पतन एव उतार-चढाव का उत्तरदायित्व भावी सतान पर ही निर्भर रहता है।

मातृभक्त चाणक्य पाठशाला से घर आया और विना कहे माता के पैर एव हाथो को दवाने लगा। क्योकि माता ने अधिक परिश्रम कर डाला था। एकाएक उदासीनाकृति को देखकर चाणक्य वोला—"आज चेहरा उदास क्यो माता ? क्या किसी से लडाई हुई है ?"

"नही वेटा।"

"तो क्या कारण ?"

वेटा! तू इस समय मेरी कितनी भक्ति करता है। वास्तव मे तू मातृभक्ति के सर्वथा योग्य है किन्तु ?

"किन्तु क्या ? साफ-साफ मुझे समझा! वर्ना लडूँगा" ?

वेटा! तेरे ये जो दो दाँत वाहर निकले हुए हैं। इन दोनो के प्रभाव से तू वहुत वडा आदमी वनेगा। ऐसा ज्योतिषियो का अभिमत है। फिर तू मुझे भूल जायगा। जैसी आज मेरी सेवा कर रहा है। वैसी सेवा फिर नही कर पायेगा। उदासीनता का यही कारण है वेटा!

चुपचाप चाणक्य मकान के पिछवाडे मे पहुचा। और आव देखा न ताव उन दोनो दातो को उखाड फेंके।

रक्तधारा वह रही थी। माता के पवित्र पैरो मे नत-मस्तक हुआ।

चौंक कर माता वोली—यह क्या ? खून खच्चर किसने किया ?

माता तेरी उदासीनता का जो कारण था उसे मैने जड-मूल से खत्म कर दिया है। मातृ-भक्ति के वाधक तत्वो को मिटाना ही मै ठीक मानता हूँ। इसलिये यह कार्य मैंने ही किया है। अव तेरी भक्ति मे वाधा नही पडेगी। तुझे अव सतोष भी हो जायगा।

मातृभक्त के उद्‌गारो को सुनकर माता फूली नही समा रही थी। कालान्तर मे वही चाणक्य मत्री पद के योग्य वना है। जिसने "चाणक्य नीति" नामक ग्रन्थ लिखा है।

कितनेक मानव वालको के जीवन से खिलवाड और उपेक्षा कर बैठते हैं। परन्तु उन्हे यह ध्यान नहीं कि विन्दु मे सिन्धु वनता है। वट वृक्ष का एक छोटा सा वीज कालान्तर मे एक विशालकाय विटप वन जाता है। यही स्थिति पुत्र की भी समझनी चाहिए। इन्ही पुत्रो मे भगवान महावीर, वुद्ध, राम, कृष्ण गाधी और नेहरू आदि छिपे हुए हैं। अतएव सुविनीत सतति को अपनी भावी निधी समझकर उनकी देख भाल तथा उन्हे सुसस्कारित करना देश समाज के कर्णधारो का एव उनके माता पिता का प्रथम कर्तव्य है।

मित्र-निधि

मित्र को भी निधि की सज्ञा दी गई है। इस बुद्धिवादी युग मे प्रत्येक देश और समाज को इस निधि की परम आवश्यकता प्रतीत हो रही है। क्योकि मित्रनिधि मे समाज राष्ट्र और मानव मात्र के लिये भविष्य का सुन्दर, समुज्ज्वल, सृजन और मगलप्रभात छुपा हुआ है। इस निधि के अभाव मे प्रत्येक का भविष्य घोर तिमिराच्छादित रहता है। यह तो स्वयमेव सिद्ध है कि आज भारत मित्र-निधि के सिद्धान्त के वल पर ही प्रतिक्षण उन्नति की ओर गमन कर रहा है। और सिर पर मण्डराने वाली युद्धो की काली पीली घटाओ को निरन्तर आगे से आगे धकेलता हुआ विकास के मार्ग को निर्भयता पूर्वक पार कर रहा है। जवकि यत्किंचित् देश इस सिद्धान्त के विपरीत होकर यानी विघटन विभीषिका की ओर मुडकर विनाश-पतन और अवनति को आमन्त्रण दे रहे है।

जहाँ सप तहाँ सम्पति नाना। जहाँ कुसम्प तहां विपत्ति निधाना।

आत्म-विकाम का क्रम भी मित्रनिधि पर टिका हुआ है। जव भव्य की मानसस्थली मे रत्नत्रय का सुन्दर स्तुत्य सगम स्रोत फूट पडता है तव कही जा करके उस भव्य आत्मा को कुछ आत्मिक ज्ञान-भान होता है। वरन् एक के अभाव मे अर्थात् सम्यग्दर्शन के अभाव मे वह ज्ञान कुज्ञान वह चारित्र कुचारित्र एव वह साधना करणी केवल ससारवर्धक ही मानी जाती है। अतएव अपेक्षानुसार सर्वक्षेत्रो मे मित्रनिधि की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि एक लूले-लगडे मानव के लिये अग-उपाग की।

आज समाज मे इस मित्रनिधि की काफी आवश्यकता है। मित्रनिधि की अभिवृद्धि मे ही सभी समाजो और सभी सम्प्रदायो का अभ्युत्थान निहित है। लेकिन आज हम प्रत्यक्ष देख रहे है कि वनी वनाई मित्रनिधि की शृंखला इस खेचातानी के चक्कर मे टूट-फूट रही है। समझ मे नही आता है कि इस सकुचित सकीर्ण विपरीत विघटन की गली मे गमन कर किसने क्या प्राप्त किया और कौन क्या प्राप्त कर सकेगा ?

आज पुन इस क्षत-विक्षत समाज के सिर पर मित्रनिधि, सगठन और स्नेह सरिता सलिल के लेपन की नितान्त आवश्यकता है न कि विघटन विलेपन की।

शिल्प-निधि

स्वावलम्बी वनने के लिये कितना महान् सिद्धान्त है, पुत्र और मित्रनिधि का अभाव होने पर भी कोई भी केवल शिल्प-निधि द्वारा अपने भविष्य का सुन्दर एव नैतिक निर्माण कर सकता है। थोडी देर के लिये समझो की कोई स्त्री चढते यौवन मे वैधव्य को प्राप्त हो गयी। अव उसके पास न पुत्र और न मित्रनिधि है। इस विपद्-वेला मे उसके लिये कौन सा साधन है ? एव उदर-पूर्ति का क्या जरिया ? क्या जीवनपर्यन्त गडे मुर्दे उखाडती रहेगी ? क्या मृतको को रोती रहेगी ? आर्त-रौद्रध्यान ध्याती रहेगी ? नही यह रास्ता गलत है। परन्तु इसके वदले मे यदि वह वहिन रजोहरण (ओघा) पुजनिया और माला आदि ऐसी वनाने की अनेको प्रकार की हस्तकला को प्राप्त कर ले तो आसानी से वह अपना जीवनयापन कर सकती है और वह भी धर्मधारा से युक्त, उसको फिर न पराधीन और न दूसरो के मुह की ओर ताकने की आवश्यकता है।

पुणिया श्रावक ने भी अपनी समस्त धन राशि को जनहित में व्यय कर केवल निर्जीव शिल्प कला (सूत कातने) के बल पर ही अपना धार्मिक जीवन कितना आदर्शमय बनाया था ? इसी प्रकार आर्द्रकुमार की धर्मपत्नी ने भी जीवनयापन किया था। आज इस सिद्धान्त का पुन आगमन हुआ है। आज सर्वत्र एक ही आवाज प्रसारित हो रही है "आराम हराम है' अत परिश्रम करो। परन्तु भगवान आदिनाथ और महावीर आदि तीर्थंकरो ने तो कई शताब्दियो पहले ही ६८ तथा ७२ कलाओं के समीचीन पाठ मानव-समाज को पढा चुके हैं। शिल्प कला भी जिसके अन्तर्भूत है।

साहित्य सगीत कला विहीन साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन ।
तृण न खादन्नपि जीवमान-स्तद् भागधेय परम पशूनाम् ॥

—नीतिशतक

मानव को अवश्यमेव शिल्पज्ञ होना ही चाहिए। चूँकि साहित्य और कला विहीन मानव शोभा का पात्र नही बनता है। बल्कि पशु की श्रेणी मे गिना जाता है। अतएव शिल्प निधि का जीवन मे एक महत्वपूर्ण स्थान पाया जाता है। वास्तव मे कवि का कथन अक्षरश सत्य है।

"हो सेवामय जीविका, बनो परिश्रमी धाम ।
मुफ्त-खोर बनना न कभी, करते रहना काम ॥"

धन-निधि

धन निधि का महत्व तो स्वयमेव सिद्ध है। भूतकाल मे भी था भविष्य में रहेगा और वर्तमान मे तो कहना ही क्या। आज सर्वत्र धन ही धन का बोल बाला है। मानव चाहे कैसा ही क्यो न हो, परन्तु धन के प्रताप से उसके समस्त दोष, दुर्गुण ढक जाते हैं। धन के पीछे मानव की वाह-वाह और पूजा प्रतिष्ठा होती है।

"यस्यास्ति वित्त स नर कुलीन, स पण्डित स श्रुतवान् गुणज्ञ ।
स एव वक्ता स च दर्शनीय सर्वे गुणा काचनमाश्रयन्ति ॥

अर्थात् जिसके पास धन है—वही मानव सर्व गुणसम्पन्न समझा जाता है। क्योकि सुवर्ण (धन) मे ही सर्व गुणो का निवास माना गया है।

आज धन का स्वामी गृहस्थ नही बल्कि गृहस्थ का स्वामी धन है। तभी तो अहर्निस मानव धन रूपी स्वामी की खोज मे भटकता है। भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि को सहन करता है। धन की प्राप्ति हो जाने पर उसकी निगरानी मे ही रत रहता है। और धर्म-ध्यान आदि आत्मसम्बन्धी सर्व क्रियाओ को भूल जाता है। न खर्च करता है न खाता है एतदर्थ जन साधारण की दृष्टि आज बडे-बड़े सेठियो पर जा पडी है। जिसका न उचित उपयोग और न सही सहयोग। हाँ, साधु के पास ज्ञाननिधि और गृहस्थ के पास धन निधि अनिवार्य है। परन्तु उसका उपयोग होते ही रहना चाहिए। नदी का पानी बहता हुआ ही भला लगता है। एक मानव विचारा धन के अभाव मे भयकर से भयकर दु खो का सामना करता है और एक मानव के पास अपार धनराशि एकत्रित है। आज का युग इतनी विषमता कैसे सहन करेगा ?

"भूखी दुनियां अब न सहेगी, धन और धरती बट के रहेगी।"

यह नारा आज जोर शोर से कर्ण-कुहरो मे गूँज रहा है। इसीलिए भाइयो! देश, समाज और प्राणी मात्र के सरक्षण के लिए धन को बिखेर दो! कहा भी है—**शतहस्त समाहर! सहस्र हस्त सकिर!** अर्थात् मानव! सैंकडो हाथो से बटोरो और हजार हजार हाथो मे बिखेरो। जैसे माता अपने बिलबिलाते पुत्र पुत्रियो के लिए रोटियो का डिब्बा खोल देती है। वैसे ही आप भी तिजोरियो के ताले खोल दो। आज ताले लगाने की आवश्यकता नही है। आज तो गुत्थियो को सुलझाने की और भामाशाह की तरह पुन आदर्श को जन्म देने की आवश्यकता है।

अपने वरद कर-कमलो द्वारा धन का सदुपयोग करना श्रेयस्कर है। यही धन निधि पाने का सार है। अन्यथा यह तो सुनिश्चय समझे—

दान भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुक्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

धान्य-निधि

इस पार्थिव शरीर के साथ इस धान्य-निधि का घनिष्ट वास्ता है। इस विषय मे अधिक लिखने की, कहने की कोई आवश्यकता नही है। एक अमीर से लेकर एक दीन-हीन प्राणी भी इस निधि के माहात्म्य को खूब अच्छी तरह जानता और समझता है।

शास्त्रो मे नौ प्रकार के पुण्यो मे से पहला 'अन्नपुण्य' कहा गया है। मानव मात्र का इस निधि से उतना ही सम्बन्ध है जितना सम्बन्ध शरीर से आत्मा का। इस निधि के अभाव मे सर्व निधिया निस्सार, शुष्क और भद्दी प्रतीत होती हैं। क्योकि इसके बलबूते पर ही प्रत्येक प्राणी का शारीरिक और बौद्धिक विकास होता है। अत अनन्तकाल से मानव की यह मनोज्ञ कात प्रिय इष्टकारी सात्विकनिधि रही है और रहेगी। सोने, चाँदी और रुपयो के वे ढेर किस काम के? वह भव्य-भवन और वह बहुमूल्य वेश-भूषा भी किस काम की? जबकि पेट मे चूहे दौड रहे हैं। घर मे चूहे भी एकादशी व्रत करते हैं। यानि इस निधि की विद्यमानता मे मानव का सुखोद्यान फला-फूला व हरा-भरा प्रतीत होता है। और इसकी अविद्यमानता मे उजडा सा जान पडता है।

कई उल्टी मति के मानव, मास, अण्डो आदि को भी मानव का भोजन मानते हैं और धान्य (अन्न) की श्रेणी मे रखने का खोटा प्रयास-परिश्रम करते हैं। नि सन्देह यह मान्यता कुत्सित और गलत है। जो ऐसा मानते हैं—वे निश्चय ही कर्मो के भार से गुरु बनते हैं और उनका नम्बर दानवो की कोटि मे गिना गया है।

बन्धुओ! आप लोग इस अन्ननिधि के द्वारा प्राणी मात्र को साता पहुँचा सकते है और विपुल पुण्य रूपी पूँजी इकट्ठी भी कर सकते हैं। आपके घरो को भगवान ने 'अभगद्वार' की महान् संज्ञा दी है। जिसका अभिप्राय यह है कि द्वार पर कोई भी अतिथि, अभ्यागत आ जावे, तो भूखा कदापि न लौटे। देखिये—मुगल साम्राज्य युग मे गुजरात के एक नर रत्न 'खेमादेदरानी' ने भी दुर्भिक्ष से दलित-दुखित एवं भूख पीडित जनता के लिये अपना अमूल्य अन्न भण्डार खोलकर अहमदाबाद के बादशाह तक को विस्मित कर दिया था। आज फिर वही आवाज, वही पुकार! और वही ध्वनि गूँज रही है। अन्न मँहगा है। 'अस्तु, समय काफी आ चुका है। मैं अपने भाषण को सक्षेप मे पूरा करता हूँ।

जिस प्रकार अपने स्थान पर पाचो अगुलियो का महत्त्व अपूर्व है, वैसे ही पाचो निधियो का भी समझ लीजिए। तथापि आज के इस युग मे धान्य और मित्र निधि का महत्त्व और भी अधिक बढ

जाता है। कारण तो स्पष्ट ही है—धान्यनिधि के विना सासारिक कारोवार चल नही सकते और मित्र-निधि के अभाव मे सामाजिक, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आदि कोई भी विकास असम्भव है।

यदि सम्यक् प्रकार से मानव अपने मन-मस्तिष्क मे मित्रनिधि आदि को स्थान दे तो सत्वर ही सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक सर्व गुत्थियाँ सुलझ जायेंगी, आपत्तिया छिन्न-भिन्न होते देर न लगेगी और समाज एक हरी-भरी वाटिका के रूप मे विकसित हो उठेगी। फिर उसमे स्नेह सरिता का अविरल प्रवाह फूट पडेगा। जहाँ, सगठन, विवेक और विनय के कमल खिलेंगे। हर्ष, खुशी सम और दम के मनोज्ञ सुखकारी, इष्टकारी फव्वारे उछल पडेंगे। समाज और राष्ट्र के विकास का स्रोत फिर कदापि अवरुद्ध नही होगा वल्कि प्रकाशवत उस समाज-सघ का भविष्य युग-युग तक जगमगाता रहेगा और नूतन चेतना व जागृति प्रदान करता रहेगा।

१०. कर्म-प्रधान विश्वकरि राखा

"कर्मप्रधान विश्व करि राखा' गोस्वामी तुलसीदासजी की चौपाई की अभिव्यक्ति स्पष्ट बता रही है कि सारा विश्व कर्माधीन है। वास्तव मे ऐसा ही है। विश्व की अचल मे निवास करने वाले एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चउरीन्द्रय एव पचेन्द्रिय आदि सभी प्राणी कर्म शृ खला से आवद्ध हैं। देहधारी स्वय भावावेग मे उलझकर शुभाशुभ कर्म जुटाता एव विखेरता रहता है। शुभाशुभ कर्म विपाक ही ससार का 'अय' द्वार माना है। वस्तुत जो कर्म विपाक का सद्भावी है वह भले विश्व वदनीय भी क्यो न वन गया हो तथापि उसके लिए ससार शेष है, क्योंकि आवागमन का मूल कारण नष्ट नहीं हुआ है। जब कारण का सद्भाव है तो कर्मो की अवश्य निष्पत्ति हुई। वह सकर्मी, सरागी, सकषायी भी। गुरु प्रवर का "कर्म-प्रधान विश्व करि राखा" नामक प्रवचन तात्विक मीमासा से ओत-प्रोत है— सपादक]

प्यारे सज्जनो!

जीव और अजीव (कर्म) तत्वो की जितनी सूक्ष्म विवेचना हमे जैन-दर्शन मे दृष्टि गोचर होती है उतनी इतर दर्शन जैसा कि—बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, वैशेषिक एव मीमासक आदि मे नही मिलती। इसका कारण है अर्हत् दर्शन के प्रणेता वीतराग है और अन्य दर्शनो के प्रणेता छद्मस्थ सरागी। केवल ज्ञानी के समक्ष जिनकी ज्ञान-गरिमा की अनुभूतियाँ नगण्य मानी हैं। वस्तुत जैन दर्शन का द्रव्यानुयोग अत्यधिक गहरा-गभीर और गुरुतर है। श्लाघनीय ही नहीं अपितु, उपादेय भी सभी ने माना है। यहाँ तक कि—पाश्चात्य विद्वान् भी यह स्वीकार करते हैं कि—जैन दर्शन एक अनुपम दर्शन है। जो अर्वाचीन-प्राचीन अनुभूतियो से और तात्विक विश्लेषणात्मक शैली से भरा हुआ है।

हाँ तो, जैन दर्शन मे जीवो का वर्गीकरण इस प्रकार किया है —

चेतन की अपेक्षा समष्टि के सभी जीव एक प्रकार के, त्रस-स्थावर की दृष्टि से दो प्रकार के वेद की अपेक्षा तीन प्रकार के, गति की अपेक्षा चार प्रकार के, इन्द्रिय की अपेक्षा पाच और काया की अपेक्षा छ प्रकार के, इसी प्रकार १४ और ५६३ जीवो के भेद भी होते है। तत्त्वार्थसूत्र के आधार पर जीवो के दो भेद भी होते हैं—

"ससारिणो मुक्ताश्च"—ससारी और मुक्त।

भेद विज्ञान को समझें—

मुक्त आत्माओ की मुझे अव चर्चा नही करनी है। क्योकि जो मुक्त होकर कृतकृत्य हो चुके हैं उनकी चर्चा के पहले अपने को ससारी जीवो की चर्चा करनी है। ससारी आत्मा जन्म-मरण को पुन पुन क्यो धारण करती है? कर्मों के साथ वधित क्यो और कैसे है? और उसके प्रेरक कौन? जवकि

कर्म जड पद्गल हैं और जीव अनतशक्ति का स्वामी। केवल ज्ञान का अखट भण्डार अपने आप मे सजोये बैठा है। भगवान् बनने की क्षमता रखता है। जीवात्मा की दशा फिर भी दयनीय क्यो ? उपस्थित महानुभावो ! कभी आपने चिंतन-मनन भी किया ? आपके पास एक ही उत्तर है—'We have no time हमारे पास समय का अभाव है। ऐसा कहना क्या अपने आपको धोखा देना नही है ? समय कही नही गया ? किंतु तत्त्व ज्ञान के प्रति हमारी उपेक्षा वृत्ति रही है। एक राजस्थानी कवि कहता है—

> "दुनियां रा थोकडा थे घणा ही चितारिया
> आत्मा रो थोकडो चितार लेनी।।"

इसलिए जागृत आत्माओ को कम से कम निज स्वभाव का ज्ञान-विज्ञान चिंतन कुछ तो करना ही चाहिए। "अप्पा सो परमप्पा" आत्मा ही परमात्मा स्वरूप है तो यह भेद-दीवार कहां अटक रही है ? परमात्मा दशा की प्राप्ति क्यो नही हो रही है ? इसलिए कहा है— "पढम नाण तओ दया।' पहले जानो फिर करो। भेद-विवक्षा को समझने के लिए कहा है—

> **आत्मा परमात्मा मे कर्म ही का भेद है।**
> **कर्म गर कट जाये तो फिर भेद है न खेद है।।'**

कर्मो का बहुमुखी प्रभाव—

वास्तव म देखा जाय तो बात बावन तोला पावरत्ती सही है। एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व प्राणी कर्माधीन है। कर्मेश्वर ने सब पर अपना भारी प्रभुत्व जमा रखा है। मोक्षस्थ आत्माओ के अतिरिक्त ऐसा कोई भी जीव-जन्तु नही बचा है जो कर्म कीट से विलग किंवा पृथक् रहा हो, भले कितना भी हृष्ट-पुष्ट शक्तिसम्पन्न क्यो न हो किन्तु सब के सब कर्म बीमारी मे पीडित-दुखित एव ग्रसित है। इस कारण ससारी प्रत्येक आत्माएँ नानाप्रकार की पर्यायो मे परिवर्तित होती हुई अपार ससार की गली-कूंचो मे परिभ्रमण करती रहती है। भ० महावीर ने कहा है—

> **एगया देवलोए सु णरएसुवि एगया। एगया आसुर काय अहा कम्मेहि गच्छई।।**
> **एगया खत्तिओ होई तओ चण्डाल बुक्कसो। तओ कीड पय गोय तओ कुथु पिपीलिया।।**
>
> —उत्तरा० अ० ३ गा० ३।४

भव्यात्माओ ! स्वकृत-कर्मो के अनुसार यह जीव कभी स्वर्ग, कभी नरक, कभी असुरकाय, कभी क्षत्रिय, कभी चडाल तो कभी वर्णशकर जातियो मे और कभी-कभी कीट, पतगे, कुथुए और चीटी आदि योनियो मे उत्पन्न होता है।

कर्म पुद्गल जड माने हैं और आत्मा चैतन्य स्वरूप ! फिर जड और चेतन का सयोग और सम्बन्ध कैसे और क्यो ?

योग भी नैमेत्तिक कारण—

जैनदर्शन मे तीन योग माने गये हैं। "कायवाड्मन कर्मयोग (तत्त्वार्थसूत्र) ये तीनो योग भी जड हैं। जिस प्रकार एक उद्योगपति की देख-रेख मे अनेकानेक नौकर-चाकर कार्य कर्म करते हैं। परन्तु लाभालाभ का उत्तरदायित्व सारा उस स्वामी के सिर पर ही मडता है। न कि-नौकर के सिर पर। उसी प्रकार आत्मानन्द इन तीन योग अनुचरो को अच्छे या बुरे कार्यों मे अहर्निश प्रेरित करता

रहता है। तज्जनित आय-व्यय के रूप मे शुभाशुभ कर्मदलिक अभिवृद्धि पाता है। यह कर्म अम्वार आत्मा से सम्वन्धित रहता है न कि योगाश्रित। वस, यहाँ से ही राग-द्वेप की जड पल्लवित-प्रसारित होती है। प्रिय वस्तु की प्राप्ति से राग और अप्रिय वस्तु की प्राप्ति से द्वेप का उद्‌भव होता है। और राग-द्वेप ही तो कर्म के वीज माने गये हैं—यथा—

रागो य दोसो वि य कम्मवीय, कम्म च मोहप्पभव वयति ।
कम्म च जाई मरणस्स मूल, दुक्ख च जाई मरण वयति ॥

—उत्तरा० अ० ३२।७

राग और द्वेप ये दोनो कर्म के वीज है। कर्म मोह से उत्पन्न होते हैं। कर्म ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म-मरण ही दुख है।

'सकषायत्वाज्जीव कर्मणो योग्यान् पुद्‌गलानादत्ते स वन्ध ॥"

—तत्त्वार्थसूत्र ८।२-३ सूत्र

इस प्रकार विभाव दशा के अन्तर्गत कषायी जीवात्मा कर्म के योग्य पुद्‌गलो को ग्रहण करता है। वही वन्ध कहलाता है। तेल के चिकने घडे पर जैसे धूल चिपक कर जम जाती है वैसे ही राग-द्वेप रूप चिकनाहट से कर्म भी आत्मा के साथ ओत-प्रोत हो जाते हैं।

जव कर्म पुद्‌गल जीव द्वारा ग्रहण किये जाने पर कर्म रूपी परिणाम को प्राप्त होते है। उसी समय उसमे चार अशो का निर्माण होता है। वे अश ही वध के प्रकार हैं। जैसा कि—जव वकरी-या गाय-भैंस द्वारा खाया हुआ घास दूध रूप मे परिणत होता है, तव उसमे मधुरता का स्वभाव निमित होता है। वह स्वभाव अमुक समय तक उसी रूप मे टिक सके ऐसी काल-मर्यादा उसमे निर्मित होती है। मधुरता मे तीव्रता-मदता आदि विशेपताएँ भी होती है। और इस दूध का पौद्‌गलिक परिणाम भी साथ ही वनता है। इसी प्रकार जीव द्वारा ग्रहण किये पुद्‌गलो मे भी चार अशो का निर्माण होता है। प्रकृति-स्थिति अनुभाव और प्रदेश। कर्मपुद्‌गलो मे जो ज्ञान को, दर्शन को अथवा सुख-दुख देने आदि का स्वभाव वनता है स्वभाव वनने के साथ ही उसमे अमुक समय तक च्युत न होने की मर्यादा हो काल मर्यादा है। वही स्थिति वध है। स्वभाव निर्माण के साथ ही उसमे तीव्रता-मदता आदि रूप मे फलानु-भाव कराने वाली विशेपताएँ वँधती है। ऐसी विशेपता ही अनुभाव वध है। ग्रहण किये जाने पर भिन्न-भिन्न स्वभाव मे परिणत होनेवाली कर्म पुद्‌गल राशि स्वभावानुसार अमुक-अमुक परिणाम वँट जाती है। यह प्रदेश वध है। प्रकृति और प्रदेश वध योगाश्रित और स्थिति व अनुभाव कपायाश्रित माने गये हैं।

यदि तीन योगो मे से किसी योग द्वारा कर्म नही होता हो तो फिर मुक्तात्मा कर्मो का वन्धन क्यो नही करती ? अतएव यही सिद्ध होता है कि वहाँ कर्म करने का जरिया अर्थात् योग आदि कार्य कारण भाव का अभाव है। इसलिये मुक्तात्मा अकर्मी और ससारी आत्मा सकर्मी मानी गई है।

मुक्त आत्मा नवीन कर्मो का वन्धन क्यो नही करती ? क्योंकि—उसके पास पूर्व कर्मो का अर्थात् तीनो योगो का सद्‌भाव नही है।

वहाँ प्रेरक का ही अभाव है। और प्रेरक के विना कारखाना एव सर्व पुर्जे वेकार-क्रिया शून्य पडे रहते हैं। अत क्रिया के विना कर्म नही और कर्म के विना नवीन वन्धन नही। इस प्रकार आत्मा और कर्मो का रास्ता अनादि अनन्त सिद्ध है। जहाँ तक कोई भी आत्मा सयगी अवस्था युक्त

रहेगी, वहाँ तक ससार है और ससार है तो कर्म है और कर्म है तो ससार का सद्भाव है। क्योंकि-समार और कर्मों का अन्योन्य सम्वध है।

कम और साम्यवाद—

यदि अमुक व्यक्ति अथवा अमुकवादी यह कहे कि—मैं कर्मविपाक को नही मानता हूँ। कर्म विपाक किस चिडिया का नाम है। मेरो डिक्सनरी मे है ही नही और न मैं मानता ही हूँ। मानव यो भी कहते हैं कि—साम्यवादी शासक कर्म अर्थात् पुण्य-पाप जनित विपाक स्वीकार नहीं करते हुए भी धनी-निर्धनी को समान स्टेज पर लाने मे प्रयत्नशील है और उद्यम परिश्रम को ही प्रधान मानते हैं।

यदि ऐसी उनकी मान्यता है तो नि सदेह वे वादी मिथ्यारोग से ग्रसित बने हुए अज्ञान अटवी मे भटक रहे हैं। कर्म विपाक को नही मानते हैं तो फिर उनके शासन मे एक सुखी तो एक दुखी, एक लूला तो एक लगडा क्यो ? एक महल-मोटर-कारो मे मौज कर रहा है तो दूसरा रोटी-रुपयो के लिए दर-दर का दास क्यो ? एक के भाग्य मे खान-पान-परिधान वढिया से वढिया उपलब्ध है तो दूसरे भाई के तकदीर मे वही लूखी-सूखी-वासी रोटी एव फटे-टटे वस्त्र। एक के रग-रूप-स्वर मे एव आचार-व्यवहार पर ससारी समूह मत्र मुग्ध वनकर सैंकडो हजारो रुपये न्योछावर कर देते है तो दूसरे भाई के लिए वे मानव देना तो दूर रहा उसके वचन भी कानो से सुनना पसद नही करते हैं, वे अपनी फूटी आँखो से भी उसको देखना पसद नही करते है। इस प्रकार एक का नाम सुख्याति मे तो दूसरे का नाम कुख्याति मे।

क्या उपरोक्त उतार-चढाव एव ऊँच-नीच का वैपम्य साम्यवादी, पूँजीवादी एव तटस्थवादी जनतत्रो मे नही है ? स्वीकार करना ही पडेगा। क्योकि—इस प्रकार के व्यवधान को साम्यवादी तो क्या परतु इन्द्र भी मिटाने मे असमर्थ माना गया है। भले कम्युनिज्म चद-चाँदी-सोने के टुकडो मे जनता को एक समान कर दे। किन्तु शारीरिक-प्राकृतिक अन्तर को साम्यवादी कैसे मिटायेगे ? इस अन्तर को भ० महावीर ने शुभाशुभ कर्मविपाक सज्ञा से ससारी जीवो को सम्वोधित करते हुए कहा है—

सुच्चिणा कम्मा सुच्चिणफला भवति।
दुच्चिवणा कम्मा दुच्चिणफला भवति ॥

कर्म कर्ता के अनुगामी—

विश्व वाटिका मे जितने भी वाद, मत, पथ एव ग्र थ है वे सभी कर्म-विपाक की सत्ता से पूरित है। कर्म फिलोसफी को स्वीकार करना ही पडता है। हाँ, कोई किस रूप मे और कोई किस रूप मे परन्तु कर्मसत्ता स्वीकार किये विना छुटकारा है कहाँ ? आगम मे कहा—

"कत्तारमेव अणुजाई कम्म"

—उत्तरा० सू० अ० १३ गा० २३

जैसे छाया देहधारी के पीछे भागी आती है उसी तरह कर्म दलिक भी कर्त्ता के पीछे भागे आते हैं। भले ही वह आत्मा स्वर्ग-नरक अथवा और कही पर भी रहे। परन्तु परिपक्व उदयकाल आने पर कर्म उन्हें खोज निकालते हैं। क्योकि—

स्वय कृत कर्म यदात्मना पुरा, फल तदीय लभते शुभाशुभम् ।

अर्थात्—कृत कर्म तो प्रत्येक को भोगने पडते है। भले करनेवाला दूसरो के लिए करे या अपने लिए परन्तु तज्जनित कर्म-कर्जा तो उस कर्ता को ही चुकाना पडता है।

किसी समय कई चोर चोरी करने जा रहे थे। उनमे एक सुथार भी शामिल हो गया था। चोर सभी एक धनाढ्य श्रीमत के यहाँ पहुँचे। वहाँ उन्होने सेंध लगाते-लगाते दीवार मे काठ का एक पटिया दिखाई दिया। तव चोर बोले—बन्धु सुथार! अब तुम्हारी वारी है। पटिया काटना तुम्हारा काम है। सुथार पटिया काटने लगा। अपनी कारीगरी दिखाने के लिए सैंध के छेदो मे चारो ओर तीखे-तीखे कगुरे उसने बनाये और अतिलोभ वृत्ति के कारण वह खुद ही चोरी करने के लिए अन्दर घुसा। ज्यो ही उसने अन्दर पैर रखा, त्यो ही मकान मालिक ने उसके पैर पकड लिये।

सुथार चिल्लाया दौडो! दौडो! मुझे छुडाओ! मकान मालिक ने मेरे पैर पकड लिये है। यह सुनते ही चोर झपटे और सिर पकड कर खीचने लगे। सुथार विचारा वडे ही झमेले मे पड गया। भीतर और वाहर दोनो तरफ से जोरो की खींचातान होने लगी। बस, फिर क्या था? जैसे बीज उसने बोये वैसी फसल भी उसे ही काटनी पडी। उसके निज हाथो से बनाई हुई सैंध के तीखे कगूरो ने ही उसके प्राणो का अत कर दिया। इसीलिए कहा है—

"कत्तारमेव अणुजाइ कम्म"।

विविध दर्शनों मे कर्मो की सत्ता :—

कर्मणा जायते जन्तु कर्मणैव विपद्यते।
सुख दुख भय क्षेम कर्मणैव विपद्यते ॥

—श्रीमद्भागवत स्कध १० अ० २४

कर्म से ही जीव, पैदा होता है और कर्म से ही मरता है। सुख-दुख-भय-क्षेम सभी कर्म-जनित विपाक है। गीता मे भी कहा है—

न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु ।
न कर्मफलसयोग स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ —गीता अ० ५ । १४

प्रभु न किसी के कर्तापने को उत्पन्न करता है, न किसी के कर्म को बनाता है और न किसी के कर्म का फल देता है।

बौद्ध दर्शन यद्यपि क्षणिकवादी है। क्षणिकवाद को मानकर चले तो नि सदेह कर्म विपाक की व्यवस्था बन नही सकती है। जैसे जिस क्षण मे जिस कर्ता ने जो शुभाशुभ कर्म किये हैं तज्जनित कर्म-विपाक भोक्ता के विषय मे भारी गडबडी पैदा होगी। चूँकि-करने वाला अब वह नही रहा। अब भोक्ता कौन? किसी अन्य को मानेंगे तो निरी मूर्खता जाहिर होगी। और यह भी माना कि - कर्म विपाक दिये विना जाते भी नहीं है। वस्तुत आत्मा को एकान्त क्षणिक मानना सिद्धान्त विरुद्ध है। हाँ, पर्याय की दृष्टि से क्षणिक माना जाय किन्तु द्रव्य की दृष्टि से नही, फिर भी तथागत बुद्ध ने कर्म-सत्ता को स्वीकार किया है। जैसे कि —

इत एकनवते कल्पे शक्त्या मे पुरुषोहत ।
तत् कर्मणो विपाकेन पादे विद्धोऽस्मि भिक्षव ॥

—बौद्ध दर्शन

हे शिष्यो ! इक्यानवे वर्ष पूर्व अर्थात् पूर्व भव मे मेरी आत्मा ने शक्तिपूर्वक एक पुरुष की घात की थी। तज्जनित कर्म-विपाक के कारण आज मेरे पैर मे काटा लगा है। भले ही यह हास्यास्पद वात हो किन्तु कर्म-विपाक मान लिया गया है।

पुराणो मे एक प्रसग चला है। एकदा 'धृतराष्ट्र काफी चितित थे। मेरे सौ पुत्र युद्ध मे मारे गये और मैं चक्षु विहीन। मैंने ऐसे कौन से निकृष्ट कर्म किये है जिससे आज मुझे अश्रु वहाने पड रहे हैं। इतने मे व्यास ऋषि ने कहा—

राजन्। इसमे किसी को दोप नही है। खुद के किये हुए शुभाशुभ कर्म है । कैसे ? सो सुनो !

पहले तुम्हारी आत्मा राजपद पर आसीन थी। तुम्हे सत्ता के मद मे परभव का कुछ भी डर नही था। तुम गये शिकार को। वहाँ हताश होकर एक घनी झाडी मे आग लगा दी। उस झाडी मे एक सर्पनी ने सौ वच्चे दे रखे थे। विचारे सारे भस्म हो गये और सर्पनी मरी तो नही किन्तु अधी अवश्य हो गई।

राजन् ! उसी करनी का तुम्हे यह फल मिला है। इसमे शोक क्या करना ? हँसते हुए कर्ज चुकाना चाहिए सतोष धारण करो।

अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्त क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥

राजन् ! अपने-अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल अपने को ही भोगना होता है। विना भोगे कर्मों का फल सैकडो-करोडो कल्प मे भी क्षय नही होता है।

हाँ तो जैन दर्शन मे कर्मों के अष्ट भेद माने हैं—

"आद्यो ज्ञानदर्शनावरण वेदनीय मोहनीयायुष्क नाम गोत्रान्तराया"

—तत्वार्थसूत्र अ० ८ सू० ५

अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्क, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म। इन कर्मों मे कितनेक शुभाशुभ और कितनेक एकान्त अशुभ माने गये हैं। शुभ कर्मों के प्रभाव से प्राणी ससारी सुखो को प्राप्त करता है और यदा, कदा, देव, गुरु, धर्म की प्राप्ति मे शुभ कर्म सहायक भी वनता है। अशुभ कर्मों की काली छाया से जीवात्मा नाना आधि-व्याधियो को भोगता है। मन मे आकुल-व्याकुलता एव मस्तिष्क मे अशाति अस्थिरता का वातावरण वना रहता है। परन्तु मोक्ष के कारण न तो शुभ और न अशुभ हो है। क्योकि शुभ कर्म अर्थात् स्वर्ण वेडी और अशुभ कर्म अर्थात् लोह-वेडी सादृश्य माने हैं। अतएव "**कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्ष**" सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों का क्षय होने पर ही अयोगी अवस्था की उपलब्धि मानी है। और अयोगी अवस्था आते ही ऊर्ध्वोन्मुखी यह आत्मा मोक्ष मे विराजित होती है। जहाँ जाने के वाद आत्मा को फिर ससार की गली-कुचो मे भटकना नही पडता है। क्योकि भटकाने वाले हैं—कर्म ! पूर्णत उनकी यहाँ समाप्ति हो जाती है। आगम मे भी कहा है—

जहा दड्ढाण वीयाण ण जायति पुणकुरा।
कम्म वीएसु दड्ढेसु ण जायति भवकुरा ॥

जैसे बीजो के जल जाने मे पुन अकुर खडे नही होते हैं, उसी तरह कर्म बीज के दग्ध हो जाने मे भव (आवागमन) रूपी अकुर भी उत्पन्न नही होते हैं परन्तु सौगत दर्शन ने पुन आगमन माना है—

ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य कर्त्तार परम पदम् ।
गत्वाऽऽगच्छति भूयोऽपि भवतीर्थनिकारत ॥

—बौद्ध दर्शन

धर्म तीर्थ करने वाले ज्ञानी पुरुष परम (मोक्ष) पद को प्राप्त हो जाने पर जब तीर्थ (धर्म) की अवहेलना होती है, तब पुन वही आत्मा ससार अचल मे अवतरित होती है। इसी तरह गीता ग्रन्थ के निर्माताओ ने भी पुनरागमन माना है।

ऐसी मान्यताएँ न्याय विरुद्ध जान पडती है। क्योकि ससार परिभ्रमण के कारण भूत कर्मों का वहाँ अभाव है। इसलिए मुक्तात्माओ के लिए पुनरागमन का प्रश्न ही खडा नही होता है। भले ससार मे अत्याचार, अनाचार एव भ्रष्टाचार का बोलबाला रहे अथवा सुकृत का। परन्तु सिद्ध-बुद्ध आत्माओ का उनसे किंचित् मात्र भी सम्बन्ध सरोकार नही रहता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि उपरोक्त वचन छद्म पुरुषो के जान पडते हैं। तभी तो कलह-क्लेश-कोष स्वरूप ससार मे आने के लिये पुन भावना का दिग्दर्शन कराया है। परन्तु जैन-दर्शन सिद्धात्माओ के लिये पुनरागमन कदापि स्वीकार नही करता है। हाँ, सयोगवशात् यदा-कदा अधर्म का अत्यधिक प्रचार-प्रसार को रोकने के लिए धर्म-भास्कर को पुनः प्रदीप्त करने के लिये कोई महान् विभूति स्वर्गात् अवतरित अवश्य होती है, किन्तु मोक्ष प्रविष्ट आत्मा नही।

हाँ तो, प्रत्येक आत्मा को कर्म करना ही पडता है। चूकि कर्म-भूमि पर मानव का वास है, दूसरी बात यह है कि कर्म नही करेगा तो मानव बिलकुल प्रमादी-आलसी एव एय्यासी बन जायगा और आलसी-एय्यासी बनना मानो पतन-अवनति को आमत्रण देना है। आज की आवाज भी है—"आराम हराम है"। और भगवान महावीर ने तो कई शताब्दियाँ पहले ही यह उद्घोषणा की थी—'**समय गोयम मा पमायए**" हे इन्द्रिय विजेता! एक समय का भी प्रमाद मतकर ।

परन्तु परिश्रम-प्रयत्न ऐसा हो, जिसके प्रभाव से आत्मा कर्म बन्धन से मुक्त, जन्म-मरण की चिर बीमारी का अन्त, राग-द्वेष की शृखला छिन्न-भिन्न होवे और गर्भावास मे आना रुके। ऐसे कर्म जप और तप से उद्भूत होते हैं—"**तपसा निर्जरा च**" शुद्ध श्रद्धा एव भावपूर्वक तप की आराधना करने से जैसे शुष्क एव नीरसपत्र सर-सर करते हुए वृक्षो से नीचे गिर पडते हैं, उसी प्रकार तप रूपी पतझड की अजस्र थपेडो से आत्मरूपी कल्पवृक्ष के लगे हुए सडे गले एव जीर्ण-शीर्ण कर्म पत्र नष्ट होकर मिथ्या धरातल पर आ गिरते हैं।

अतएव प्रत्येक आत्माओ को चाहिये कि वे शुभ (पुण्य) अशुभ (पाप) एव शुद्ध (निर्जरा) इन तीनो के समीचीन स्वरूपो को समझने के लिए जैनदर्शनो का अध्ययन-अध्यापन करे। तत्पश्चात् सुखी जीवन के लिए अशुभ-कर्म, जो कि हेय है, उसे छोडे और शुभ कर्म को ज्ञेय समझकर शुद्धकर्म की ओर कदम बढावे ताकि आत्मा प्रशस्त पथ की ओर अग्रसर होती हुई मोक्ष के सन्निकट पहुँचे।

*

शुभ और अशुभ प्रवृत्ति—

शुभाशुभ मानसिक प्रवृत्ति विशेष को दार्शनिक जगत ने पुण्य और पाप तत्त्व कहकर विस्तृत मीमांसा प्रस्तुत की है। दोनो तत्त्व देहधारी की अच्छी या बुरी मनोवृत्ति पर फलने-फलते है। स्वभाव की दृष्टि से तत्त्वो मे पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। शुभ प्रवृत्ति करते समय मनुष्य को अवश्य कष्टानुभव होता है। किन्तु ऐहिक सुख-सुविधा मे कर्त्ता का जीवनोद्यान धीरे-धीरे नि संदेह भर जाता है। यदा-कदा धर्म का द्वार भी हाथ लग जाता है।

जबकि अविवेक एव अज्ञानतापूर्वक आचरित प्रवृत्तियाँ कर्त्ता को जर्जरित कर कमजोर देती है। प्रारंभिक तौर पर चद क्षणो के लिये भले वह अपनी थोथी सफलता का ढोल पीटा करें परन्तु पापमय तो परते खुलने पर सचमुच ही उसको आँसू बहाने ही पडते हैं। शास्त्रीय उद्घोष यही सकेत कर रहा है। "**पडति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो।**"

परिश्रम भाग्य की कुजी—

सम्यक् परिश्रम मानव के लिए नही, अपितु प्रत्येक जीव-जन्तु के लिए सफलता की सही दिशा मानी गई है। क्योकि-परिश्रम के बल-बूते पर ही महा मनस्वियो ने अपने अन्तर्गत-हृदय मे स्थित चिर अभीप्ट साध्य को पाया है। जीवन अभ्युदय के शिखर पर पहुँचने मे सम्यक् परिश्रम की पूर्ण सहायता रही है। इसलिए कहा है—"**उद्यमेन हि सिध्यन्ति।**"

सफल परिश्रमिक के तौर पर हस्तगत हुई महा मूल्यवान उस उपलब्धि की हर तरह से सुरक्षा करना, करवाना उस कर्त्ता का परमोपरि कर्त्तव्य माना है। यदि दुर्लभ-दुष्प्राप्य उन निधि-सिद्धि को वह प्रमाद वश व्यर्थ ही खो दे अथवा अज्ञान असावधानी के कारण चन्द टुकडो के बदले बेच दें यह बहुत बडी मूर्खता आकी गई है।

जैसा सग वैसा रग -

जीवन का सुधार व बिगाड मानव के हाथो मे रहा है। मानव चाहे तो कुछ ही क्षणो मे जीवन का अध पतन एव सुन्दरतम निर्माण भी कर सकता है। सुनिर्माण के लिये सज्जन सगति, सुसाहित्य पठन एव सुशिक्षा आदि आवश्यक कारण माने हैं। फलस्वरूप जीवन सुगुण सौरभ से ओत-प्रोत हो जाता है और अन्तत देहधारी के लिए वह प्रेरणा प्रदीप के समान बन जाता है।

कुसगति कुसाहित्य शिक्षा का अभ्यास एव अनुशासन की कमी के कारण जीवन का बिगाड अवश्य माना गया है। जिसमे भी दुर्जन-विचार धारा नर-नारी पर शीघ्र प्रभाव जमा लेती है। यहाँ तक कि—जीवन को नष्ट व भिखारी एव व्यसनी बनाकर ही दम लेती है। इसलिए कहा है—'**दुर्जनो परिहर्तव्यो, विद्ययालकृतोऽपि सन्।**"

विभाव और स्वभाव

मोहानन्दी जब आत्मसाधना को हेय मानकर भोग-परिभोग मे मकडी की भाँति उलझ जाता है। तब द्रव्य चेतना-जागरण उसका प्रक्रिया करता हुआ अवश्य दिखाई देता है। तथापि महा-मनस्वियो की निर्मल दृष्टि मे वह जागरण जीवन का मगल प्रभात नही माना है। अपितु विभाव (सुप्त) अवस्था मानी गई है।

उन्हीं भावनो को सत-जीवन विषवत् मानना है। इसलिए कहा है—"तस्या जागर्ति सयमी" अर्थात् विलासिता की चकाचौंध से सदैव सत-जीवन सावधान रहता है। व्यावहारिक दृष्टि मे भले वह शका-शील स्थान पर बैठा है अथवा वह सो रहा या खा पी रहा है। तथापि उसकी अन्तरात्मा आत्मभाव मे जागृत व हिताहित के विवेक से ओत-प्रोत बन चुकी है। ऐसी प्रबुद्ध आत्माओ का आस्रव (पाप) स्थान पर भी रुकना हितकारी माना है।

अन्तर्जीवन का थर्मामीटर-- भावना

भावना मानव व पशु-पक्षी के अन्तर्जीवन का एक प्रतिबिम्ब है या भावना एक पकार का जीवन सम्बन्धित नापदण्ड (थर्मामीटर) है जो समय-समय पर मानव-मन कन्दरा मे उभरी हुई वृद्धि हानि का स्पष्टत हमे ज्ञान कराना है। जैसा कि—"भावना भवनाशिनी" और "भावना भववर्द्धिनी।" अर्थात्—अन्तर्मुहूर्त्त के अन्तर्गत यह जीवात्मा कर्म विजेता बन जाता है और उतने काल मे नष्ट होकर सातवी नरक का मेहमान भी। इस दुहरी स्थिति मे शुभाशुभ भावना ही कार्य करती है।

भावना अर्थात् एक प्रकार के उर्वरा मानस-स्थली की उद्गार, विचार व लेश्या। सज्ञी जीवो मे भावना का सम्बन्ध निकटतम रहा है। वे उद्गार शुभाशुभ और शुद्ध होते हैं। जिसमे केवल आत्म चितन हो, वह शुद्ध ठेट-पेट का शुभ और केवल इन्द्रिय सम्बन्धित मलिन चिनन हो वह एकान्त अशुभ चितन माना गया है। अतएव विचारे जो मन पर्याप्ति विहीन है, जैसे—कृमि-पिपीलिका व भ्रमर आदि सर्वोत्तम भावना से हीन रहे हैं। किन्तु मानव व सज्ञी पचेन्द्रिय प्राणी भावना के बल-बूते पर अपने भाग्य उन्मेष को तेजस्वी-यशस्वी बना सकते हैं।

क्षुद्र और गम्भीर जीवन

जीवन का एक प्रकार—जो क्षुद्र नदी की तरह जीता है। स्वल्प वैभव पाकर उन्मत्त व फूल जाता है। यदा-कदा मर्यादा को तोड भी डालता है व बुरी-भली कैसी भी बात को पचा नही पाता, किंतु तिल का ताड बनाकर वातावरण को विषाक्त अवश्य बना देता है। ऐसा निकृष्ट जीवन समाज वाटिका मे आदरणीय नही, अपितु निंदनीय माना है। चूँकि बदहजमी के कारण बरसाती मेंढक-जीवन की तरह टर-टर किया करता है।

जीवन का दूसरा प्रकार—जो गभीर धीर सागरवत् जीता है। असीम वैभव के प्राप्त होने पर भी गर्वित न होकर विनम्र बना रहता है। इष्ट-अनिष्ट प्रसग सामने आने पर भी झलकता नही है। अपितु अन्य की कमजोरियो को सुधारने मे, उनको ऊँचा उठाने मे उसके वास्तविक गुणो को विकसित करने-कराने मे प्रयत्नशील रहता है।

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि

जौंक नामक जन्तु देहधारी के विकृत रक्त को पीया करता है। क्योकि उस जन्तु का स्वभाव

सदैव गन्दी एव सडी-गली वस्तु का ग्राहक रहा है। उसी प्रकार एक समूह मानव का वह है—जो अन्याय व दुर्गुण रूपी गदगी को देखा करता व मिथ्यालोचना करके अपना सतुलन गुमा बैठना है। उनकी दृष्टि मे सभी दुर्गुणी पाखण्ड व चार सौ बीस जान पडते है। ऐसे हीन प्रकृति के नर-नारी तिरस्कार के पात्र वनते है।

गाय के बछडे का स्वभाव सदैव स्तनो मे से दुग्ध-पान करने का है। इसी प्रकार मानव का एक समूह वह है—जो निश-दिन अन्यो के गुणो की ओर देखा करते व तद्रूप खुद बनने का रास्ता तैयार कर लेते हैं। ऐसे गुण-ग्राही मानव सर्वत्र आदर के पात्र वनते है।

अपूर्ण और पूर्ण

कूप-मण्डूक की तरह यदि कोई मुमुक्ष अपने बिंदु सदृश्य ज्ञान निधि को सिन्धु समान असीम मान कर गर्वोन्मत्त हो जाना व अन्य दार्शनिको को अपने आगे कुछ नही समझना। नि सन्देह स्वय को गुमराह करना व खुद को नवीन विकास प्रकाश से व चित रखना है। क्योकि अल्पज्ञता एव अह भावावेश मे वह तुच्छ साधना को सर्वोपरि साधना मान बैठना है, ऐसा मानना अपूर्णता का प्रतीक है।

इसलिए कहा है—"सम्पूर्णकुम्भो न करोति गर्वम्" अर्थात् साधक को जब चरम-परम साध्य की उपलब्धि हो जाती है। तब वह समस्त छद्मो से परे हो जाता है, तब वह विश्व वन्दनीय बन जाता है। उन्ही के बताये पथ के पथिक भी वास्तविक आनन्द को पाते है।

सम्यक् तराजू के दो पलड़े

भौतिक सुख, समृद्धि की दृष्टि से देव यद्यपि मानव मे असीम गुणाधिक माने गये है? जिस प्रकार सिंधु के सामने बिंदु का अस्तित्व नही के बराबर ही माना गया है। उसी प्रकार दैविक वैभव सिंधु सदृश्य और मानवीय-सम्पदा कुशाग्र भाग पर स्थित उस नन्ही बूंद के समान आकी गई है। जैसा कि—

"जहा कुसग्गे उदग समुद्देण सम मिणे। एव माणुस्सगा कामा देव कामाण अतिए'॥

इतने पर भी महामनीषियो ने दैनिक-जीवन के गुण कीर्तन नही किये। किन्तु मृण्मय देहवासी चैतन्य को सभी दार्शनिको ने सर्वोत्तम मानकर गुण गाये हैं।'

कारण स्पष्ट है कि देव के पास दृष्टि है, सृष्टि नही, कर्म है धर्म नही, मत्र है तत्र नही, विलास है तो जीवन मे विकास-प्रकाश का अभाव है, और आहार विहार है तो वहां सदाचार नही। इन्ही कारणो से देव-जीवन केवल भौतिक सुखो का भोक्ता मात्र है। और मानव भौतिक सुखो का भोक्ता होने के बावजूद भी उसके पास मानव से महामानव बनने की सामग्री सर्व मौजूद है। इस कारण समय पर मानव देव पर भी विजय पा लेता है।

दीधि पण लागी नहीं

सदैव बडे-बुजुर्ग, अनुभवियो की बाते एव सलाह-शिक्षा, सामने वाले नर-नारी के भावी जीवन के लिये उसी तरह वरदान स्वरूप आदरणीय, सम्माननीय, सुखद मानी है, जिस तरह शुष्क रेगिस्तान मे बरसा हुआ पानी का एक कण-कण। चाहिए—उनके प्रति श्रद्धा-विश्वास एव उपयोग का सही तरीका। श्रद्धा के अभाव मे एव गलत तरीके के कारण दी गई अमूल्य-अमूल्य शिक्षा भी निरर्थक साबित हो जाया करती है। इसलिए कहा है—

मात-पिता, गुरु की शुभ वाणी, विना विचार करिये शुभजाणी ॥

किन्तु ऐसा होता कम ही है। इस कारण मानव का जीवन राह वीच मे भटक जाता है। अन्ततोगत्वा जीवन का वहुत वडा अहितकर सदा-सदा के लिए अस्त से हो जाते हैं।

साधक और सैनिक

साधक एव सुभट, दोनो सघर्षजीवी रहे है। कार्य क्षेत्र दोना का भले विभिन्नता को लिए हुए क्यो न हो, तथापि तुलनात्मक दृष्टिकोण से दोनो मे काफी समानता पाई जाती है। सुभट अपने दृष्टिकोण मे प्रतिद्वन्द्वी दल को परास्त करने मे शस्त्रास्त्रो से लेश व आठो पहर सावधान चौकन्ना रहता है। वस्तुत रणक्षेत्र मे शत्रुदल के छक्के छुडाने मे सफल भी हो जाता है क्योकि शत्रु-उपकरणो से लैस जो रहा।

सत भी राग-द्वेष, मोह-माया, रूप शत्रुओ पर विजय पाने के लिये सदैव सघर्परत रहता हुआ सावधान रहता है। यद्यपि सुभट की भाँति सत के पास तलवार पिस्तौल-वम आदि शस्त्र नही होते हैं। तथापि मुनि को अजेय शस्त्रधारी माना है। यथा —

जप शस्त्र तप शस्त्र शस्त्र इन्द्रियनिग्रह।
सर्वभूत दया शस्त्र पर शस्त्र क्षमा भवेत् ॥

अर्थात्—जिनके वलवूते पर सत दुर्जय मोह योद्धा को परास्त कर चिरस्थायी विजय पाता है वे शास्त्र ये ही है।

जैसा वीज वैसा फल

निष्ठा एव विश्वास पूर्वक कृपक एक वीज को प्रकृति की कमनीय-रमणीय धवल-धरा पर विखेर देता है। ठीक समय पर प्रकृति स्वीकृत उस दाने को अपने उदर मे जमा कर रखती नही है, अपितु उदारता पूर्वक कई गुणा ज्यादा वनाकर किसान की खाली गोद को केवल धान्य से ही नही, मोद से भी भर देती है। अपरिवर्तित प्रकृति का यह नियम सर्व जनता को विदित है।

देहधारी मानव को भी किसान की उपमा से उपमित किया जा सकता है। मानव भी मृत्युलोक की पवित्र भूमि पर विस्तृत पैमाने पर सुकृत की खेती उपार्जन करता है। फलस्वरूप भविष्य मे विविध सुखानुभूतियो की उपलब्धि होती है। इसलिए कहा है। "करणी का फल जानना, कवहु न निष्फल जाय"। अर्थात्—कृत-सुकर्म कदापि निष्फल नही जाते हैं। क्योकि – सुकृत का वीज न कभी सुलता, गलता एव न कभी विगडता है। भले कर्ता किसी भी वेश-भूपा मे क्यो न हो, वह उसे ढूँढ लेता है और कर्ता को मालोमाल करके ही विश्राम लेता है। इसलिए कहा है—सुचिण्णा कम्मा, सुचिण्णा फला हवति" अर्थात् अच्छे कर्म के अच्छे फल होते हैं।

शब्दो का चमत्कार

तत्काल शब्दो मे चमत्कार परिलक्षित होता है। मधुर शब्दावली के प्रभाव मे दुश्मन एव इतर जीव जन्तु वश मे होते देर नही करते हैं। अतएव कहा है—"***अमत्रमक्षरो नास्ति***" अर्थात् वर्णमाला का एक ही अक्षर मत्र रहित नहीं है। अक्षरो मे अपरिमित शक्ति का भण्डार निहित है, और उटपटाग तरीको से अक्षरो का प्रयोग करने पर वातो की वात मे महाभारत भी छिड जाता एव विपाक्त वातावरण वन जाता है।

देखिए—द्रापदी की कटु वचनावली ने कैसा चमत्कार दिखाया। भोज की ज्ञान-गर्भित गिरा ने लोभान्ध मु ज के मानम-स्थली को किस तरह वदली। विहारी कवि की चमत्कारी कविता द्वारा विकारान्ध राजा मानसिंह अति जल्दी सभल जाते हैं। उसी प्रकार नाथ शब्द ने ऐश-आरामी शालिभद्र को साधना के मार्ग पर आसीन कर ही दिया।

ससार वनाम नाट्यशाला

नाट्यशाला के मन मोहक पर्दो पर एक्टरगण पल पल मे कभी राजा रक तो कभी सेठ-चोर कभी भिखारी-व्यापारी इस प्रकार विविध वेश-भूषा मे स्वाँग वनाकर दर्शको के मन-मयूर व नयनो को रिझाने का भरसक प्रयत्न करते है। वस्तुत खेल के अन्तर्गत कभी लाभ, कभी हानि का दृश्य भी उपस्थित हो जाता है। तो भी उन खिलाडियो को न हर्ष और न शोक होता है। क्योकि उन्हे ज्ञात है कि—ये सभी स्वाँग केवल मनोरजन मात्र एव एक स्वप्न सदृश हैं।

उसी प्रकार चतुर्गति ससार भी एक विस्तृत नाट्यशाला का सागोपाग रूपक है जिसमे प्रतिपल प्रत्येक प्राणी नाना आकार के रूप मे जन्म ले रहा है। गेंद की तरह इत-उत धक्का खाया करता है। ये सारी क्रिया प्राणी से सम्बन्धित कर्म वर्गना पर आधारित है। इसका कारण एक-एक जीव के साथ अगणित नाते हो चुके है। जैसा कि—'**जणणी जयइ जाया, जाया माया पिया य पुत्तोय**" रहस्यमय समार का रहस्योद्घाटन केवल सर्वज्ञ ही कर पाते हैं। अविकसित वुद्धिजीवी की शक्ति के वाहर का विषय है।

स्वार्थ और परमार्थ

एक धारा वह है—जो अन्य के वढते हुए जन-धन रूपी वैभव को अपनी आखो से देख नही पाते है। अन्य के अस्तित्व पर वत्ती लग जाय। अर्थात् वे आपत्ति को भोगते रहे और मैं धन-जन से तरवूज की तरह फलता-फूलता रहूँ तव मुझे अपरिमित सुखानुभूति होवे। "मैंने पीया मेरे घोडे ने पीया अव कुआ भाड मे जाय।' यह स्वार्थ भरी उसके जीवन की दुर्गन्ध है।

दूसरी धारा इससे विपरीत है। मैं वैभव मे वढ रहा हूँ, तो मेरा साथी भी क्यो पीछे रहे? मैं मुस्करा रहा हूँ, तो अन्य भी खुशहाल रहे, मैंने पेटभर खाया तो मेरा पडौसी भी भूखा न रहे। स्वय जिन्दा हूँ इसी प्रकार सभी जीव जन्तु चैन पूर्वक जिंदगी वितावे। ऐसा जीवन सृष्टि का शृगार आधार और हार अहिंसा का अवतार माना है। चूँकि तारक एव रक्षक जीवन के यशोगान गाये गये हैं।

सत्ता का अजीर्ण

हे क्षुद्र नदी! तेरा जोश तीन दिन के वाद उतर जायेगा। किन्तु तूने अपनी मस्ती के मद मे विनाश लीला को जो ताण्डव उपस्थित किया है वह कई वर्षो तक मानवीय मन-मस्तिष्क से हटेगा नहा। मानव जव तेरे निकट आयेंगे, तव-तव उस कहानी को दुहरायेंगे कि यह नदी अमुक वर्ष मे आई थी। उसमे हमारे गाँव-घरो की सारी-सम्पत्ति व जन-जीवन की भारी हानि हुई थी।

क्षुद्र नदी की भाति एक एक मानव अधिकार मद मे फूल कर कुप्पा हो जाता है। पर पीछे पागल वनकर देश समाज को अध पतन के गर्त मे धकेल देता है। तथापि अक्ल के अधे को वास्तविक स्थिति का भान नही होता है। ऐसे निष्ठुर नेता को भावी युग-निर्माता न मानकर विवेकभ्रष्ट के नाम से इतिहास पुकारता है।

भोगी और योगी

पार्थिव देह, इन्द्रिय व प्राण साधक जीवन के लिये परम सहयोगी रहे है। अत इन तत्वो की सुरक्षा के लिये खान-पान, सुख-सुविधा आशिक रूप मे जरूरी है। किन्तु तत् सम्वन्धी विपय-वासना मे ध्येय को विसरा देना साधु स्वभाव नही, पशु स्वभाव माना गया है। ऐसे भोगी भक्तो की दशा वृक्ष के टूट जाने पर ऊपर बैठे हुए उस वन्दर जैसी होती है जो विचारा रसातल की खाड मे जा गिरता है। आसक्त नर-नारी भी दुर्गति की ओर ही वढते है। कहा भी है—**भोगी भमई ससारे।**'

जो कचन-कामिनी सम्मुख आने पर भी भोग्य न मानकर त्याज्य मानता है उस मुमुक्षु को सँवर-सुधा का मधुकर व उस पक्षी की तरह प्रशस्त अभिव्यक्त किया है—जो वृक्ष के नष्ट हो जाने पर भी वह पक्षी नीचे नही गिरता, अपितु निर्ममत्व होकर अनन्त आकाश की ओर उडाने भर लेता है। ऐसे मजुल जीवन को त्यागी-वैरागी कहा है। जो भोग की कटीली अटवी मे गुमराह न होकर साधना के विशद मार्ग मे अनासक्ति रूप प्राणवायु (ऑक्सीजन) का सवल लेकर आगे वढता है कहा भी है—**अभोगी नोव लिप्पई।**

कृपणवृत्ति और दानवृत्ति

'कृपणता' मानव का स्वभाव नही, अपितु ममत्वपूर्ण एक वृत्ति है। इसके वशवर्ती वना हुआ नर-नारी न वढिया खाता और न खिलाने मे खुश होता है। वह उस खड्डे के मानिद है जहा दवादव सग्रहित जलराशि धीरे-धीरे सड-गल कर मलीन वन जाती है। वस्तुत सग्रहकर्ता व सग्रहित वस्तु दोनो अपने आदर्श अस्तित्व को गुमा बैठते हैं और दुनियाँ की दृष्टि मे दोनो सदा-सदा के लिये मर मिटते है।

'दान क्रिया' भी एक वृत्ति है। इस वृत्ति का धारक खुद भले न खाता हो, किन्तु अन्य को खिलाने मे सदैव तत्पर रहता है। '**शत हस्त समाहर, सहस्र हस्तसकिर।**' अर्थात् वह सैकडो हाथो से वटोरना, सग्रह करना जानता है तो हजारो हाथो से समाज, सघ, राष्ट्र को देना भी जानता है, अत दानी को वादलो की उपमा से उपमित किया गया है।

अरिहंत शरण

रसातल मे डूवते हुए पामर प्राणियो के लिये धन-धरती-धान्य व तात-मात आदि स्वजन, परिजन कोई भी सक्षम शरण दाता नही है। चूँकि जड वस्तु नश्वर व क्षण भगुर धर्मवाली है। जो पल-पल मे परिवर्तनशील रही है वह देहधारी के शरण की सदैव अपेक्षा रखती है। अत उनमे वह देहधारी कहाँ जो देहधारी को निर्भय वना सके ? अव रहा सवाल तात-मात आदि का—ये कुछ काल के लिये शरण दाता है। किन्तु आक्रामक काल के समक्ष शक्तिहीन वनकर हाथ मल-मल के रह जाते हैं।

आधि-व्याधि-उपाधि त्रय तापो से मुक्त कराने मे व निर्भयता-अमरता के प्रदाता अरिहत प्रभु की शरण है। जो भवोदधि मे गोते खानेवालो के लिए महान् द्वीप के समान आश्रय-भूत है। क्रूर काल को परास्त करने मे राम-वाण औपधि व मृत्युञ्जय जडी-बूटी है। यथा—'**सर्वापदामतकर निरन्त सर्वोदय तीर्थमिदम् तवैव।**' अर्थात्—प्रभु आपका यह तीर्थ सर्वोदय तीर्थ है जिसमे अनन्त आत्माओ के सर्वोदय का हित चिंतन रूप पवित्र पीयूष पूरित है।

मित्र के प्रकार

साफ-स्वच्छ जलराशि से पूरित सरोवर के पास हस पक्तियाँ मडराया करती है। किंतु जलकण

सूख जाने के बाद स्वार्थी हंस टोली प्रगाढ अनुराग को ठोकर मारकर अन्यत्र विहार कर जाती है। उसी प्रकार एक नाता (सम्बन्ध) हंस जैसा होता है। जहाँ तक वैभव का अथाह सागर लहलहाता है, वहाँ तक वे नाती-गोती हंस पक्षी की तरह आस-पास मँडराते हैं, गुलछर्रे-रसगुल्ले उडाते हैं और वैभव-वाटिका उजडी कि वे सम्बन्धी उससे मुँह मोड लेते हैं। ऐसे स्वार्थी सम्बन्धियों के लिये निम्न शब्द युक्तियुक्त हैं—"काम पडियाँ जो लेवे टाला, उसी सगा का मुडा काला।"

कमल सदृश जो सगे होते है वे वैभव के सदभाव में व अभाव मे साथ छोडकर अन्यत्र भागते नही हैं। बल्कि उभरी हुई उस परिस्थिति का डटकर व कन्धे से कन्धा मिलाकर सामना करते हैं। सफलता न मिलने पर मित्र के साथ-साथ निज प्राणो की भी आहुति दे डालते हैं। ऐसे सगो (मित्रो) के लिए कहा है—"काम पडियाँ जो आवे आडा, उसी सगा का करिये लाडा।"

मुनि और मणि

सभी पथ एक स्वर से कहते हैं कि—पारसमणि के सग-स्पर्श से लोहा स्वर्ण की पर्याय मे परिणित हो जाता है। हो सकता है यह प्रचलित बात बिल्कुल सही भी हो, किन्तु यह कोई खास विशेषता नही मानी जाती है। क्योकि—लोहा पहले भी जड और स्वर्ण बनने के बाद भी जड ही रहा। लेकिन पारसमणि उसे पारस नहीं बना सकी।

भूले-भटके को सही मार्ग दर्शक, पापी जीवन को पावन, पूजनीक व आत्मा से परमात्मा पद तक पहुँचाने का सर्व श्रेय सत (मुनि) जीवन को है। जिनकी निर्मल-विशुद्ध उपदेश धारा ने समय-समय पर उन राहगीरो को चरम परम साध्य तक पहुँचाया है। कहा भी है—

पारसमणि अरु सत मे मोटो आतरो जान।
वह लोह को कचन करे वह करे आप समान॥

श्रद्धा का सम्बल

सयमी जीवन का पतन दर्शन मोहनीय कर्मोदय से माना है। जिस प्रकार धवल-विमल दूध के अस्तित्व को मटियामेट करने मे खार-नमक का एक नन्हा-सा कण पर्याप्त माना गया है। तद्वत् सयमी जीवन में अश्रद्धारूपी लवण का जब मिश्रण हुआ कि—वर्षों की साधी गई साधना रूपी सुधा कुछ ही क्षणो मे नष्ट हो जाती है और वह साधक न मालूम किस गति के गर्त मे जा गिरता है। कहा है—**अश्रद्धा हलाहलविषम्।**" अतएव आत्मयोगी साधको को साधना के प्रति सर्वथा नि शकित-निकाक्षित रहना चाहिए।

श्रद्धा आध्यात्मिक जीवन की प्रशस्त भूमिका मानी गई है। जब साधक रूपी कृषक स्वस्थ-साधना का बीज उस मुलायम भूमि मे उचित स्थान पर वपन करता है तब धर्म रूपी कल्पवृक्ष जो सम्यक्ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपी शाखा-विशाखाओ से क्षमा, मार्दव, मुक्ति, तप, सयम, सत्य शौच अकिंचनत्व ब्रह्मचर्य आदि विविध फूल मकरद से और मोक्षरूपी मधुफल मे उस साधक का मनोरम जीवनोद्यान सदा-सदा के लिए धन्य हो उठता है। इसलिए कहा है—"**श्रद्धामृत सदा पेय भवक्लेश विनाशाय।**"

जिसने दिया, उसने लिया

अभी अर्थ युग का बोलबाला है, ऐसे तो प्रत्येक युग मे अर्थ की महती आवश्यकता रही है। अन्तर इतना ही रहा कि—उस युग के नर-नारी अर्थ (धन) को केवल साधन मात्र मानकर चलते थे

और आज के नर-नारी अर्थ को साध्य मानकर उसके प्रति प्रगाढ आसक्ति भाव रखे हुए प्रतीत होते हैं। वस्तुत उसके लिए मानव कई तरह के हथकडे व देवी-देवताओ की मनौतियाँ भी करता है। तथापि अर्थ प्राप्ति मे सफल नही होते क्योकि अपनाया हुआ तरीका विल्कुल गलत एव भटकाने वाला है।

माना कि—प्रत्येक वस्तु पाने के सही तौर-तरीके हुआ करते हैं। सही राह के विना कोई भी कदापि अपने इष्ट को प्राप्त नही कर सकता है। धन-वृद्धि का भी एक तरीका है – सत्याचरण, धर्माराधना एव पुण्य-सुकृत आदि लक्ष्मी पाने का राजमार्ग है। सचमुच ही उपर्युक्त तरीको का उपयोग करने पर कालान्तर मे लक्ष्मी उस कर्ता की दासी वनकर रहती है। न कि पूजा-प्रतिष्टा व लक्ष्मी की माला मनौती से । जैसा कि – लक्ष्मी उवाच – "**पुण्येनैव सवाम्यहस्थिरतरा युक्त हि तस्य र्जनम्**' अर्थात् मानव ! मैं (लक्ष्मी) पुण्य से ही स्थिर रहती हूँ। इसलिए मुझे प्रसन्न रखना चाहते हो तो सुकृत का उपार्जन करो।

बुद्धि का प्रखर तेज

बुद्धिविहीन पार्थिव देह का मोटापन, गौरापन और रूप लावण्य की रौनक मानव के अभीष्ट सिद्धि मे सहायक नही वाधक माने हैं। इसलिए कि – स्वेच्छा से इधर-उधर वह जा आ नही सकता है, देह की वढती हुई स्थूलता दिनो-दिन उस मानव को खतरे के निकट पहुँचाती और दासी-दास एव कुटुम्वी जनो के पाश मे परावीन होकर रहना पडता है। जैसा कि "**हस्ती स्थूल तनु स चाकुशवश. किं हस्तिमात्रोऽकुश. ।**"

इसलिए कहा है—भले काया कुवडी, दुवली एव कुरुपा क्यो न हो, किन्तु उस देहधारी की बुद्धि विलक्षण कार्य करने मे सुक्ष्म है। उलझी, विगडी गुत्थी को सुलझाने मे, नारकीय जीवन मे स्वर्गीय सुषमा निर्मित करने मे, एव द्वेष-क्लेष दावानल के वीच प्रेम पयोदधि वहाने मे निपुण है। ऐसे प्रवुद्ध नर एव सृष्टि के देवता माने गये हैं। कहा भी है – "**तेजो यस्य विराजते स वलवान स्थूलेषु क प्रत्यय ।**" अर्थात् जिसमे वुद्धि का प्रखर तेज विद्यमान है वह शक्ति सम्पन्न माना गया है।

मन का भिखारी

एक मानव वह है - जिसके पास पेट भरने को पूरा अन्न नही, तन ढकने को पूरे वस्त्र नही, सर्दी-गर्मी, वर्षा से वचने के लिए भव्य-भवन तो क्या किन्तु टूटी-टपरी भी नही। जो सदैव अनाथ की तरह फुटपाथ या वाग-वगीचो व धर्मशालाओ मे पडे रहते हैं। भूख लगी तो मांग खाया और प्यास लगी तो नल का पानी पी लिया। रोना आया तो अकेले ही रो लिया और हँसी आई तो अकेले ही हँस लिया। जिसका न कोई परिवार, घर, गाँव और न कोई समाज-सहायक है। ऊपर आकाश और पैरो तले जमीन ही जिसके आधार भूत है। आज का वुद्धिजीवी मानव उपर्युक्त दयनीय दशा वाले मानव को भिखारी की सज्ञा प्रदान करता है।

वस्तुत विशाल दृष्टिकोण से सोचा जाय तो नि सदेह उपर्युक्त सामग्री से विहीन मानव कदापि भिखारी नही। भिखारी तो वह है जिसके पास लाखो करोडो की सपत्ति जमा है, गगनचुम्वी अट्टालिकाओ मे मौज उडा रहे हैं। फिर भी शुभ कर्मो मे उस लक्ष्मी का उपयोग करना तो दूर रहा, परन्तु पैसे-पैसे के लिए हाय-हाय करते, एव गली-गली मे धक्के खाते हैं। ऐसे मानव लाखो-करोडो के स्वामी होते हुए भी दरअसल दिल के दरिद्री एव मन के भिखारी माने गये हैं।

∧ धर्म का निवास—शास्त्रो, ग्र थो और मदिर एवं उपाश्रयो मे नही, किंतु मनुष्य की आत्मा मे है। पवित्र और सरल आत्मा मे ही धर्म निवास करता है।

∧ दर्शन का अर्थ—तर्क-वितर्क तथा जड-चेतन की गहरी चर्चा करना मात्र नही, वस्तुतत्व का दर्शन करना, दर्शन का स्थूल प्रयोजन है। आत्मतत्व का दर्शन अर्थात् अन्तर दर्शन करना है ही—सच्चा दर्शन है।

∧ सस्कृति—वाह्य वेप-भूषा, परिधान, व्यवहार और वोल-चाल मे नही, किंतु मनुष्य के सभ्य, सुसस्कृत और परिष्कृत विचार तथा तदनुकूल निश्छल व्यवहार मे टपकती है।

—प्रताप मुनि

धर्म दर्शन एवं संस्कृति

विश्वज्योति भगवान महावीर का त्रिपृष्ठभव : एक विश्लेषण

—रमेश मुनि शास्त्री

जैन-दर्शन की विचार-सरणि का मूलाधार आस्तिकता है। आस्तिक के अन्तस्तल मे आत्म-अस्तित्व सम्वन्धी विचारो का प्रवाह प्रवाहित होगा कि—मै कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, इस शरीर रूपी पिंजडे का परित्याग करके मेरा आत्म विहग कहाँ जायगा, और मेरी भव-भव की शृङ्खला कब विशृङ्खलित होगी। इस प्रकार आत्मा के नित्यत्व मे दृढ आस्था रखता है।

भट्टोजी दीक्षित ने आस्तिक और नास्तिक शब्दो की गहराई मे पैठकर उसके रहस्य का उद्घाटन करते हुये कहा जो निश्चित रूप से परलोक व पुनर्जन्म को स्वीकार करता है वह आस्तिक है और जो उसे स्वीकारता नही है वह नास्तिक है।[1] श्रमण सस्कृति की अमर उद्घोषणा है—आत्मा अनादि अनन्त काल से विराट् विश्व मे पर्यटन कर रहा है, नरक तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगति मे परिभ्रमण कर रहा है। अद्वितीय ज्योतिर्धर व्यक्तित्व के धनी प्रभु महावीर ने आत्म अस्तित्व के सम्वन्ध मे प्रकाश डालते हुये कहा—ऐसा कोई भी स्थल नही, जहाँ यह आत्मा न जन्मा हो।[2] और ऐसा कोई भी जीव नही, जिसके साथ मातृ-पितृ-भ्रातृ भगिनी भार्या पुत्र-पुत्री रूप सम्वन्ध न रहा हो।[3] गणधर इन्द्रभूति गौतम की जिज्ञासा का समाधान करते हुये भगवान् महावीर ने कहा—हे गौतम! तुम्हारा और हमारा सम्वन्ध भी आज का नही, अतीत काल से चला आ रहा है, यह सम्वन्ध चिर काल पुराना है। चिर काल से तू मेरे प्रति स्नेह-सद्भावना रखता रहा है। मेरे गुणो का उत्कीर्तन करता रहा है। मेरी सेवा भक्ति करता रहा है। मेरा अनुसरण करता रहा है। देव व मानव भव मे एक वार नही अपितु अनेक वार हम साथ रहे हैं।[4] इस पर से यह स्पष्टतर हो जाता है कि श्रमणसस्कृति के आराध्य देव सिद्ध बुद्ध वनने के पूर्व नाना गतियो मे इधर-उधर घूमते रहे हैं। उनका आत्मपट कर्मों की कालिमा से कृष्णपट की तरह काला था। उन्होंने साधना-सलिल के माध्यम से आत्मपट को उज्ज्वल समुज्ज्वल एव परमोज्ज्वल किया। श्रमण भगवान् महावीर के जीव ने जन्म-जन्मान्तरो मे उत्कृष्ट साधना की, अन्त मे उनकी आत्मा महावीर के रूप मे आई। इस पर से यह प्रतीत हो जाता है कि उनका जीवन प्रारम्भ से हमारी ही तरह राग-द्वेष के मैल मे कलुषित था। परन्तु उन्होने सयम साधना एव उग्रतप आराधना करके अपने जीवन को निखारा था। जिससे वे सिद्ध बुद्ध वने। त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, महावीर चरिय और कल्प सूत्र की

---

१ अस्ति परलोक इत्येव मतिर्यस्य स आस्तिक, नास्तीतिमतिर्यस्य स नास्तिक—सिद्धान्तकौमुदी

२ जाव किं सव्वपाणा उववण्णपुव्वा ?

हता गोयमा! असति अदुवा अणतखुत्तो।'

—भगवती सूत्र श० २ उ० ३।

३. —भगवती शतक १२- उ० ७।

४ —भगवती शतक १४ उ० ७।

विभिन्न टीकाओ मे प्रभु महावीर के सत्ताइस पूर्व भवो का वर्णन मिलता है। दिगम्बराचार्य गुणभद्र ने तेतीस भवो का निरूपण किया है।[५] और इस सन्दर्भ मे यह भी ज्ञातव्य है कि—नाम स्थल तथा आयु आदि के सम्बन्ध मे भी दोनो परम्पराओ मे अन्तर की रेखाएँ खीची हुई है।[६] किन्तु यह तो निश्चयात्मक ही है कि—उनका तीर्थंकरत्व अनेक जन्मो की साधना आराधना का परिणाम था।

यहाँ यह सहज मे ही शका उद्बुद्ध हो सकती है कि सत्ताईस पूर्व भवो का निरूपण क्यो किया गया ! शका-समाधान मे यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भवो की जो गणना की गई है वह सम्यक्त्व उपलब्धि के पश्चात् की है।[६] प्रभु महावीर के जीव ने सर्व प्रथम नयसार के भव मे सम्यक्त्व की प्राप्ति की।[७] अत उसी भव से उनके पूर्व भवो की परिगणना की गई है ! यहाँ एक बात और ज्ञातव्य है कि सत्ताईस भवो की जो गणना की गई है वह भी क्रमबद्ध नही है। इन भवो के अतिरिक्त अनेक बार प्रभु के जीव ने नरक देव आदि के भव किये थे। वहाँ आचार्य ने कुछ काल पर्यन्त ससार-भ्रमण करके ऐसा उल्लेख कर आगे बढ गये हैं।[८]

श्रमण प्रभु महावीर का जीव सत्तरहवें भव मे महाशुक्र कल्प मे उत्कृष्टस्थिति वाला देव हुआ।[९] देवलोक की आयु पूर्ण कर वह पोतनपुर नगर मे प्रजापति राजा की महारानी मृगावती की कुक्षि मे उत्पन्न हुआ।[१०] माता ने सप्त स्वप्न देखे ! जन्म होने पर पुत्र के पृष्ठ भाग मे तीन पसलियाँ होने के कारण उनका नाम करण "त्रिपृष्ठ" हुआ। सुकुमार सुमन की तरह उनका बचपन नित्य-नूतन अगडाई ले रहा था ! उनका अत्यधिक इठलाता हुआ तन सुगठित बलिष्ठ तथा भुवन भास्कर की स्वर्णिम प्रभा सा कान्तिमान् था, और उनका हृदय मखमल सा मृदुल था ! बचपन से जब वे यौवन के मधुर उद्यान मे प्रवेश किया तब एक घटना घटित होती है।

राजा प्रजापति प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव के माण्डलिक थे। एकदा वासुदेव ने निमितज्ञ के समक्ष अपनी जिज्ञासा सम्प्रस्तुत करते हुये कहा—मेरी मृत्यु कैसे होगी ? निमित्तज्ञ ने बताया कि—'जो आप के चण्डमेघ दूत को पीटेगा'। तुङ्गगिरि पर रहे हुए केसरी सिंह को मारेगा, उसके हाथ से आपकी मृत्यु

---

५ (क) महापुराण-द्वितीय विभाग
(ख) उत्तर पुराण, पर्व ७४ पृ० ४४४ —गुण भद्राचार्य

६ सम्प्रति यथा भगवता सम्यक्त्वमवाप्त यावतो वा भवानवाप्तसम्यक्त्व ससार पर्यटितवान्।
—आवश्यक मल० वृत्ति १५७। २।

७ (क) आवश्यक भाष्य गा० २।
(ख) आवश्यक निर्युक्ति गा० १४४

८ ससारे कियन्तमपि कालमटित्वा।
—आवश्यक निर्युक्ति म० २४८

६. (क) त्रिषष्टिशलाका ० १० | १ | १६७१ !
(ख) आवश्यकमलय गिरि वृति २४६ !
(ग) आवश्यक चूर्णि—२३२।

१० (क) समवायाग सूत्र २५७
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० २३२
(ग) आवश्यक मल० गिरि वृत्ति० २५० | १

होगी।[११] यह सुनते ही अश्वग्रीव का अन्तर्मानस भय से काप उठा। उसने सुना—प्रजापति राजा के पुत्र बड़े ही बलिष्ठ हैं। परीक्षा करने चण्डमेघ दूत को वहाँ प्रेषित किया।

नराधिपति प्रजापति अपने पुत्र तथा सभासदो के साथ राजसभा मे बैठा था। सगीत की स्वर्ग लहरी व सुमधुर झकार से राजसभा झकृत हो उठी। सभी तन्मय होकर नृत्य तथा सगीत का आनन्द लूट रहे थे। सभी के मनोऽरविन्द प्रसन्नता के मारे नाच रहे थे। ठीक उसी समय एक अभिमानी दूत बिना पूर्व सूचित किये ही राज-सभा मे प्रविष्ट हुआ। राजा ने सभ्रान्त होकर दूत का सुस्वागत किया। सगीत और नृत्य का कार्य स्थगित हुआ और उसका सन्देश सुनने मे राजा तल्लीन हो गया।

त्रिपृष्ठ को दूत की उद्दण्डता अखरी। इसने रग मे भग क्यो किया। तत्पश्चात् उन्होने अपने अनुचरो को आदेश दिया कि जब यह दूत यहाँ से प्रस्थान करे तब हमे सूचित करना।

राजा ने सस्नेह सत्कार पूर्वक दूत को विदा किया। इधर दोनो राजकुमारो को सूचना मिली। उन्होंने जगल मे दूत को पकडा और बुरी तरह उसे मारने-पीटने लगे। दूत के जितने भी साथी थे वे सभी भाग छूटे, दूत की खूब पिटाई सुनकर राजा प्रजापति चिन्ता-सिन्धु मे डूब गये। दूत को पुन अपने सानिध्य मे बुलाया और अत्यधिक पारितोषिक प्रदान किया और कहा कि पुत्रो की यह भूल अश्वग्रीव से न कहना। दूत ने राजा की बात स्वीकार की। पर उनके साथी-सहायक जो पहले पहुँच चुके थे, उन्होने सम्पूर्ण वृत्तान्त अश्वग्रीव को अवगत करा दिया। अश्वग्रीव कोपाभिभूत हो उठा। दोनो राजकुमारो को मौत के घाट उतारने का दृढ सकल्प किया।

तत्पश्चात् अश्वग्रीव ने तुङ्गग्रीव क्षेत्र मे शालिधान्य की खेती करवायी और कुछ समय के पश्चात् राजा ने प्रजापति के पास दूत को प्रेषित किया। दूत ने आदेश सुनाया कि शालि के खेतो मे एक क्रूरसिंह ने उपद्रव मचा रखा है। वहाँ पर रखवाली करने वालों को काल के गाल मे पहुँचा देता है। सारा क्षेत्र भय से ग्रस्त है, विकट सकट के बादल मण्डरा रहे हैं अत आप वहाँ पहुँच कर सिंह से शालिक्षेत्र की सुरक्षा कीजिये। प्रजापति ने अश्वग्रीव के मनोगत भावों को समझ लिया और पुत्रो से कहा—तुमने दूत के साथ जो व्यवहार किया है उसी का यह परिणाम आया कि बारी न होने पर भी यह आदेश आया है।

प्रजापति स्वय शालिक्षेत्र की ओर प्रस्थान करने के लिए तत्पर हुए। पुत्रो ने प्रार्थना की अभ्यर्थना की—पिताजी! आप मत पधारिये आप ठहर जाइये! हम जायेंगे। इस प्रकार कहकर वे दोनो शालिक्षेत्र की ओर चल पडे। वहाँ जाकर खेत के सरक्षको से पूछा—अन्य राजन्य यहाँ पर किस प्रकार और किस समय रहते हैं? उन्होंने निवेदन किया—जब तक—शालि अर्थात् धान्य पक नही जाता है तब

११ (क) —त्रिषष्टि० श० पु० १० | १ | १२२-१२३।
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० २३३।

१२ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३३।
(ख) अन्येऽरक्षन्नृपा सिंह कथकार कियच्चिरम्।
इति पृष्टास्त्रिपृष्ठेन, शशसु शालिगोपका ॥
—त्रिषष्टि० १० | १ | १३९

तक चतुरगिनी सेना का घेरा डालकर हयहाँते हैं और सिंह से रक्षा करने मे सलग्न हो जाते हैं[१२]। त्रिपृष्ठ ने कहा—मुझे वह स्थान बताओ जहाँ वह नवहत्था केसरी सिंह रहता है। रथारूढ होकर शस्त्र-युक्त वह वहाँ पहुचा। सिंह को ललकारने लगा, सिंह भी अगडाई लेकर उठा और मेघ सदृश—गभीर गर्जना मे पर्वत की चोटियो को कपाते हुए बाहर निकल आया। त्रिपृष्ठ के अन्तस्तल मे विचार लहरें उछलने लगी 'यह पैदल हैं और हम रथारूढ हैं। यह शस्त्र रहित है और हम शस्त्रों से युक्त हैं सज्जित हैं। ऐसी स्थिति मे किसी पर भी आक्रमण करना सर्वथा उचित है। इस प्रकार विचार करके रथ से नीचे उतर गया और शस्त्र भी फेंक दिये[१३]।

सिंह ने विचार किया—यह वज्रमूर्ख है। प्रथम तो एकाकी मेरी गुफा मे प्रविष्ट हुआ, दूसरे रथ से भी उतर गया है, तीसरे शस्त्रो को भी डाल दिये है। अब इस को एक ही झपाटे मे चीर डालू[१४]। ऐसा सोचकर वह त्रिपृष्ट पर टूट पडा। त्रिपृष्ठ भी कोपाभिभूत होकर उस पर उछला और मारी शक्ति के साथ (पूर्वकृत निदानानुसार) उस के जबडो को पकड लिया और वस्त्र की तरह उसे चीर डाला[१५]। प्रस्तुत दृश्य को निहार कर दर्शक आनन्द विभोर हो उठे। सिंह विशाखानन्दी का जीव था।

त्रिपृष्ठ सिंह चर्म लेकर निज नगर की ओर प्रस्थित हुआ। आने के पहले उसने कृषको से कहा—घोटकग्रीव से कह देना कि वह अब पूर्ण निश्चिन्त रहे। जब उसने यह बात सुनी तो वह अत्यधिक क्रुद्ध हुआ। अश्वग्रीव ने दोनो—राजकुमारो को बुलवाया। वे जब नही गये तब—अश्वग्रीव ने सेना सहित पोतनपुर पर चढाई करदी। त्रिपृष्ठ भी ससैन्य देश की सीमा पर पहुँचा। भयकरातिभयकर युद्ध हुआ। त्रिपृष्ठ को यह सहार अच्छा न लगा। उसने अश्वग्रीव से कहा—निरपराध सैनिको को मौत के घाट उतारने मे क्या लाभ है? श्रेष्ठ तो यही है कि हम दोनो युद्ध करें[१६]। अश्वग्रीव ने प्रस्तुत प्रस्ताव मान्य किया। दोनो मे तुमुल युद्ध होने लगा। अश्वग्रीव के—समग्र शस्त्र समाप्त हो गये। उसने चक्र रत्न फेंका। त्रिपृष्ठ ने उसे पकड लिया और उसी से अपने ही शत्रु के सिर का छेदन करने लगा। उसी समय—दिव्य वाणी से गगन मण्डल गुञ्जायमान होने लगा। "त्रिपृष्ट नामक प्रथम वासुदेव प्रकट हो गया[१७]।

---

१३ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३४
(ख) आवश्यकमलयगिरि वृत्ति० प० २५० | २

१४—तत्प्रेक्ष्य केसरी जात-जाति स्मृतिरचिन्तयत्।
एक धार्ष्ट्यमहो एको यदागान्मद्गुहामसौ ॥
अन्यरथादुत्तरण तृतीय शस्त्रमोचनम्।
दुर्मद तन्निहन्म्येप, मदान्धमिव सिन्धुरम् ॥
—त्रिपष्टि० १०।१।१४६, १४७

१५—त्रिपष्टि १०।१।१४८,१४९

१६—त्रिपष्टि १०।१।१६४ से १६६

१७—(क) उत्तर पुराण ७४। १६१ से १६४ पृ० ४५४
(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० २३४
(ग) आवश्यक निर्युक्ति मलय० वृ० २५०

एक वार दिवस का अवसान समीप था। सन्ध्या की सुहावनी वेला थी। भगवान् भास्कर—अस्ताचल की गोद मे पहुँच गया था। उस समय त्रिपृष्ठ के नैकट्य मे कुछ सगीतज्ञ उपस्थित हुये। उन्होने सगीत कला का परिचय दिया, सगीत की अत्यधिक सुमधुर झकार से वहाँ का स्थल झकृत हो उठा। त्रिपृष्ट वासुदेव ने शय्यापालको को आदेश दिया कि जव मुझे नीद आ जाय तव गायको को रोक देना, शय्यापालको ने त्रिपृष्ठ की आज्ञा शिरोधार्य की। कुछ समय के पश्चात् सम्राट निद्रा देवी की आराधना करने मे निमग्न हो गये। शय्यापालक सगीत की स्वरलहरी सुनने मे तल्लीन हो गये। सगीतज्ञो को उमने विरमित नही किया। रात भर सगीत का कार्यक्रम चलता रहा। ऊषा की स्वर्णिम रश्मियाँ मुस्कराने वाली थी कि राजा जग उठा। सम्राट ने ज्यो ही सगीत का कार्यक्रम देखा तो शय्यापालको से पूछा—इन्हे विसर्जित क्यो नही किया? निवेदन मे उन्होंने कहा—देव! सगीत का प्रभाव हमारे पर इतना पडा कि हम मुग्ध हो गये, सुनते-सुनते अत्यधिक अनुरक्त हो गये जिससे इनको नही रोका [१८]। यह सुन त्रिपृष्ठ क्रोध की अग्नि मे जल उठा, क्रोध मे वह भडक आया। अपने सेवको को वुलवाया और आदेश दिया कि—आज्ञा की अवज्ञा करने वाले एव सगीत के लोभी इस शय्यापालक के कानो मे गर्म शीशा उडेल दो। राजा की कठोरता पूर्ण आज्ञा से शय्यापालक के कर्ण-कुहरो मे गर्मा-गर्म शीशा उडेला गया। असह्य वेदना से छटपटाते हुए उस के प्राण पखेरू उड गये [१९]। सम्राट त्रिपृष्ठ ने सत्ता के मद मे मातङ्ग की तरह उन्मत्त होकर इस क्रूरकृत्य के कारण—निकाचित कर्मो का वन्ध वाधा! महारभ और महापरिग्रह के सिन्धु मे डूवा रहा और चौरासी लाख वर्ष पर्यन्त राज्य श्री का उपभोग करने मे तल्लीन हो गया। वहाँ से आयुपूर्ण होने पर सातवे तमस्तमा नरक के अप्रतिष्ठान नारकावास मे नैरयिक के रूप मे उत्पन्न हुआ [२०]।

१८—(क) तेपु गायत्सु चोत्तस्थौ, विष्णुरुचे च तास्पिकम्।
त्वया विसृष्टा किं नामी सोप्यूचे गीतलोभत।

—त्रिषष्टिशलाका० १०।१।१ १७

(ख)—महावीरचरिय प्र० ३, प० ६२।

१९—महावीर चरिय ३, प० ६२।

२०—तिवट्ठेण वासुदेवे चउरासीइवाससयमहस्साइ—सव्वाउय पालइत्ता अप्पइट्ठाणे नरए नेरइत्ताए उववन्नो।

—समवायाङ्ग ८४ समवाय

धर्म क्रान्ति के अग्रदूत—

तीर्थंकर महावीर

—श्री यशपाल जैन

महावीर ने समाज की इस दुरवस्था के विरुद्ध विद्रोह किया। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण रचनात्मक था। वह बडी लकीर खीचकर पास की लकीर को छोटा सिद्ध करने के पक्षपाती थे। उन्होंने किसी भी मान्यता का खण्डन नही किया, न किसी को तर्क द्वारा परास्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने जीवन के सही मूल्यो की प्रस्थापना की। युग-प्रवाह के विरुद्ध तैरना सुगम नही होता। भयकर हिंसा के बीच महावीर ने घोष किया—"अहिंसा परम धर्म है।"

अन्ध विश्वासो को चुनौती

तीर्थंकर महावीर क्रातिकारी थे। क्रान्ति का अर्थ होता है—प्रचलित मान्यताओ, रूढियो, अन्धविश्वासो के विरुद्ध स्वर ऊँचा करना और नये मूल्य स्थापित करना। महावीर ने वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन मे व्याप्त बुराइयो को चुनौती दी और उस मार्ग को प्रतिष्ठित किया, जिस पर चल कर मानव तथा समाज शुद्ध एव प्रबुद्ध बन सकता था। उन्होने सबसे पहला क्रान्तिकारी कदम स्वय के जीवन मे उठाया। वह राजपुत्र थे। उनके चारो ओर समृद्धि और वैभव था। समाज मे इन दोनो का बडा मान था। मनुष्य की ऊँचाई और निचाई इस बात से आकी जाती थी कि उसके पास कितना धन है और वह किस ओहदे पर है। महावीर ने राज्य त्यागा, धन त्यागा, क्योकि उनकी दृष्टि मे मानव का मानदण्ड ये वस्तुएँ नही थी। महावीर का यह कार्य असामान्य था, क्योकि सासारिक प्रलोभनो को विरले ही छोड पाते हैं, विशेषकर युवावस्था मे ऐसा करना तो और भी कठिन होता है। महावीर उस समय लगभग तीस वर्ष के थे और यह वह वय थी, जबकि मनुष्य को भौतिक साधन रस प्रदान करते हैं। महावीर पर कोई भी बाहरी दबाव नहीं था। उन्होने स्वेच्छा से सुख प्रदायक माने जाने वाले प्रसाधनो को तिलाजलि दी और साधना के कठोर मार्ग पर चल पडे। उन्होने कोई भी बन्धन स्वीकार नही किया, यहाँ तक कि वस्त्रो तक का त्याग कर दिया।

असाधारण आत्मिक बल

बाल्यकाल से ही उनमे बडा साहस और आत्मविश्वास था। धैर्य और कष्ट-सहिष्णुता थी। क्रान्ति के लिये ये सब गुण अनिवार्य हैं। दुर्बल व्यक्ति दीर्घकालीन साधना के मार्ग पर चल नहीं सकता और जिसमे आत्म-विश्वास न हो वह समाज को बदल नही सकता। महावीर ने बारह वर्ष तक साधना की। सर्दी, गर्मी, वर्षा, धूप तथा समाज के अवाछनीय तत्वो के उपसर्ग उन्हे अपने मार्ग से विचलित न कर सके। मेरी निश्चित मान्यता है कि महावीर मे असाधारण आत्मिक बल, मानसिक दृढता रही होगी तभी वह अपनी साधना को अन्त तक निभा सके।

शंखनाद क्रान्ति का

इस प्रकार क्रान्ति का प्रथम शखनाद उन्होंने तव किया जव घरवार, राजपाट तथा सामारिक सुख वैभव को अपनी इच्छा से छोडा। उनका क्रान्तिकारी स्वर उससे भी पहले दो और अवसरो पर सुनाई दिया। मा त्रिशला की स्वाभाविक इच्छा थी कि उनका लडका घर-गृहस्थी का होकर रहे और इस सम्वन्ध मे जव उन्होने अपने पुत्र से चर्चा की तो जानते हैं उन्होने क्या कहा ? उन्होंने कहा, "मा, देख नही रही हो कि ससार कितना दु खी है और धर्म का कितना ह्रास हो रहा है। लोग माया मोह मे फँसे हैं। लोकहित के लिए इस समय सवसे अधिक आवश्यकता धर्म के प्रचार एव प्रसार की है।

मा ने समझाते हुए कहा, "मैं जानती हूँ, तुम्हारा जन्म ससार के कल्याण के लिए हुआ है, पर अभी तुम्हारी उम्र है कि तुम घर गृहस्थी मे पडो।"

महावीर का क्रान्तिकारी स्वर और दृढ हो उठा—'इस देह का क्या भरोसा है ? तुम कुछ भी कहो, मुझसे ऐसा नही होगा, नही होगा।"

जीवन-धर्म जीवन-मर्म

यह भाषा सामान्य जन की नही है। ये स्वर हैं उस व्यक्ति के जो जानता है कि इस नश्वर जीवन की सार्थकता इस वात मे नही है कि वह जग की मोह-माया मे लिप्त रहकर अपनी ऊर्जा को नष्ट कर दे, वल्कि इस वात मे है कि वह जीवन के धर्म को और मर्म को समझे, उस मार्ग पर चलकर अपने को कृतार्थ करे।

धर्म एक प्राण शक्ति

महावीर की क्रान्ति का दूसरा क्षेत्र था समाज। ढाई हजार वर्ष पहले का समय था जवकि समाज भ्रष्टाचार तथा अन्धविश्वासो मे फँस गया था। सडी गली रूढियाँ समाज मे घर कर गयी थी, मनुष्य के आचरण को ऊँचा उठाने वाले नियम छिन्न-भिन्न हो गये थे, मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर वुरे से वुरा काम कर सकते थे, धर्म की जडें हिल गयी थी, मानव सत्ता का दास हो चुका था। भाई चारे की भावना तिरोहित हो गई थी, चारो वर्णों के आधार पर समाज मे ऊँच-नीच के दर्जे वन गये थे, स्त्रिया मनुष्य की सम्पत्ति मानी जाती थी, उन्हे आगे वढाने के अवसर नही थे, यज्ञो मे पशु वलि दी जाती थी निर्दयता से पशुओ का हनन किया जाता था, हिंसा का सर्वत्र वोल-वाला था। वास्तव मे वात यह थी, कि लोग धर्म के वाह्य रूप को अधिक महत्त्व देने लगे थे। धर्म की आत्मा जाती रही थी। कर्म काण्ड मे फस जाने के कारण लोग धर्म के वास्तविक रूप को भूल गये थे। वे जादू, टोने, टोटके, भूत-प्रेत आदि के अध-विश्वासो मे वुरी तरह जकड गये थे।

वडी लकीर-छोटी लकीर

महावीर ने समाज की इस दुरवस्था के विरुद्ध विद्रोह किया। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण रचनात्मक था। वह वडी लकीर को छोटा सिद्ध करने के पक्षपाती थे। उन्होंने किसी भी मान्यता का खण्डन नही किया, न किसी को तर्क द्वारा परास्त करने का प्रयत्न किया। उन्होने जीवन के सही मूल्यो की प्रस्थापना की। युग प्रवाह के विरुद्ध तैरना सुगम नही होता। भयकर हिंसा के वीच महावीर स्वामी ने घोष किया—(**अहिंसा परमो धर्म**) अहिंसा परम धर्म है। वस्तुत यह वुनियादी वात थी, क्योकि जो व्यक्ति हिंसा करता है वह वहुत सी व्याधियो का शिकार वन जाता है। उसमे असत्याचरण, असयम,

कायरता, द्वेष और न जाने क्या-क्या दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये उन्होंने सबसे अधिक बल अहिंसा पर दिया। उन्होंने कहा—"अहिंसा से ही मनुष्य सुखी हो सकता है ससार मे शान्ति बनी रहती है।"

अहिंसा वीरों का अस्त्र

लेकिन उन्होने स्पष्ट कहा कि—अहिंसा वीरो का अस्त्र है। कमजोर या कायर उसका उपयोग नही कर सकते। जिसमे मारने का सामर्थ्य है, फिर भी नही मारता, वह व्यक्ति अहिंसक है। जिसमे शक्ति नही, उसका न मारने की बात कहना, अहिंसा का परिहास करना है। अत यह कहना असत्य है कि—महावीर ने शस्त्रो के बल को आत्मिक बल के समक्ष हेय बता कर राष्ट्र की वीरता को क्षीण कर दिया। समाज को निर्वीर्य बना दिया। महावीर की अहिंसा अत्यन्त तेजस्वी अहिंसा थी। वह उस प्रकाश पुज के समान थी जिसके आगे हिंसा का अधकार एक क्षण टिक नही सकता था। जिसका अन्त करण निर्मल हो, जो सत्य का पुजारी हो, निर्भीक हो, वही अहिंसा के अमोघ अस्त्र का प्रयोग कर सकता है। आज अहिंसा की शक्ति इतनी मद पड रही है, उसका मुख्य कारण यही है कि हम अहिंसा की तेजस्विता को भूल गये हैं और झूठी विनम्रता को अहिंसा मान बैठे है। अहिंसा पर चलना, तलवार की धार पर चलने के समान है।

जीओ, जीने दो

अहिंसा के मूल मत्र के साथ महावीर ने एक सनातन आदर्श और जोडा—"जीओ और जीने दो।" जिस प्रकार तुम जीने की और सुखी रहने की अकाक्षा रखते हो, उसी प्रकार दूसरा भी जीने और सुखी रहने की आकाक्षा रखता है। इसलिए यदि तुम जीना चाहते हो तो दूसरे को भी जीने का अवसर दो। समाज की स्वार्थपराणयता पर इससे बढकर और चोट क्या हो सकती है। "आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्।' जिस प्रकार का आचरण तुम अपने प्रति किया जाना पसन्द नही करोगे, वैसा आचरण दूसरो के प्रति मत करो।

महावीर की अहिंसा की परिभाषा थी—अपनी कषायो को जीतना, अपनी इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखना और किसी भी वस्तु मे आसक्ति न रखना। यह राजमार्ग कायरो का नही, वीरो का ही हो सकता है।

"अह" की जड़ें हिलो

समाज की अहित कर रूढियो को मिटाने के साथ-साथ उन्होंने धनी-निर्धन ऊच-नीच आदि की विशेषताओ को दूर करने का तो प्रयास किया ही, लेकिन उन्होने एक और क्रान्तिकारी सिद्धान्त दिया "अनेकान्त" का। समाज मे और ससार मे झगडे की सबसे बडी जड हमारा अह है, मताग्रह है। हम जो कहते हैं, वही सत्य है, दूसरे जो कहते हैं, वह झूठ है ऐसी सामान्य धारणा सर्वत्र प्रचलित दिखाई देती है। महावीर ने कहा, यह ठीक नही है। तुम जो कहते हो, वही एकान्तिक सत्य नहीं है। दूसरे जो कहते हैं, उसमे भी सत्य है, सत्य के अनेक पहलू होते हैं। तुम्हे जो दीख पडता है, वह सत्य का एक पहलू है। जिस प्रकार पाच अधो ने एक हाथी के विभिन्न अगो को देखकर अपने-अपने दृष्ट अग को ही हाथी मान लिया, पर वस्तुत हाथी तो सब अगो को मिलाकर बना था, यही बात हमारे साथ होनी चाहिए। यदि हम इस सिद्धान्त के अनुसार चलें तो आज के सारे विग्रह दूर हो जाय और हमारा जीवन अत्यन्त शान्तिपूर्ण बन जाय।

उपदेश और सिद्धान्त

तीर्थंकर महावीर की दो और बातों को मैं बहुत ही क्रान्तिकारी मानता हूँ। पहली तो यह कि

उन्होने अपने उपदेशो तथा सिद्धान्तो को किसी धर्म-विशेष की सीमा मे आवद्ध नही किया । वह जो कुछ कहते थे, मानव मात्र के लिए कहते थे । उनके कुछ उपदेश देखिए —

"जो मनुष्य प्राणियो की स्वय हिसा करता है, दूसरो से हिसा करवाता है और हिसा करने वालो का अनुमोदन करता है, वह ससार मे अपने लिए वैर वढाता है ।"

"जो मनुष्य भूल से भी मूलत असत्य, किन्तु ऊपर से सत्य मालूम होने वाली भाषा वोलता है, वह भी जव पाप से अछूता नही रहता तव भला जो जान वूझकर असत्य वोलता है, उसके पाप को तो कहना ही क्या ?

"जैसे ओस की वूद घास की नोक पर थोडी देर तक ही रहती है, वैसे ही मनुष्य का जीवन भी वहुत छोटा है, शीघ्र ही नाश हो जाने वाला है । इसलिए क्षण भर को भी प्रमाद न करो ।"

"शान्ति से क्रोध को मारो, नम्रता से अधिकार को जीतो, सरलता से माया का नाश करो और सतोष से लोभ को कावू मे लाओ ।"

"ससार मे जितने भी प्राणी हैं सव अपने किये कर्मों के कारण ही दुखी होते हैं । अच्छा या वुरा, जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगे विना छुटकारा नही मिलता ।"

"अपनी आत्मा को जीतना चाहिए । एक आत्मा को जीत लेने पर सव कुछ जीत लिया जाता है ।"

"जिस प्रकार कमल जल मे पैदा होकर भी जल से लिप्त नही होता उसी प्रकार जो ससार मे रहकर भी काम-भोगो से एकदम अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।"

'चाँदी और सोने के कैलाश के समान विशाल असख्य पर्वत भी यदि पास मे हो तो भी मनुष्य की तृप्ति के लिए वह कुछ भी नही, कारण कि तृष्णा आकाश के समान अनन्त है ।'

उनके उपदेश समस्त मानव जाति के लिये थे । यही कारण था कि उनके समवशरण मे सभी धर्मो के लोग, यहाँ तक कि जीव-जन्तु भी सम्मिलित होते थे । महावीर जैन थे, कारण कि उन्होने आत्म विजय प्राप्त की थी । जैन शव्द 'जिन' से वना है जिसका अर्थ है—अपने को जीतना ।"

मैं प्राय विभिन्न अम्नायो के व्यक्तियो से पूछा करता हू कि महावीर किस सम्प्रदाय के थे ? दिगम्वर, श्वेताम्वर, स्थानकवासी या तेरापथी ? सच है कि वह किसी भी सम्प्रदाय के नही थे, सव उनके थे ।

भाषा की क्रान्ति

दूसरी वात कि भाषा के क्षेत्र मे महावीर ने क्रान्तिकारी कदम उठाया । उनके जमाने मे सस्कृत का जोर था । वह परिष्कृत भाषा थी । लेकिन जन सामान्य के वीच अर्द्धमागधी का चलन था । महावीर चूकि अपना सदेश साधारण लोगो तक पहुचाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अर्द्धमागधी को अपने उपदेशो का माध्यम वनाया । वह चाहते तो सस्कृत का उपयोग कर सकते थे, लेकिन उस अवस्था मे उनके विचार शिक्षित तथा उच्च वर्ग तक ही सीमित रह जाते ।

भविष्य-दर्शन

इस तरह हम देखते हैं कि महावीर एक क्रान्तिकारी व्यक्ति थे । उन्होने ऐसे वहुत से काम किये, जो उनके अद्‌भुत साहस तथा पराक्रम के द्योतक हैं । क्रान्तिकारी द्रष्टा भी होता है । महावीर की निगाह वर्तमान को देखती है, पर वही ठहर नहीं जाती । वह भविष्य को भी देखती है । महावीर के सिद्धान्त इतने क्रान्तिकारी हैं कि वे सदा प्रेरणा देंगे । आवश्यकता इस वात की है कि हम उनके अनुसार आचरण करे ।

विश्व को भगवान महावीर की देन

— बहुश्रुत श्री मधुकर मुनि जी

भारतवर्ष की यह सास्कृतिक परम्परा रही है कि यहाँ महापुरुष जन्म से पैदा नही होते किंतु कर्म से बनते हैं। अपने उदात्त एव लोकहितकारी आदर्श तथा आचरण के बल पर ही वे पुरुष से महापुरुष की श्रेणी मे पहुचते हैं, आत्मा से महात्मा और परमात्मा तक की मजिल को प्राप्त करते हैं। इसलिए भारतवर्ष के किसी भी महापुरुष के कर्तृत्व पर, उनकी साधना और सिद्धि पर विचार करते समय सबसे पहले उनकी जीवन दृष्टि पर हमारा ध्यान केन्द्रित होता है। स्वय के जीवन के प्रति और विश्व-जीवन के प्रति उनका क्या चिन्तन रहा है, किस दृष्टि को मुख्यता दी है और जीवन जीने की किस विधि पर विशेष बल दिया है—यही महापुरुष के कर्तृत्व और विश्व के लिए उसकी देन को समझने का एक मापदण्ड है।

भगवान महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के पावन प्रसग पर आज हमारे समक्ष यह प्रश्न पुन उभर कर आया है कि २५०० वष की इस सुदीर्घ काल यात्रा मे भी जिस महापुरुष की स्मृतियाँ और सस्तुतियाँ मानवता के लिए उपकारक और पथ दर्शक बनी हुई है, उस महापुरुष की आखिर कौनसी विशिष्ट देन है जिससे मानवता आज निराशा की अन्धकाराच्छन्न निशा मे भी प्रकाश प्राप्त करने की आशा लिए हुए हैं।

भगवान महावीर स्वय ही विश्व के लिए एक देन थे—यह कहने मे कोई अत्युक्ति नही होगी। उनके जीवन के कण-कण मे और उनके उपदेशो के पद-पद मे मानवता के प्रति असीम प्रेम, करुणा और उसके अभ्युदय की अनन्त अभिलाषा छलक रही है। और इसी जीवन-धारा मे उन्होंने जो कुछ किया कहा वह सभी मानवता के लिए एक प्रकाश पुज है, एक अमूल्य देन है।

मानव सत्ता की महत्ता

भगवान महावीर से पूर्व के भारतीय चिंतन मे मानव की महत्ता मानते हुए भी उसे ईश्वर या किसी अज्ञात शक्ति का दास स्वीकार कर लिया गया था। मानव ईश्वर के हाथ की कठपुतली समझी जाती थी, और उस ईश्वर के नाम पर मानव के विभिन्न रूप, विभिन्न खण्ड निर्मित हो गये थे। पहली बात—मानली गई थी कि ससार मे जो कुछ भी हो रहा है या होने वाला है वह सब ईश्वर की इच्छा का ही फल है। मानव तो मात्र एक कठपुतली है, अभिनेता तो ईश्वर है, वही इसे अपनी इच्छानुसार नचाता है।

दूसरी बात— मानव-मानव मे ही एक गहरी भेद रेखा खीच दी गई थी, कुछ मनुष्य ईश्वर के प्रतिनिधि बन गये, कुछ उनके दलाल और बाकी सब उन ईश्वरीय एजेन्टो के उपासक। ब्राह्मण चाहे कैसा भी हो वह पूज्य और गुरु है, शूद्र चाहे कितना ही पवित्र हो, उसे स्वय को पवित्र मानने का अधि-

भी नही, और स्त्री चाहे कितनी भी सहिष्णु, सेवा-परायणा एव धर्ममय जीवन जीने वाली हो— उसे धर्म-साधना करने और शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने का कोई अधिकार नही। यह मानव-सत्ता का अवमूल्यन था मानव शक्ति का अपमान था।

भगवान महावीर ने सबसे पहले मानव सत्ता का पुनर्मूल्याकन स्थापित किया। उन्होंने कहा— ईश्वर नाम का ऐसा कोई व्यक्ति नही है जो मनुष्य पर शासन करता हो, मनुष्य ईश्वर का दास या सेवक नही है, किन्तु अपने आपका स्वामी है। उन्होंने कहा—

"अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।

—उत्तराध्ययन सूत्र

अपने सुख एव दुख का करने वाला यह आत्मा स्वय है। आत्मा का अपना स्वतन्त्र मूल्य है, वह किसी के हाथ विका हुआ नहीं है। वह चाहे तो अपने लिए नरक का कूट शाल्मली वृक्ष (भयकर काटेदार विप-वृक्ष) भी उगा सकता है, अथवा स्वर्ग का नन्दनवन और अशोकवृक्ष भी। स्वर्ग नरक आत्मा के हाथ मे है—आत्मा अपना स्वामी स्वय है। प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा बनने की शक्ति है।

आत्म-सत्ता की स्वतत्रता का यह उद्घोप—मानवीय मूल्यो की नवस्थापना थी, मानव सत्ता की महत्ता का स्पष्ट स्वीकार था। इस आघोप ने मनुष्य को सत्कर्म के लिए, सत्पुरुपार्थ के लिए प्रेरित किया। ईश्वरीय दासता से मुक्त किया। और वन्धनो से मुक्त होने की चावी उसी के हाथ मे सौंप दी गई—

वधप्प मोक्खो अज्झत्थेव —आचाराग सूत्र १।५।२

वन्धन और मोक्ष आत्मा के अपने भीतर है।

समानता का सिद्धान्त

मानवसत्ता की महत्ता स्थापित होने पर यह सिद्धान्त भी स्वय पुष्ट हो गया कि मानव चाहे पुरुप हो या स्त्री, ब्राह्मण हो या शूद्र—धर्म की दृष्टि से, मानवीय दृष्टि से उसमे कोई अन्तर नही है। जाति और जन्म से अपनी आभिजात्यता या श्रेष्ठता मानना मात्र एक दभ है। जाति से कोई भी विशिष्ट या हीन नही—

न दीसई जाइ विसेस कोई — उत्तराध्ययन सूत्र

जाति की कोई विशिष्टता नही है।

उन्होने कहा—ब्राह्मण कौन ? कुल विशेप मे पैदा होने वाला ब्राह्मण नही, किन्तु **बभचेरेण वभणो** (—उत्तराध्ययन) ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला ब्राह्मण होता है। यह जातिवाद पर गहरी चोट थी। जाति को जन्म के स्थान पर कर्म से मान कर भगवान महावीर ने पुरानी जड मान्यताओ को तोडा।

कम्मुणा वभणो होई, कम्मुणा होई खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवई कम्मुणा॥

कर्म-समानता के इस सिद्धान्त से आभिजात्यता का झूठा दभ निरस्त हो गया और मानव-मानव के वीच समानता की भावना, कर्म श्रेष्ठता का सिद्धान्त स्थापित हुआ।

धर्म साधना के क्षेत्र मे भगवान महावीर ने नारी को भी उतना ही अधिकार दिया जितना पुरुप को। यह तो धार्मिकता का, आत्मज्ञान का उपहास था कि एक साधक अपने को आत्मद्रष्टा मानते

हुए भी स्त्री-पुरुष की दैहिक धारणाओं से बंधा रहे और धर्म साधना में स्त्री-पुरुष का लैंगिक भेद मन में बनाये रखे। भगवान महावीर ने कहा—इत्थी ओ वा पुरिसो वा—चाहे स्त्री हो या पुरुष, प्रत्येक में एक ज्योतिर्मय अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्म तत्व है, और प्रत्येक उसका पूर्ण विकास कर सकता है, इसलिए धर्म साधना के क्षेत्र में जातीय एवं लैंगिक भेद के आधार पर भेद-भाव पैदा करना निरा अज्ञान और पाखण्ड है।

इस प्रकार मानव की महत्ता और धर्म-साधना में समानता का सिद्धान्त भगवान महावीर की एक अद्‌भुत देन है, जो भारतीय जीवन को ही नहीं, किन्तु विश्व जीवन को भी उपकृत कर रही है। इसी के साथ अहिंसा का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक दर्शन, अपरिग्रह का उच्चतम सामाजिक और आध्यात्मिक चिंतन तथा अनेकांत का श्रेष्ठ दार्शनिक विश्लेषण—विश्व के लिए भगवान महावीर की अविस्मरणीय देन है। आवश्यकता है आज इस देन से मानव समाज अपना कल्याण करने के लिए सच्चे मन से प्रस्तुत हो।

भगवान महावीर का अपरिग्रह-दर्शन

—उपाध्याय श्रीअमरमुनि

से मइम परिन्नाय मा य हु लाल पच्चासी

—विवेकी साधक लार—थूक चाटने वाला न वने, अर्थात् परित्यक्त भोगो की पुन कामना न करे। —आचाराग १।२।५

जे ममाइयमइं जहाइ, से जहाइ ममाइय।
से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स नत्थि ममाइय।

जो ममत्व बुद्धि का परित्याग करता है, वही वस्तुत. ममत्व-परिग्रह का त्याग कर सकता है।

वही मुनि वास्तव मे पथ (मोक्षमार्ग) का द्रष्टा है—जो किमी भी प्रकार का ममत्व भाव नही रखता है। —आचाराग १।२।६

भगवान् महावीर के चिंतन मे जितना महत्व अहिंसा को मिला, उतना ही अपरिग्रह को भी मिला। उन्होंने अपने प्रवचनो मे जहा-जहा आरम्भ—(हिंसा) का निपेघ किया, वहा-वहा परिग्रह का भी निपेध किया है। चूंकि मुख्यरूपेण परिग्रह के लिए ही हिंसा की जाती है, अत अपरिग्रह अहिंसा की पूरक साधना है।

परिग्रह क्या है ?

प्रश्न खडा होता है, परिग्रह क्या है ? उत्तर आया होगा—धन-धान्य, वस्त्र-भवन, पुत्र-परिवार और अपना शरीर यह सव परिग्रह है। इस पर एक प्रश्न खडा हुआ होगा कि—यदि ये ही परिग्रह है तो इनका सर्वथा त्यागकर कोई कैसे जी सकता है ? जव शरीर भी परिग्रह है, तो कोई अशरीर वनकर जिए, क्या यह सभव है ? फिर तो अपरिग्रह का आचरण असभव है। असभव और अशक्य धर्म का उपदेश भी निरर्थक है।

भगवान् महावीर ने हर प्रश्न का अनेकातदृष्टि से समाधान दिया है। परिग्रह की वात भी उन्होने अनेकात दृष्टि से निश्चित की और कहा—वस्तु, परिवार, और शरीर परिग्रह है भी और नही भी। मूलत वे परिग्रह नही हैं, क्योकि वे तो वाहर मे केवल वस्तु रूप हैं। परिग्रह एक वृत्ति है, जो प्राणी की अन्तरग चेतना की एक अशुद्ध स्थिति है, अत जव चेतना वाह्य वस्तुओ मे आसक्ति, मूर्च्छा, ममत्व (मेरापन) का आरोप करती है तभी वे परिग्रह होते हैं, अन्यथा नही।

इसका अर्थ है—वस्तु मे परिग्रह नही, भावना मे ही परिग्रह है। ग्रह एक चीज है, परिग्रह दूसरी चीज है। ग्रह का अर्थ उचित आवश्यकता के लिए किसी वस्तु को उचित रूप मे लेना एव उसका उचित रूप मे ही उपयोग करना। और परिग्रह का अर्थ है—उचित-अनुचित का विवेक किए विना

आसक्ति-रूप मे वस्तुओ को सब ओर से पकड लेना, जमा करना, और उनका मर्यादाहीन गलत असामाजिक रूप मे उपयोग करना।

वस्तु न भी हो, यदि उसकी आसक्तिमूलक मर्यादाहीन अभीप्सा है तो वह भी परिग्रह है। इसीलिए महावीर ने कहा था—'मुच्छा परिग्गहो'—मूर्च्छा, मन की ममत्व दशा ही वास्तव मे परिग्रह है। जो साधक ममत्व मे मुक्त हो जाता है, वह सोने चादी के पहाडो पर बैठा हुआ भी अपरिग्रही कहा जा सकता है।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने परिग्रह की, एकान्त जडवादी परिभाषा को तोडकर उसे भाववादी, चैतन्यवादी परिभाषा दी।

अपरिग्रह का मौलिक अर्थ

भगवान् महावीर ने बताया, अपरिग्रह का सीधा-सादा अर्थ है—निस्पृहता, निरीहता। इच्छा ही सबसे बडा बधन है, दुख है। जिसने इच्छा का निरोध कर दिया उसे मुक्ति मिल गई। इच्छा-मुक्ति ही वास्तव मे ससारमुक्ति है। इसलिए सबसे प्रथम इच्छाओ पर, आकाक्षाओ पर सयम करने का उपदेश महावीर ने दिया। बहुत से साधक, जिनकी चेतना इतनी प्रबुद्ध होती है कि वे अपनी सम्पूर्ण इच्छाओ पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, महाव्रती-सयमी के रूप मे पूर्ण अपरिग्रह के पथ पर बढते हैं। किन्तु इससे अपरिग्रह केवल सन्यास क्षेत्र की ही साधना मात्र बनकर रह जाता है, अत सामाजिक क्षेत्र मे अपरिग्रह की अवतारणा के लिए उसे गृहस्थ-धर्म के रूप मे भी एक परिभाषा दी गई।

महावीर ने कहा—सामाजिक प्राणी के लिए इच्छाओ का सपूर्ण निरोध, आसक्ति का समूल विलय—यदि सभव न हो, तो वह आसक्ति को क्रमश कम करने की साधना कर सकता है, इच्छाओ को सीमित करके ही वह अपरिग्रह का साधक बन सकता है।

इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं, उनका जितना विस्तार करते जाओ, वे उतनी ही व्यापक, असीम बनती जाएँगी और उतनी ही चिन्ताएँ, कष्ट, अशान्ति बढती जाएँगी।

इच्छाएँ सीमित होगी, तो चिन्ता और अशान्ति भी कम होगी। इच्छाओ को नियत्रित करने के लिए महावीर ने 'इच्छापरिमाणव्रत' का उपदेश किया। यह अपरिग्रह का सामाजिक रूप भी था। बडे-बडे धनकुबेर, श्रीमत एव सम्राट भी अपनी इच्छाओ को सीमित-नियत्रित कर मन को शात एव प्रसन्न रख सकते हैं। और साधनहीन साधारण लोग, जिनके पास सर्वग्राही लम्बे चौडे साधन तो नही होते, पर इच्छाएँ असीम दौड लगाती रहती हैं, वे भी इच्छा-परिमाण के द्वारा समाजोपयोगी उचित आवश्यकताओ की पूर्ति करते हुए भी अपने अनियत्रित इच्छाप्रवाह के सामने अपरिग्रह का एक आन्तरिक अवरोध खडा कर उसे रोक सकते हैं।

इच्छापरिमाण—एक प्रकार से स्वामित्व-विसर्जन की प्रक्रिया थी। महावीर के समक्ष जब वैशाली का आनन्द श्रेष्ठी इच्छापरिमाण व्रत का सकल्प लेने उपस्थित हुआ, तो महावीर ने बताया—"तुम अपनी आवश्यकताओ को सीमित करो। जो अपार-साधन सामग्री तुम्हारे पास है, उसका पूर्ण रूप मे नही तो, उचित सीमा मे विसर्जन करो। एक सीमा से अधिक अर्थ-धन पर अपना अधिकार मत रखो, आवश्यक क्षेत्र, वास्तु रूप भूमि से अधिक भूमि पर अपना स्वामित्व मत रखो। इसी प्रकार पशु, सदा-दासी, आदि को भी अपने सीमाहीन अधिकार से मुक्त करो।

स्वामित्व विसर्जन की यह सात्विक प्रेरणा थी, जो समाज मे सपत्ति के आधार पर फैली अनर्गल विपमताओ का प्रतिकार करने मे सफल सिद्ध हुई। मनुष्य जव आवश्यकता मे अधिक सपत्ति व वस्तु के सग्रह पर से अपना अधिकार हटा लेता है, तो वह समाज और राष्ट्र के लिए उन्मुक्त हो जाती हैं, इम प्रकार अपने आप ही एक सहज समाजवादी अन्तर् प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

भोगोपभोग एव दिशा-परिमाण

मानव सुखाभिलाषी प्राणी है। वह अपने सुख के लिए नाना प्रकार के भोगोपभोगो की परिकल्पना के माया जाल मे उलझा रहता है। यह भोगवुद्धि ही अनर्थ की जड है। इसके लिए ही मानव अर्थ सग्रह के पीछे पागल की तरह दौड रहा है। जव तक भोगवुद्धि पर अकुश नही लगेगा, तवतक परिग्रह-वृद्धि से मुक्ति नही मिलेगी।

यह ठीक है कि मानव जीवन भोगोपभोग से सर्वथा मुक्त नही हो सकता। शरीर है, उमकी कुछ अपेक्षाएँ। उन्हें सर्वथा कैसे ठुकराया जा सकता है। अत महावीर आवश्यक भोगोपभोग से नही, अपितु अमर्यादित - भोगोपभोग से मानव की मुक्ति चाहते थे।

उन्होंने इसके लिए भोग को सर्वथा त्याग का व्रत न वताकर 'भोगोपभोगपरिमाण' का व्रत वताया है।

भोग परिग्रह का मूल है। ज्यो ही भोग यथोचित आवश्यकता की सीमा मे आवद्ध होता है, परिग्रह भी अपने आप सीमित हो जाता है। इस प्रकार महावीर द्वारा उपदिष्ट 'भोगोपभोगपरिमाण' व्रत मे से अपरिग्रह स्वत फलित हो जाता है।

महावीर ने अपरिग्रह के लिए दिशा परिमाण और देशावकासिक व्रत भी निश्चित किए थे। इन व्रतो का उद्देश्य भी आमपाम के देशो एव प्रदेशो पर होनेवाले अनुचित व्यापारिक, राजकीय एव अन्य शोपण प्रधान आक्रमणो से मानव समाज को मुक्त करना था। दूसरे देशो की सीमाओ, अपेक्षाओ एव स्थितियो का योग्य विवेक रखे विना भोग-वासना पूर्ति के चक्र मे इधर उधर अनियन्त्रित भाग-दौड करना महावीर के साधना क्षेत्र मे निपिद्ध था। आज के शोपणमुक्त समाज की स्थापना के विश्व मगल उद्घोप मे, इम प्रकार महावीर का चिन्तन-स्वर पहले से ही मुखरित होता आ रहा है।

परिग्रह का परिष्कार—दान

पहले के सचित परिग्रह की चिकित्सा उसका उचित वितरण है। प्राप्त साधनो का जनहित मे विनियोग दान है, जो भारत की विश्व मानव को एक वहुत वडी देन है, किन्तु स्वामित्व विसर्जन की उक्त दान-प्रक्रिया मे कुछ विकृतिया आ गई थी, अत महावीर ने चालू दान प्रणाली मे भी सशोधन प्रस्तुत किया। महावीर ने देखा लोग दान तो करते हैं, किन्तु दान के साथ उनके मन मे आसक्ति एव अहकार की भावनाएँ भी पनपती हैं। वे दान का प्रतिफल चाहते हैं, यश, कीर्ति, वडप्पन, स्वर्ग और देवताओ की प्रसन्नता।

आदमी दान तो देता था, पर वह याचक की विवशता या गरीवी के साथ प्रतिष्ठा और स्वर्ग का सौदा भी कर लेना चाहता था। इम प्रकार का दान समाज मे गरीवी को वढावा देता था दाताओ के अहकार को प्रोत्साहित करता था। महावीर ने इस गलत दान-भावना का परिष्कार किया। उन्होंने कहा—किमी को कुछ देना मात्र ही दान-धर्म नही हैं, अपितु निष्कामवुद्धि से[1], जनहित मे

१—मुहादाई मुहाजीवी, दोवि गच्छति सुग्गइ। —दशवैकालिक

मत्रिभाग करना, सहोदर वन्धु के भाव से उचित हिस्सा देना, दान-धर्म है। दाता विना किसी प्रकार के अहंकार व भौतिक प्रलोभन से ग्रस्त हुए, महज सहयोग की पवित्र वुद्धि से दान करे—वही दान वास्तव मे दान है।

इमीलिए भगवान् महावीर दान को सविभाग कहते थे। सविभाग—अर्थात् सम्यक्—उचित विभाजन-वँटवारा और इसके लिए भगवान् का गुरु गम्भीर घोप था कि—सविभागी को ही मोक्ष है, असविभागी को नही—'**असविभागी न हु तस्स मोक्खो।**'

वैचारिक अपरिग्रह

भगवान् महावीर ने परिग्रह के मूल मानव मन की वहुत गहराई मे देखे। उनकी दृष्टि मे मानव-मन की वैचारिक अहना एव आसक्ति की हर प्रतिवद्धता परिग्रह है। जातीय श्रेष्ठता, भापागत पवित्रता, स्त्री-पुरुपो का शरीराश्रित अच्छा वुरापन, परम्पराओ का दुराग्रह आदि समग्र वैचारिक आग्रहो, मान्यताओ एव प्रतिवद्धताओ को महावीर ने आन्तरिक परिग्रह वताया और उसमे मुक्त होने की प्रेरणा दी। महावीर ने स्पष्ट कहा कि विश्व की मानव जाति एक है। उसमे राष्ट्र, समाज एव जातिगत उच्चता-नीचता जैमी कोई चीज नही। कोई भी भापा शाश्वत एव पवित्र नही है। स्त्री और पुरुप आत्मदृष्टि मे एक है, कोई ऊँचा या नीचा नही है। इसी तरह के अन्य मव सामाजिक तथा माप्रदायिक आदि भेद विकल्पो को महावीर ने औपाधिक वताया, स्वाभाविक नही।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने मानव-चेतना को वैचारिक परिग्रह से भी मुक्त कर उसे विशुद्ध अपरिग्रह भाव पर प्रतिष्ठित किया।

भगवान् महावीर के अपरिग्रहवादी चिन्तन की पाँच फलश्रुतिया आज हमारे समक्ष हैं —

१—इच्छाओ का नियमन

२—समाजोपयोगी साधनो के स्वामित्व का विमर्जन।

३—शोपणमुक्त ममाज की स्थापना।

४—निष्कामवुद्धि से अपने साधनो का जनहित मे सविभाग दान।

५—आध्यात्मिक-शुद्धि।

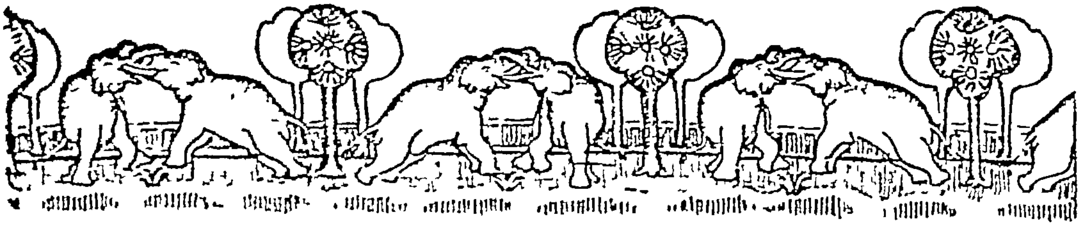

भारतीय इतिहास का लौह-पुरुष : चण्डप्रद्योत

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

भगवान् महावीर के समय उज्जैनी का राजा चण्डप्रद्योत था। उसका मूल नाम प्रद्योत था परन्तु अत्यन्त क्रूर स्वभाव होने से उसके नाम के आगे 'चण्ड' यह विशेषण लगा दिया था। उसके पास विराट् सेना थी अत उसका दूसरा नाम महासेन भी था[1]।

कथा सरित्सागर के अनुसार महासेन ने चण्डी की उपासना की थी जिससे उसको अजेय खड्ग और याम प्राप्त हुआ था। इस कारण वह 'महाचण्ड' के नाम से भी प्रसिद्ध था।[2]

जब उसने जन्म लिया था तब संसार मे दीपक के समान प्रकाश हो गया था। इसलिए उसका नाम प्रद्योत रखा गया।[3] बौद्ध ग्रन्थ उदेनवत्थु मे लिखा है कि वह सूर्य की किरणो के समान शक्तिशाली था।[4]

तिब्बती बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार जिस दिन प्रद्योत का जन्म हुआ उसी दिन बुद्ध का भी जन्म हुआ था। और जिस दिन प्रद्योत राजसिंहासन पर बैठा उसी दिन गौतम बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया।[5]

आवश्यक चूर्णि[6], आवश्यक हारिभद्रीयवृत्ति[7] और त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित्र[8] मे आता है कि चण्डप्रद्योत के पास (१) लोह जघ नामक लेखवाहक (१) अग्निभीरु नामक रथ (३) अनल गिरि नामक हस्ति (४) और शिवा नामक देवी, ये चार रत्न थे।

---

१ (क) उज्जैनी इन एशेंट इंडिया, पेज १३

(ख) भगवती सूत्र सटीक १३।६, पत्र ११३५ मे उद्रायण के साथ जो महासेन का नाम आया है वह चण्डप्रद्योत के लिए हैं।

(ग) उत्तराध्ययन नेमिचन्द्र वृत्ति मे भी महासेन का उल्लेख हुआ है देखें पत्र २५२-१

२ (क) राकहिल-लिखित लाइफ आव बुद्ध, पृष्ठ ३२

(ख) उज्जयिनी इन ऐंशेन्ट इंडिया, पृ० १३,—विमलचरण

३ लाइफ आव बुद्ध, पृ० १७, राकहिल

४ उज्जयिनी इन ऐंशेंट इण्डिया, पृ० १३

५ लाइफ ऑफ बुद्ध, पृ० ३२, की टिप्पणी १

६ आव० चूर्णि भाग २, पत्र १६०

७ आवश्यकहारि०, वृत्ति ६७३-१

८ त्रिशष्टि० १०।११।१७३

उदेनवत्थु मे प्रद्योत के एक द्रुतगामी रथ का वर्णन है। भद्रावती नाम की हथिनी कक्का (पाली मे काका) नामक दास, दो घोडिया-चेलक्ठी, और मजुकेशी एव नाला गिरी नामक हाथी ये पाचो मिलकर उस रथ को खीचते थे।[९]

धम्मपद के टीकाकार ने लिखा है कि प्रद्योत किसी भी सिद्धान्त को मानने वाला नही था[१०] उसका कर्म फल पर विश्वास नही था। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि वह स्त्री-लोलुपी और प्रचण्ड था।[११] पुराणकार ने उसके लिए नयवर्जित शब्द का प्रयोग किया है।[१२]

जैन कथा साहित्य मे स्पष्ट वर्णन है कि चण्डप्रद्योत ने स्वर्णगुलिका दासी के लिए सिन्धु सौवीर के राजा उदायन के साथ[१३] महारानी मृगावती के लिए वत्स नरेश शतानीक को साथ[१४] 'द्विमुख-'अवभासक' मुकुट के लिए पाचाल नरेश राजा दुम्मह के साथ।[१५] राजा श्रेणिक के बढते हुए प्रभाव को न सह सकने के कारण मगध राज श्रेणिक[१६] के साथ उसने युद्ध किया। ये सारे घटना प्रसग बहुत ही आकर्षक है। विस्तार भय से हमने उनको यहाँ उट्टंकित नही किया है, जिज्ञासुओ को मूल ग्रन्थ देखने चाहिए।

वत्स देश के राजा शतानीक और चण्डप्रद्योत का युद्ध हुआ वह जैन[१७] और बौद्ध[१८] कथानको मे प्राय समान रूप से मिलता है। प्रस्तुत युद्ध का कथा सरित्सागर आदि मे भी उल्लेख हुआ है। स्वप्नवासवदत्ता नाटक मे महाकवि भास ने उसी कथा-प्रसग को मूल आधार बताया है।

मज्झिम निकाय के अनुसार अजातशत्रु ने चण्ड-प्रद्योत के भय से भयभीत बनकर राजगृह मे किलाबन्दी की थी।[१९] बौद्ध साहित्य मे उसके दूसरे युद्धो का उल्लेख नही है।

जैन साहित्य मे चण्ड प्रद्योत के आठ रानियो का उल्लेख आया है। जो कौशाम्बी की रानी मृगावती के साथ भगवान महावीर के पास दीक्षा लेती है[२०] उसमे एक रानी का नाम शिवा देवी है,

---

९ (क) धम्म पद टीका उज्जयिनी-दर्शन पृ० १२
(ख) उज्जयिनी इन ऐंशेंट इण्डिया पृ० १५
१० (क) उज्जैनी इन एंशेंट इंडिया पृ० १३ विमलचरणला
(ख) मध्य भारत का इतिहास प्र० भाग पृ० १७५-१७६
११ त्रिषष्टि० १०।८।१५० व १६८
१२ कथासरित्सागर
१३ त्रिषष्टि १०।११-४४५-५९७
(ख) उत्तराध्ययन अ० १८ नेमिचन्द्रकृत वृत्ति
(ग) भरतेश्वर-बाहुबली वृत्ति भाग १, पत्र १७७-१
१४ त्रिषष्टि—१०।११।१८४-२६५
१५ त्रिषष्टि - १०।११।१७२-२९३
१६ उत्तराध्ययन सूत्र अ० ९ नेमिचन्द्रकृत वृत्ति
१७ त्रिषष्टि—१०।११।१८४-२६५
१८ धम्मपद्ध अट्ठकथा, २।१
१९ मज्झिम निकाय ३।१।८, गोपक मोग्गलान सुत्त
२० आवश्यक चूर्णि

जो चेटक की पुत्री थी ।[21] एक का नाम अगारवती था[22] जो सुसमारपुर[23] के राजा धधुमार की पुत्री थी । इस अगारवती को प्राप्त करने के लिए प्रद्योत ने सुसमारपुर पर घेरा डाला था । वह अगारवती पक्की श्राविका थी ।[24] कथा सरित्सागर मे अगारवती को अगारक-नामक दैत्य की पुत्री कहा है [25] उसकी एक रानी का नाम मदन मजरी था, जो दुम्मह प्रत्येक बुद्ध की लडकी थी ।[26]

आवश्य निर्युक्ति दीपिका मे प्रद्योत के गोपालक और पालक इन दो पुत्रो का उल्लेख हैं ।[27] स्वप्नवानवदत्ता मे भी इन दो पुत्रो के साथ एक पुत्री का भी उल्लेख हुआ है उसका नाम वासुदत्ता दिया है,[28] आवश्यक चूर्णि मे वासवदत्ता नाम आया है । उसे प्रद्योत की पत्नी अगारवती की पुत्री कहा है ।[29] बौद्ध साहित्य मे गोपालक की माँ को वणिक पुत्री बताया है उसके भव्य रूप पर मुग्ध होकर प्रद्योत ने उसके साथ विवाह किया था ।[30] हर्ष चरित्र मे उसके एक पुत्र का नाम कुमारसेन दिया है ।[31]

कुछ ग्रन्थो मे खडकम्म को प्रद्योत का एक मत्री बताया है[32] कुछ ग्रन्थो मे मत्री का नाम भरत दिया है ।[33]

जैन साहित्य के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि चण्ड-प्रद्योत प्रारभ मे जैन धर्मावलम्वी नही था । राजा उदायन उसे बन्दी बनाकर ले जाते हैं । मार्ग मे पर्युपणपर्व आ जाता है । राजा उदायन के उस दिन पौपधोपवास था, अत. उनका भोजन बनाने वाला रसोइआ चण्टप्रद्योत से पूछता है कि आप क्या भोजन करेंगे ? तव चण्डप्रद्योत को बहुत आश्चर्य हुआ । रसोइए ने पर्युपण महापर्व की वात कही और कहा इसी कारण महाराजा उदायन के पौपधोपवास है । तव चण्डप्रद्योत ने कहा कि मेरे माता-पिता भी श्रावक थे, इसलिए मेरे भी उपवास है ।[34] जब उदायन ने उसे मुक्त किया तब वह

---

२१ आवश्यक चूर्णि, उत्तरार्द्ध पत्र १६४

२२ आवश्यक चूर्णि भाग १, पत्र ९१

२३ मुनि श्री इन्द्रविजयजी का मन्तव्य है कि सुसमारपुर का वर्तमान नाम 'चुनार' है, जो जिला मिरजापुर मे है ।

२४ आवश्यक चूर्णि भाग २, पत्र १९९

२५ मध्यभारत का इतिहास प्रथम खण्ड पृ० १७५ ले० 'हरिहर निवास द्विवेदी'

२६ उत्तराध्ययन ९ अ० नेमिचन्द्र वृत्ति १३५-२-१३६२

२७. आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, भाग २, पत्र ११०-१ गा १२८२

२८ स्वप्नवासवदत्ता महाकाव्य—भास

२९ आवश्यक चूर्णि उत्तरार्द्ध पत्र १६१

३० (क) अगुत्तर निकाय अठ्कथा १।१।१०

(ख) उज्जयिनी इन ऐंशेट इण्डिया पृ० १४

(ग) मध्यभारत का इतिहास भाग १-पृ १७५ द्विवेदी लिखित

३१ तीर्थंकर महावीर भाग २, पृ० ५८७

३२ लाइफ इन ऐशेंट इण्डिया ३९४

३३. उज्जयिनी-दर्शन पृ० १२ मध्यभारत सरकार

३४ (क) तन्ममयुपवामोऽद्य पितरौ श्रावकौ हि मे ।

—उत्तरा० भावविजय की टीका अ० १ श्लोक० १८२ पत्र ३८६-२

जैन धर्मावलम्बी बना। महावीर के समवसरण में शतानीक राजा की पत्नी मृगावती तथा चण्ड-प्रद्योत की शिवा आदि आठ पत्नियाँ दीक्षित हुई, उस समय चण्ड-प्रद्योत भी वहाँ पर उपस्थित था।[३५]

भगवान महावीर से उसका प्रथम साक्षात्कार वही हुआ था और वही पर उसने विधिवत् जैन धर्म स्वीकार किया था।[३६]

अगुत्तर निकाय अट्ठकथा के अनुसार चण्डप्रद्योत को धर्म का उपदेश भिक्षु महाकात्यायन के द्वारा मिला था जो साधु बनने के पूर्व चण्डप्रद्योत के राजपुरोहित थे। चण्ड-प्रद्योत के आग्रह से वे तथागत बुद्ध को बुलाने गये थे। किन्तु बुद्ध के उपदेश को सुनकर साधु बन गये। बुद्ध उज्जैनी नही आये किन्तु उन्होने महाकात्यायन भिक्षु को उज्जैनी भेजा। चण्डप्रद्योत उसके उपदेश से बुद्ध का अनुयायी बना।[३७] किन्तु उसका बुद्ध के साथ कभी साक्षात्कार हुआ हो ऐसा घटना प्रसग बौद्ध साहित्य मे नही है।

यह स्पष्ट है कि मूल आगम और त्रिपिटक मे चण्ड-प्रद्योत के किसी विशेप धर्मानुयायी होने का उल्लेख नही है। बाद के कथा-साहित्य मे ही उसका सारा वर्णन मिलता है। वह भगवान महावीर या तथागत बुद्ध इन दोनो मे से किसका अनुयायी था? यह भी सभव है कि वह प्रारभ मे एक धर्म का अनुयायी रहा हो, बाद मे दूसरे धर्म का अनुयायी बना हो। यह भी सभव है कि उसका जैन और बौद्ध दोनो ही परम्पराओ के साथ सम्बन्ध रहा हो, जिससे बाद के कथाकारो ने अपना-अपना अनुयायी सिद्ध करने का प्रयास किया हो।

हमारी दृष्टि से उसकी आठो रानियाँ जैन धर्म मे दीक्षित हुई, और वे विवाह के पूर्व भी जैन थी अत चण्ड-प्रद्योत का बाद मे जैन होना अधिक तर्क सगत लगता है।

(ख) श्रावको पितरौमम"

त्रिषष्टि० १०।११।५९७

३५ भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति द्वितीय विभाग प० ३२३

३६ ततश्चण्डप्रद्योत धर्ममगीकृत्य स्वपुरम् ययौ-भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति २।३२३

३७ (क) अगुत्तर निकाय अट्ठकथा १।१।१०

(ख) थेरगाथा—अट्ठकथा भाग १ पृ० ४८३

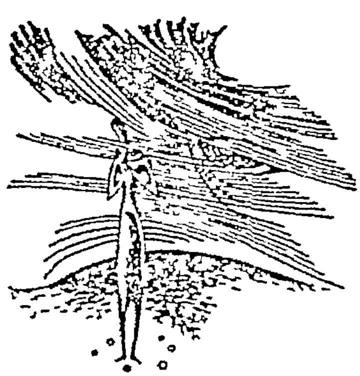

वर्तमान युग में भगवान महावीर के विचारों की सार्थकता

डॉ० नरेन्द्र भानावत एम ए पी-एच. डी.

वर्द्धमान भगवान महावीर विराट व्यक्तित्व के धनी थे। वे क्रांति के रूप मे उत्पन्न हुए थे। उनमे शक्ति, शील व सौन्दर्य का अद्भुत प्रकाश था। उनकी दृष्टि वडी पैनी थी। यद्यपि वे राजकुमार थे। राजसी समस्त ऐश्वर्य उनके चरणो मे लोटता था तथापि पीडित मानवता और दलित शोषित जन-जीवन से उन्हे सहानुभूति थी। समाज मे व्याप्त अर्थ-जन्य विषमता और मन मे उद्भूत काम जन्य वासनाओ के दुर्दमनीय नाग को अहिंसा, सयम और तप के गारूडी सस्पर्श से कील कर वे समता, सद्भाव और स्नेह की धारा अजस्र रूप से प्रवाहित करना चाहते थे। इस महान् उत्तरदायित्व को, जीवन के इस लोक-सग्रही लक्ष्य को उन्होने पूर्ण निष्ठा और सजगता के साथ सम्पादित किया, इसमे कोई सन्देह नही।

महावीर का जीवन-दर्शन और उनका तत्त्वचिंतन इतना अधिक वैज्ञानिक और सार्वकालिक लगता है कि वह आज की हमारी जटिल समस्याओ के समाधान के लिए भी पर्याप्त है। आज की प्रमुख समस्या है सामाजिक अर्थजन्य विषमता को दूर करने को। इसके लिए मार्क्स ने वर्ग-सघर्ष को हल के रूप मे रखा। शोषक और शोषित के पारस्परिक अनवरत सघर्ष को अनिवार्य माना और जीवन की अन्तस् भाव-चेतना को नकारकर केवल भौतिक जडता को ही सृष्टि का आधार माना। इससे जो दुष्परिणाम हुआ वह हमारे सामने है। हमे गति तो मिल गई पर दिशा नही, शक्ति तो मिल गई पर विवेक नही, सामाजिक वैषम्य तो सतही रूप से कम होता हुआ नजर आया पर व्यक्ति-व्यक्ति के मन की दूरी वढती गई। वैज्ञानिक आविष्कारो ने राष्ट्रो की दूरी तो कम की पर मानसिक दूरी और बढी। व्यक्ति के जीवन मे धार्मिकता-रहित नैतिकता और आचरण रहित विचारशीलता पनपने लगी। वर्तमान युग का यही सवसे वडा अन्तर्विरोध और सास्कृतिक सकट है। भगवान महावीर की विचारधारा को ठीक तरह से हृदयगम करने पर समाजवादी लक्ष्य की प्राप्ति भी सभाव्य है और वढते हुए इस सास्कृतिक सकट से मुक्ति भी।

महावीर ने अपने राजसी जीवन मे और उसके चारो ओर जो अनन्त वैभव की रगीनी थी, उससे यह अनुभव किया कि आवश्यकता से अधिक सग्रह करना पाप है, सामाजिक अपराध है, आत्म-छलना है। आनन्द का रास्ता है अपनी इच्छाओ को कम करो, आवश्यकता से अधिक सग्रह न करो। क्योकि हमारे पास जो अनावश्यक सग्रह है, उसकी उपयोगिता कही और है। कही ऐसा प्राणी वर्ग है जो उस सामग्री से वचित है, जो उसके अभाव मे सतप्त है, आकुल है। अत हमे उस अनावश्यक सामग्री को सग्रहीत कर रखना उचित नही। यह अपने प्रति ही नही, समाज के प्रति छलना है, इस विचार को अपरिग्रह दर्शन कहा गया। इसका मूल मन्तव्य है—किसी के प्रति ममत्व-भाव न रखना। वस्तु के प्रति भी नही, व्यक्ति के प्रति भी नही, स्वय अपने प्रति भी नही। वस्तु के प्रति ममता न होने पर हम अनावश्यक सामग्री का तो सचय करेंगे ही नही, आवश्यक सामग्री को भी दूसरो के लिए विसर्जित करेंगे।

आज के सकट काल मे जो सग्रह वृत्ति (Hoarding) और तद्जनित व्यावसायिक लाभ वृत्ति पनपी है, उससे मुक्त हम तब तक नही हो सकते जब तक कि अपरिग्रह दर्शन के इस पहलू को आत्मसात् न कर लिया जाय।

व्यक्ति के प्रति भी ममता न हो। इसका दार्शनिक पहलू इतना ही है कि व्यक्ति 'अपने 'स्वजनो' तक ही न सोचे। परिवार के सदस्यो के हितो की ही रक्षा न करे वरन् उसका दृष्टिकोण समस्त मानवता के हित की ओर अग्रसर हो। आज प्रशासन और अन्य क्षेत्रो मे जो अनैतिकता व्यवहृत है उसके मूल मे 'अपनो के प्रति ममता का भाव ही विशेष रूप से प्रेरक कारण है। इसका अर्थ यह नही कि व्यक्ति पारिवारिक दायित्व से मुक्त हो जाय। इसका ध्वनित अर्थ केवल इतना ही है कि व्यक्ति 'स्व' के दायरे से निकलकर 'पर' तक पहुचे। 'स्वार्थ के सकीर्ण क्षेत्र को लाघ कर 'परार्थ के विस्तृत क्षेत्र को अपनाये। सन्तो के जीवन की यही साधना है। महापुरुष इसी जीवनपद्धति पर आगे बढते हैं। क्या महावीर, क्या बुद्ध सभी इन व्यामोह से परे हटकर, आत्मजयी बने। जो जिस अनुपात मे इस अनासक्त भाव को आत्मसात् कर सकता है वह उसी अनुपात मे लोक-सम्मान का अधिकारी होता है। आज के तथाकथित नेताओ के व्यक्तित्व का विश्लेषण इस कसौटी पर किया जा सकता है। नेताओ के सम्बन्ध मे आज जो दृष्टि बदली है और उस शब्द के अर्थ का जो अपकर्ष हुआ है, सकोच हुआ है, उसके पीछे यही लोक-दृष्टि रही है।

अपने प्रति भी ममता न हो यह अपरिग्रह दर्शन का चरम लक्ष्य है। श्रमण सस्कृति मे इसलिए शारीरिक कष्ट-सहन को एक ओर अधिक महत्त्व दिया है तो दूसरी ओर इस पार्थिव देह-विसर्जन के पूर्व 'सलेखणा व्रत' का विधान किया गया है। वैदिक सस्कृति मे जो समाधि अवस्था, या सतमत मे जो सहजावस्था है, वह इसी कोटि की है। इस अवस्था मे व्यक्ति 'स्व' से आगे बढकर इतना अधिक सूक्ष्म हो जाता है कि वह कुछ भी नहीं रहता। यही योग साधना की चरम परिणति है।

सक्षेप मे महावीर की इस विचारधारा का अर्थ यही है कि हम अपने जीवन को इतना सयमित और तपोमय बनाये कि दूसरो का लेशमात्र भी शोषण न हो, साथ ही साथ हम अपने मे इतनी शक्ति, पुरुषार्थ और क्षमता अर्जित करलें कि दूसरा हमारा शोषण न कर सके।

प्रश्न है ऐसे जीवन को कैसे जीया जाय? जीवन मे शील और शक्ति का यह सगम कैसे हो? इसके लिए महावीर ने 'जीवन-व्रत-साधना' का प्रारूप प्रस्तुत किया। साधक जीवन को दो वर्गो मे बाटते हुए उन्होंने बारह व्रत बतलाये। प्रथम वर्ग जो पूर्णतया इन व्रतो की साधना करता है, वह श्रमण है, मुनि है सत है, और दूसरा वर्ग जो अशतः इन व्रतो को अपनाता है, वह श्रावक है, गृहस्थ है, ससारी है।

इन बारह व्रतो की तीन श्रेणियाँ हैं। पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। अणुव्रत मे श्रावक स्थूल हिसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का त्याग करता है। व्यक्ति तथा समाज के जीवनयापन के लिए वह आवश्यक सूक्ष्म हिसा का त्याग नही करता (जब कि श्रमण इसका भी त्याग करता है) पर उसे भी यथाशक्य सीमित करने का प्रयत्न करता है। इन व्रतो मे समाजवादी समाज-रचना के सभी आवश्यक तत्व विद्यमान हैं।

प्रथम अणुव्रत मे निरपराध प्राणी को मारना निषिद्ध है किन्तु अपराधी को दण्ड देने की छूट है। दूसरे अणुव्रत मे धन, सम्पत्ति, परिवार आदि के विषय मे दूसरे को धोखा देने के लिए असत्य बोलना निषिद्ध है। तीसरे व्रत मे व्यवहार-शुद्धि पर बल दिया गया है। व्यापार करते समय अच्छी वस्तु दिखाकर घटिया दे देना, दूध मे पानी आदि मिला देना, झूठा नाप, तौल तथा राज-व्यवस्था के विरुद्ध आच-

रण करना निषिद्ध है। इस व्रत मे चोरी करना तो वर्जित है ही किन्तु चोर को किसी प्रकार की सहायता देना या चुराई हुई वस्तु को खरीदना भी वर्जित है। चौथा व्रत स्वदार-सन्तोष है जो एक ओर काम-भावना पर नियमन है तो दूसरी ओर पारिवारिक सगठन का अनिवार्य तत्व। पाचवे अणुव्रत मे श्रावक स्वेच्छापूर्वक धन सम्पत्ति, नौकर-चाकर आदि की मर्यादा करता है।

तीन गुणव्रतो मे प्रवृत्ति के क्षेत्र को सीमित करने पर बल दिया गया है। शोषण की हिंसात्मक प्रवृत्तियो के क्षेत्र को मर्यादित एव उत्तरोतर सकुचित करते जाना ही इन गुणव्रतो का उद्देश्य है। छठा व्रत इसी का विधान करता है। सातवें व्रत मे भोग्य वस्तुओ के उपभोग को सीमित करने का आदेश है। आठवें मे अनर्थदण्ड अर्थात् निरर्थक प्रवृत्तियो को रोकने का विधान है।

चार शिक्षाव्रतो मे आत्मा के परिष्कार के लिए कुछ अनुष्ठानो का विधान है। नवाँ सामायिक व्रत समता की आराधना पर, दशवाँ सयम पर, ग्यारहवा तपस्या पर और बारहवाँ सुपात्रदान पर बल देता है।

इन बारह व्रतो की साधना के अलावा श्रावक के लिए पन्द्रह कर्मादान भी वर्जित हैं अर्थात् उसे ऐसे व्यापार नही करना चाहिए जिनमे हिंसा की मात्रा अधिक हो या जो समाज-विरोधी तत्त्वो का पोषण करते हो। उदाहरणत चोरो, डाकुओ या वेश्याओ को नियुक्त कर उन्हे अपनी आय का साधन नही बनाना चाहिए।

इस व्रत-विधान को देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महावीर ने एक नवीन और आदर्श समाज-रचना का मार्ग प्रस्तुत किया, जिसका आधार तो आध्यात्मिक जीवन जीना है पर जो मार्क्स के समाजवादी लक्ष्य से भिन्न नही है।

ईश्वर के सम्बन्ध मे जो जैन विचारधारा है, वह भी आज की जनतन्त्रात्मक और आत्म स्वातन्त्र्य की विचारधारा के अनुकूल है। महावीर के समय का समाज बहुदेवोपासना और व्यर्थ के कर्मकाड से बन्धा हुआ था। उसके जीवन और भाग्य को नियन्त्रित करती थी कोई परोक्ष अलौकिक सत्ता। महावीर ने ईश्वर के सचालक रूप का तीव्रता के साथ खण्डन कर इस बात पर जोर दिया कि व्यक्ति स्वय अपने भाग्य का निर्माता है। उसके जीवन को नियन्त्रित करते हैं उसके द्वारा किये गये कार्य। इसे उन्होंने 'कर्म' कह कर पुकारा। वह स्वय कृत कर्मों के द्वारा ही अच्छे या बुरे फल भोगता है। इस विचार ने नैराश्यपूर्ण असहाय जीवन मे आशा, आस्था और पुरुषार्थ का आलोक बिखेरा और व्यक्ति स्वय अपने पैरो पर खडा होकर कर्मण्य बना।

ईश्वर के सम्बन्ध मे जो दूसरी मौलिक मान्यता जैन दर्शन की है, वह भी कम महत्व की नहीं। ईश्वर एक नही, अनेक है। प्रत्येक साधक अपनी आत्मा को जीतकर, चरम साधना के द्वारा ईश्वरत्व की अवस्था को प्राप्त कर सकता है। मानव जीवन की सर्वोच्च उत्थान रेखा ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है। इस विचारधारा ने समाज मे व्याप्त पाखण्ड, अन्ध श्रद्धा और कर्मकाण्ड को दूर कर स्वस्थ जीवन-साधना या आत्म-साधना का मार्ग प्रशस्त किया। आज की शब्दावली मे कहा जा सकता है कि ईश्वर के एकाधिकार को समाप्त कर महावीर की विचारधारा ने उसे जनतत्रीय पद्धति के अनुरूप विकेन्द्रित कर सबके लिए प्राप्य बना दिया—शर्त रही जीवन की सरलता, शुद्धता और मन की दृढता। जिस प्रकार राजनैतिक अधिकारो की प्राप्ति आज प्रत्येक नागरिक के लिये सुगम है, उसी प्रकार ये आध्यात्मिक अधिकार भी उसे सहज प्राप्त हो गये। शूद्रो और पतित समझी जाने वाली नारी जाति का समुद्धार करके भी महावीर ने समाज-देह को पुष्ट किया। आध्यात्मिक उत्थान की चरम सीमा को स्पर्श

करने का मार्ग भी उन्होने सबके लिए खोल दिया—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, चाहे वह शूद्र हो, चाहे और कोई।

महावीर ने जनतन्त्र से भी आगे बढकर प्राणतन्त्र की विचारधारा दी। जनतन्त्र मे मानव न्याय को ही महत्व दिया गया है। कल्याणकारी राज्य का विस्तार मानव के लिए है, समस्त प्राणियो के लिए नही। मानव-हित को ध्यान मे रखकर जनतन्त्र मे अन्य प्राणियो के वध की छूट है। पर महावीर के शासन मे मानव और अन्य प्राणी मे कोई अन्तर नही। सबकी आत्मा समान है। इसीलिए महावीर की अहिंसा अधिक सूक्ष्म और विस्तृत है, महावीर की करुणा अधिक तरल और व्यापक है। वह प्राणी-मात्र के हित की सवाहिका है।

मेरा विश्वास है ज्यो-ज्यो विज्ञान प्रगति करता जाएगा, त्यो-त्यो महावीर की विचारधारा अधिकाधिक युगानुकूल बनती जायगी। उसमे शाश्वत सत्य निहित है जो अचल है। यह अचल सत्य विज्ञान के साथ आगे बढकर ही सचल बन पायगा, केवल रूढियो की धूल ही छिटक कर पीछे रह जायेगी, नष्ट हो जायगी।

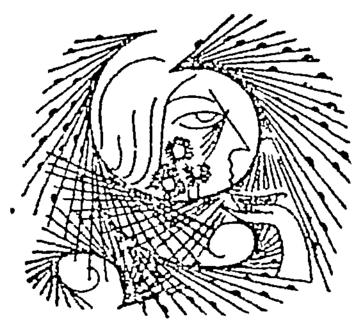

हमारी आचार्य-परम्परा

—मुनि श्री प्रतापमल जी महाराज

वीर निर्वाण के पश्चात् क्रमश सुधर्मा प्रभृति देवर्द्धि-क्षमा श्रमण तक २७ ज्योतिर्धर आचार्य हुए हैं। जिनके द्वारा शासन की अपूर्व प्रभावना हुई। वीर सवत् ६८० मे सर्व प्रथम देवर्द्धिगणीक्षमा-श्रमण ने भव्य-हितार्थ वीर-वाणी को लिपिवद्ध करके एक महत्त्वपूर्ण सेवा कार्य पूरा किया। तत्पश्चात् गच्छ-परम्पराओ का विस्तार होने लगा। विक्रम स० १५३१ मे 'लोकागच्छ' की निर्मल कीर्ति देश के कौने-कौने मे प्रसारित हुई। तत्सम्बन्धित आठ पाटानुपाट परम्पराओ का सक्षिप्त नामोल्लेख यहाँ किया गया है।

भाणजी ऋषि
भद्दा ऋषि
नूना ऋषि
भीमा ऋषि
जगमाल ऋषि
सखा ऋषि
रूपजी ऋषि
जीवाजी ऋषि

तत्पचात् अनेक साधक वृन्द ने क्रियोद्धार किया। जिनमे श्री जीवराजजी म० एव हरजी मुनि विशेष उल्लेखनीय है। उनके विषय मे कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्रसिद्ध हैं, जो नीचे अकित किया गया है।

मरु प्रदेश (मारवाड) के पीपाड नगर मे वि० स० १६६६ मे यति तेजपाल जी एव कु वरपाल जी के ६ शिष्यो ने क्रियोद्धार किया। जिनके नाम—अमीपाल जी, महिपाल जी, हीरा जी, जीवराज जी, गिरधारीलाल जी एव हरजी हुए हैं। उनमे से जीवराज जी, गिरधारीलाल जी और हरजी स्वामी के शिष्य परम्परा—आगे वढी।

वि० स० १६६६ मे श्री जीवराज जी म० आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। उनके सात शिष्य हुए जो सभी आचार्य पद से अलकृत थे। जिनके नाम इस प्रकार हैं—

पूज्य श्री पूनम चद जी म०
पूज्य श्री नानक राम जी म०
पूज्य श्री शीतलदास जी म०
,, ,, स्वामीदास जी म०

पूज्य श्री कुन्दन मल जी म०
,, ,, नाथू राम जी म०
,, ,, दौलत राम जी म०

कोटा सम्प्रदाय का उद्गम

कोटा सम्प्रदाय आगे चलकर कई शाखाओ मे विभक्त हुई। जिनमे से एक शाखा के अग्रगण्य मुनि एव आचार्यों की शुभ नामावली निम्न है।

(१) श्री हरजी ऋषि जी म० एव जीवराज जी म०
(२) पूज्य श्री गुलाबचन्द जी म० (गोदाजी म०)
,, ,, फरसुराम जी म०
,, ,, लोकपाल जी म०
,, ,, मयाराम जी म० (महाराम जी म०)
,, ,, दौलतराम जी म०
,, ,, लालचद जी म०
,, ,, हुक्मीचद जी म०
,, ,, शिवलाल जी म०
,, ,, उदयसागर जी म०
,, ,, चौथमल जी म०
,, ,, श्रीलाल जी म०
,, ,, श्री मन्नालाल जी म०
,, ,, श्री खूबचद जी म०
,, ,, श्री सहस्रमल जी म०

पूज्य श्री दौलतराम जी म० से पूर्व के पाचो आचार्य के विषय मे प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नही हैं। परन्तु आ० श्री दौलतराम जी म० सा० से लेकर पू० श्री सहस्रमल जी म० सा० तक के आचार्यों की जो हमे ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है। उसे क्रमश दी जायगी।

पूज्य श्री दौलतराम जी म० सा०

कोटा राज्य के अन्तर्गत 'काला पीपल' गाँव व बगेरवाल जाति मे आपका जन्म हुआ था। शैशव काल धार्मिक संस्कारो मे बीता। वि० स० १८१४ फाल्गुन शुक्ला ५ की मगल वेला मे क्रिया निष्ठ श्रद्धेय आचार्य श्री मयाराम जी म० सा० के सान्निध्य मे आपकी दीक्षा सपन्न हुई। प्रखर बुद्धि के कारण नव दीक्षित मुनि ने स्वल्प समय मे ही रत्न त्रय की आशातीत अभिवृद्धि की। ज्ञान और क्रिया के सुन्दर सगम से जीवन उत्तरोत्तर उन्नतिशील होता रहा। फलस्वरूप सयमी-गुणो से प्रभावित होकर चतुर्विध सघ ने आपको आचार्यपद से शुभालकृत किया।

मुख्य रूप से कोटा एव पार्श्ववर्ती क्षेत्र आप की विहार स्थली रही है। कारण कि—इन क्षेत्रो मे धर्म-प्रचार की पूर्णत कमी थी। भारी कठिनता को सहन करके आपने उस कमी को दूर किया। ग्राम छोटे मे भी अत्यधिक परिषह सहन करने पडे। तथापि आप अपने प्रचार कार्य मे सबल रहे। उच्चतम आचार-विचार के प्रभाव से काफी सफलता मिली। अत सरावगी, माहेश्वरी, अग्रवाल, पोर-

वाल, बगेरवाल एव ओसवाल इस प्रकार लगभग तीन सौ घर वालो ने आपके मुखारविन्द से गुरु आम्नाएँ स्वीकार की। इसी प्रकार बून्दी, बारां आदि क्षेत्र भी अत्यधिक प्रभावित हुए। फलस्वरूप आचार्य देव का व्यक्तित्व और चमक उठा। बस मुख्य विहारस्थली होने के कारण कोटा सम्प्रदाय के नाम से प्रख्यात हुए।

एकदा शिष्य मण्डली सहित आचार्य प्रवर का दिल्ली मे शुभागमन हुआ। उस वक्त वहाँ आगमज्ञमर्म सुश्रावक दलपत सिंह जी ने केवल दशवैकालिक सूत्र के माध्यम से पूज्य प्रवर के समक्ष २२ आगमो का निष्कर्ष प्रस्तुत किया। जिस पर पूज्य प्रवर अत्यधिक प्रभावित हुए। लाभ यह हुआ कि पूज्य श्री का आगमिक अनुभव अधिक परिपुष्ट बना।

रत्नत्रय की प्रख्याति से प्रभावित होकर कठियावाड प्रान्त मे विचरने वाले महा मनस्वी मुनि श्री अजरामल जी म० ने दर्शन एव अध्ययनार्थ आपको याद किया। तदनुसार मार्गवर्ति क्षेत्रो मे शासन की प्रभावना करते हुये आप लिमडी (गुजरात) पधारे।

शुभागमन की सूचना पाकर समकित सार के लेखक विद्वदवर्य मुनि श्री जेठमल जी म० सा० का भी लिमडी पदार्पण हुआ। मुनि त्रय की त्रिवेणी के पावन सगम से लीमडी तीर्थ स्थली बन चुकी थी। जनता मे हर्षोल्लास भक्ति की गगा फूट पड़ी। पारस्परिक अनुभूतियो का मुनि मण्डल मे काफी आदान-प्रदान हुआ। इस प्रकार श्लाघनीय शासन की प्रभावना करते हुये आचार्य देव सात चातुर्मास उधर बिताकर पुन राजस्थान मे पधार गये।

जयपुर राज्य के अन्तर्गत 'रावजी का उणिहारा' ग्राम मे आप धर्मोपदेश द्वारा जनता को लाभान्वित कर रहे थे।

उन्ही दिनो दिल्ली निवासी सुश्रावक दलपतसिंह जी को रात्रि मे स्वप्न के माध्यम से ऐसी ध्वनि सुनाई दी कि—'अब शीघ्र ही सूर्य ओझल होने जा रहा है।' निद्रा भग हुई। तत्क्षण उन्होंने ज्योतिष-ज्ञान मे देखा तो पता लगा कि—पूज्य प्रवर का आयुष केवल सात दिन का शेष है। वस्तुत. शीघ्र सेवा मे पहुँचकर उन्हे सचेत करना मेरा कर्तव्य है। ऐसा विचार कर अविलम्ब उस गाँव पहुँचे। जहाँ आचार्यदेव विराज रहे थे।

शिष्यो ने आचार्य देव की सेवा मे निवेदन किया कि—दिल्ली के श्रावक चले आ रहे हैं।

पूज्य प्रवर ने सोचा—एकाएक श्रावक जी का यहाँ आना, सचमुच ही महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। मनोविज्ञान मे पूज्य प्रवर ने देखा तो मालूम हुआ कि—इस पार्थिव देह का आयुष केवल सात दिन का शेष है। 'शुभस्य शीघ्रम्' के अनुसार उस समय आचार्य देव सथारा स्वीकार कर लेते हैं।

श्रावक दलपतसिंह जी उपस्थित हुए। "मत्थएण वदामि" के पश्चात् कुछ शब्दोच्चारण करने लगे कि—पूज्य प्रवर ने फरमा दिया - पुण्यला ! आप मुझे सावधान करने के लिए यहाँ आये हो। वह कार्य अर्थात् जीवन पर्यन्त के लिए मैंने सथारा कर लिया है।

इस प्रकार काफी वर्षो तक शुद्ध सयमी जीवन के माध्यम से चतुर्विध सघ की खूब अभिवृद्धि करने के पश्चात् समाधिपूर्वक स १९३३ पौष शुक्ला ६ रविवार के दिन आप स्वर्गस्थ हुए।

पूज्य श्री लालचद जी म०

आप की जन्म स्थली बून्दी राज्य मे स्थित 'करवर' गाँव एव जाति के आप सोनी थे। चित्र कला कोरने मे आप निष्णात थे। और चित्र कला ही आप के वैराग्य का कारण बनी।

एकदा अन्तरडा ग्राम के ठाकुर सा० ने रामायण सम्बन्धित भित्तियो पर चित्र बनाने के लिए आपको बुलाया । तदनुसार रग-रोगन लगाकर चित्र अधिकाधिक चमकीले बनाये गये । पूरी तौर से रोगन सूख नही पाया था और बिना कपडा ढके वे घर चले गये । वापिस आ करके देखा तो बहुत सी मक्खियाँ रोगन के साथ चिपक कर प्राणो की आहुतियाँ दे चुकी थी ।

बस, मन मे भारी ग्लानि उत्पन्न हुई । अन्तर्हृदय मे वैराग्य की गगा फूट पडी । विचारो की धारा मे डूब गये—हाय ! मेरी थोडी असावधानी के कारण भारी अकाज हो गया । अब मुझे दया ही पालना है । खोज करते हुए आ० श्री दौलतराम जी म० की सेवा मे आये और उत्तमोत्तम भावो से जैन दीक्षा स्वीकार कर ली ।

गुरु भगवत की पर्युपासना करते हुए आगमिक ठोस ज्ञान का सपादन किया । सबल एव सफल शासक मान करके सघ ने आप को आचार्य पद पर आसीन किया । आपकी उपस्थिति मे कोटा सम्प्रदाय मे सत्तावीस पडित एव कुल साधु-साध्वीयो की सख्या २७५ तक पहुँच चुकी थी इस प्रकार कोटा सम्प्रदाय के विस्तार मे आप का श्लाघनीय योगदान रहा ।

आचार्य श्री हुकमीचन्द जी म० सा०

आप का जन्म जयपुर राज्य के अन्तर्गत 'टोडा' ग्राम मे ओसवाल गोत्र मे हुआ था । पूर्व धार्मिक सस्कारो के प्रभाव से व यदा-कदा मुनि महासती के वैराग्योत्पादक उपदेशो के प्रभाव से आपका जीवन आत्म-चिंतन मे लीन रहा करता था ।

एकदा प० श्री लाल चद जी म० सा० का बून्दी मे शुभागमन हुआ और मुमुक्षु हुकमी चन्द जी का भी उन्ही दिनो घरेलू कार्य वशात् बून्दी मे आना हुआ था । वैराग्य वाहिनी वाणी का पान करके सवत् १८७६ मार्ग शीर्षमास के शुक्ल पक्ष मे विशाल जन समूह के समक्ष आ० श्री लालचन्द जी म० के पवित्र चरणो मे दीक्षित हुए और बलिष्ठ योद्धा की भाँति नव दीक्षित मुनि रत्न-त्रय की साधना मे जुड गये । वस्तुत उच्चतम आचार-विचार व्यवहार के प्रभाव से सयमी जीवन सबल बना । व्याख्यान शैली शब्दाडम्बर से रहित सीधी-सादी सरल एव वैराग्य से ओत-प्रोत भव्यो के मानस-स्थली को सीधी छूने वाली थी । आपके हस्ताक्षर अति सुन्दर आते थे । आज भी आप द्वारा लिखित शास्त्र निम्बाहेडा के पुस्तकालय की शोभा मे अभिवृद्धि कर रहे हैं ।

'ज्ञानाय-दानाय-रक्षणाय' तदनुसार स्व-पर कल्याण की भावना को लेकर आपने मालव धरती को पावन किया । शासन प्रभावना मे आशातीत अभिवृद्धि हुई । साधिक सुप्तशक्तियो मे नई चेतना अगडाई लेने लगी, नये वातावरण का सर्जन हुआ । जहाँ-तहाँ दया धर्म का नारा गूँजउठा और बिखरी हुई सघ-शक्ति मे पुन एकता की प्रतिष्ठा हुई ।

पूज्य प्रवर के शुभागमन मे श्री सघो मे काफी धर्मोन्नति हुई । जन-जन का अन्तर्मानस पूज्य प्रवर के प्रति सश्रद्धा नत मस्तक हो उठा । चूँकि—पूज्य श्री का तपोमय जीवन था । निरतर २१ वर्ष तक बेले-बेले की तपाराधना, ओढने के लिए एक ही चद्दर का उपयोग, प्रतिदिन दो सौ 'नमोत्थुण' का स्मरण करना, जीवन पर्यत सर्व प्रकार के मिष्ठान्नो का परित्याग और स्वय के अधिकार मे शिष्य नही बनाना आदि महान् प्रतिज्ञाओ के धनी पूज्यप्रवर का जीवन अन्य नर-नारियो के लिये प्रेरणादायक रहे, उसमे आश्चर्य ही क्या है ? उसी उच्च कोटि की साधना के कारण चित्तौडगढ मे आप के स्पर्श से एक कुष्टी रोगी के रोग का अन्त होना, रामपुरा मे आप की मौजूदगी मे एक वैरागिन बहिन के हाथो मे पडी हथकडियो का टूटना और नाथ द्वारा के व्याख्यान समवशरण मे नभमार्ग से विचित्र ढग के

रुपयो की बरसात आदि-२ चमत्कार पूज्य प्रवर के उच्चातिउच्चकोटि के सयम का सस्मरण करवा रहे है।

अपनी प्रखर प्रतिभा, उत्कृष्ट चारित्र और असरकारक वाणी के कारण जनता के इतने प्रिय हो गये कि—भविष्य मे आप के आज्ञानुगामी सत-सती समूह को जनता "पूज्य श्री हुक्मचद जी म० सा० की सम्प्रदाय के" नाम से पुकारने लगी। इस प्रकार लगभग अडतीम वर्ष पाच मास तक शुद्ध सयम का परिपालन कर चारित्र चूडामणि श्रमणश्रेष्ठ पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० का वैशाख शुक्ला ५ सवत् १९१७ मगलवार को जावद शहर मे समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ।

तत्पश्चात् साधिक सर्व उत्तरदायित्व आप के गुरु भ्राता पूज्य श्री शिवलाल जी म० को सभालना जरूरी हुआ। जिनका परिचय इस प्रकार है।

आचार्य श्री शिवलाल जी म० सा०

आप की पावन जन्मस्थली मालवा प्रान्त मे धामनिया (नीमच) ग्राम था। सवत् १८९१ मे आपने दीक्षा अगीकार की थी। स्व० पूज्य श्री हुक्मचन्द जी म० की तरह ही आप भी शास्त्रमर्मज्ञ, स्वाध्यायी व आचार-विचार मे महान् निष्ठावान-श्रद्धावान थे। न्याय एव व्याकरण विषय के अच्छे ज्ञाता के साथ-साथ स्व-मत-पर-मत मीमासा मे भी आप कुशल कोविद माने जाते थे। आप यदा-कदा भक्ति भरे व जीवनस्पर्शी, उपदेशी कवित्त भजन-लावणियाँ भी रचा करते थे। जो सम्प्रति पूर्ण साधना भाव के कारण अप्रकाशित अवस्था मे ही रह गये हैं।

आपके प्रवचन तात्विक विचारो से ओत-प्रोत जन साधारण की भाव-भाषा मे ही हुआ करते थे और सरल भाषा के माध्यम से ही आप अपने विचारो को जन-जन तक पहुँचाने मे सफल भी हुए हैं। जिज्ञासुओ के शकाओ का समाधान भी आप शास्त्रीय मान्यतानुसार अनोखे ढग से किया करते थे। निरन्तर छत्तीस वर्ष तक एकान्तर तपाराधना कर कर्म कीट को धोने मे प्रयत्नशील रहे थे। वे पारणे मे कभी-कभी दूध घी आदि विगयो का परित्याग भी किया करते थे। इस प्रकार काफी वर्षों तक शुद्ध सयम का परिपालन कर व चतुर्विध सघ की खूब अभिवृद्धि कर स० १९३३ पौष शुक्ला ६ रविवार के दिन आप दिवगत हुए। कुलाचार्य के रूप मे भी आप विख्यात थे।

पूज्य प्रवर श्री उदयसागर जी मा०

पूज्य श्री शिवलाल जी म० सा० के दिवगत होने के पश्चात् सप्रदाय की वागडोर आपके कमनीय कर-कमलो मे शोभित हुई।

आप का जन्म स्थान जोधपुर है। खिवेसरा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठी श्री नथमलजी की धर्म पत्नी श्रीमती जीवाबाई की कुक्षी से स० १८७६ के पोष मास मे आप का जन्म हुआ। समयानुसार ज्ञानाभ्यास, कुछ अशो मे धधा-रोजगार भी सिखाया गया और साथ ही साथ लघु वय मे ही आप का सगपण भी कर दिया गया था। वस्तुत कुछ नैमित्तिक कारणो से और विकासोन्मुखी जीवन हो जाने के कारण विवाह योजना को वही ठण्डी करके सयमग्रहण करने का निश्चय कर लिया। दिनो दिन वैराग्य भाव-सरिता मे तल्लीन रहने लगे। येन-केन-प्रकारेण दीक्षा भावो की मद-मद महक उनके मात-पिता तक पहुँची। काफी विघ्न भी आये लेकिन आप अपने निश्चय पर सुदृढ रहे। काफी दिनो तक

घर पर ही साध्वोचित आचार-विचार पालते रहे। अन्तत खूब परीक्षा-जांच पडताल कर लेने के पश्चात् मात-पिता व न्याती-गोती सभी वर्ग ने दीक्षा की अनुमति प्रदान की।

महा मनोरथ-सिद्धि की उपलब्धि के पश्चात् पू० प्रवर श्री शिवलाल जी म० के आज्ञानुगामी मुनि श्री हर्षचन्द जी म० के सान्निध्य में सवत् १८६८ चैत्र शुक्ला ११ गुरुवार की शुभ वेला में दीक्षित हुए।

दीक्षा व्रत स्वीकार करने के पश्चात् पूज्य श्री शिवलाल जी म० की सेवा मे रहकर जैन-सिद्धान्त का गहन अभ्यास किया। बुद्धि की तीक्ष्णता के कारण स्वल्प समय मे व्याख्यान-वाणी व पठन-पाठन मे श्लाघनीय योग्यता प्राप्त कर ली गई। सदैव आप आत्म-भाव मे रमण किया करते थे। प्रमाद आलस्य मे समय को खोना, आप को अप्रिय था। सरल एव स्पष्टवादिता के आप धनी थे अतएव सदैव आचार-विचार मे सावधान रहा करते थे। व अन्य सन्त महन्तो को भी उसी प्रकार प्रेरित किया करते थे।

आप की विहार स्थली मुख्य रूपेण मालवा और राजस्थान ही थी। किन्तु भारत के सुदूर तक आप के सयमी जीवन की महक व्याप्त थी। आप के ओजस्वी भाषणो से व ज्योतिमय जीवन के प्रभाव मे अनेक इतर जनो ने मद्य, मास व पशुबलि का जीवन पर्यन्त के लिये त्याग किया था और कई बडे-बडे राजा-महाराजा जागीरदार आप की विद्वत्ता से व चमकते-दमकते चेहरे से आकृष्ट होकर यदा-कदा दर्शनो के लिए व व्याख्यानामृत पान हेतु आया ही करते थे।

अन्य अनेक ग्राम-नगरो को प्रतिलाभ देते हुए आप शिष्य समुदाय सहित रतलाम पधारे। पार्थिव देह की स्थिति दिनो-दिन दबती जा रही थी। बस द्रुतगत्या मुख्य-मुख्य सत व श्रावको की सलाह लेकर पूज्य प्रवर ने अपनी पैनी सूझ-बूझ से भावी आचार्य श्री चौथमल जी म० सा० का नाम घोषित कर दिया। चतुर्विध सघ ने इस महान् योजना का मुक्त कठो से स्वागत किया। आप के शासनकाल मे चतुर्विध सघ मे आशातीत जागृति आई। इस प्रकार सम्वत् १६५४ माघ शुक्ला १३ के दिन रतलाम मे पूज्य श्री उदयसागर जी म० सा० का स्वर्गवास हो गया।

पूज्यप्रवर श्री चौथमल जी म

पूज्य प्रवर श्री उदयसागर जी म० के पश्चात सम्प्रदाय की सर्व व्यवस्था आप के बलिष्ट कधो पर आ खडी हुई। आप पाली मारवाड के रहने वाले एक सुसम्पन्न ओसवाल परिवार के रत्न थे। आप की दीक्षातिथि सम्वत् १६०६ चैत्र शुक्ला १२ रविवार और आचार्य पदवी सम्वत् १६५४ मानी जाती है। पू० श्री उदयसागर जी म० की तरह आप भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र के महान् धनी और उग्र विहारी तपस्वी सत थे। यद्यपि शरीर मे यदा-कदा असाता का उदय हुआ ही करता था। तथापि तप-जप-स्वाध्याय-व्याख्यान मे रत रहा करते थे। अनेकानेक गुण रत्नो से अलकृत आपका जीवन अन्य भव्यो के लिये मार्ग-दर्शक था। आप की मौजूदगी मे भी शासन की समुचित सुव्यवस्था थी और पारस्परिक सगठन स्नेह भाव पूर्ववत् ही था।

इस प्रकार केवल तीन वर्ष और कुछ महीनों तक ही आप समाज को मार्ग-दर्शन देते रहे और सम्वत् १६५७ कार्तिक शुक्ला ६ वी के दिन आप श्री का रतलाम मे देहावसान हुआ।

पूज्य श्रीलाल जी म० सा०

टोक निवासी श्रीमान् चुन्नीलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती चाँदबाई की कुक्षी मे स० १६२६

आसाढ वदी १२ के दिन आप का जन्म हुआ था । अति लघुवय मे आप का लग्न हो चुका था । तथापि नीर-नीरज न्यायवत् विरक्त भाव मे रहते थे । अन्तत स० १९४५ माघवदी ७ की मगल वेला मे दीक्षा स्वीकार करके भ० महावीर के पद चिन्हो पर चलने लगे ।

स्मरण शक्ति स्तुत्य थी । अतएव थोडे काल मे ही जैन आगमो का गहरा परिशीलन किया तथा पर्याप्त मात्रा मे अन्य ज्ञान का भी सपादन किया गया । चतुर्विध सघ को आगे बढाने मे आप का स्तुत्य योग रहा है । सरल व्याख्यान शैली से आकृष्ट होकर कई इतर जन समूह मद्य-मांस व पशुबलि का त्याग भी किया करते थे ।

आप के शासन काल मे सत मण्डली एव श्रावकमडली के बीच काफी उतार-चढाव के बादल मडराते रहे । फलस्वरूप सप्रदाय दो विभाग मे विभक्त हो गई । आचार्य प्रवर विचरते हुए जेतारण पधारे । वहाँ स० १९७७ आषाढ शुक्ला ३ के दिन इस पार्थिव देह का परित्याग कर स्वर्गवासी हुए ।

आगमोदधि आचार्य श्री मन्नालाल जी म० सा०

सम्वत् १९२६ मे पूज्य प्रवर का जन्म रतलाम मे हुआ था । आप के पिता श्री का नाम अमरचन्द जी, मातेश्वरी का नाम नानी बाई बोहरा गोत्रीय ओसवाल थे । शैशव काल अति सुख साता मय बीता ।

पूज्य प्रवर श्री उदयसागर जी म० का पीयूष वर्षीय उपदेश सुनकर श्रेष्ठी श्री अमरचन्द जी और सुपुत्र श्री मन्नालाल जी दोनो जन वैराग्य मे प्लावित हो उठे । स० १९३८ अषाढ शुक्ला ९ वी मगलवार को पूज्य प्रवर के कमनीय कर-कमलो द्वारा दीक्षित हुए और लोदवाले श्री रतन चन्द जी म० के नेश्राय मे आप दोनो को घोषित किये गये । दीक्षा के पश्चात् सुष्ठुरित्या अभ्यास करने मे लग गये । पूज्य श्री मन्नालाल जी म० की बुद्धि अति शुद्ध-विशुद्ध निर्मल थी । कहते हैं कि एक दिन मे लगभग पचास गाथा अथवा श्लोक कठस्थ करके सुना दिया करते थे । विनय, अनुभव-नम्रता और अनुशासन का परिपालन आदि-२ गुणो से आप का जीवन आबाल वृद्ध सन्तो के लिए प्रिय था । एतदर्थ पू० श्री उदयसागर जी म० ने दिल खोलकर पात्र को शास्त्रो का अध्ययन करवाया, गूढातिगूढ शास्त्र कुजियो मे अवगत कराया और अपना अनुभव भी सिखाया गया । इस प्रकार शनै शनै गाभीर्यता, समता, सहिष्णुता, क्षमता आदि अनेकानेक गुणो के कारण आप का जीवन, चमकता, दमकता-दीपता हुआ समाज के सम्मुख आया । आचार्य पद योग्य गुणो से समवेत समझकर चतुर्विध सघ ने सम्वत् १९७५ वैशाख शुक्ला १० के दिन जम्मू, (काश्मीर) नगर मे चारित्र-चूडामणि पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० के सम्प्रदाय के "आचार्य" इस पद से आप (पू० श्री मन्नालाल जी म०) श्री को विभूषित किया गया ।

तत्पश्चात् व्याख्यान वाचस्पति प० रत्न श्री देवीलाल जी म० प्रसिद्धवक्ता जैन-दिवाकर श्री चौथमल जी म० भावी आचार्य श्री खूबचन्द जी म० आदि अनेक सन्त शिरोमणि आप के स्वागत सेवा मे पहुँचे और पुन सर्व मुनि मण्डल का मालवा मे शुभागमन हुआ । अनेक स्थानो पर आपके यशस्वी चातुर्मास हुए । और जहाँ जहाँ आचार्य प्रवर पधारे, वहाँ-वहाँ आशातीत धर्मोन्नति व दान, शील, तप, भावाराधना हुआ ही करती थी । अनेक मुमुक्षु आपके वैराग्योत्पादक उपदेशो को श्रवणगत कर आप के चारु-चरण सरोज मे दीक्षित भी हुए हैं ।

मालवा—राजस्थान व पजाव प्रान्त के कई भागो मे आप का परिभ्रमण हुआ। आप के तल-स्पर्शी-ज्ञान-गरिमा की महक सुदूर तक फैली हुई थी। कई भावुक जन यदा-कदा सेवा मे आ-आकर शका-समाधान पाया ही करते थे। श्रमण सघीय उपाध्याय श्री हस्तीमल जी म० सा० भी आप की सेवा मे रहकर शास्त्रीय अध्ययन कर चुके है।

इस प्रकार आप जहाँ तक आचार्य पद को सुशोभित करते रहे, वहाँ तक चतुर्विध सघ की चौमुखी उन्नति होती रही। सघ मे नई जागृति आई और नई चेतना ने अगडाई ली। स० १९९० अजमेर का वृहद् साधु-सम्मेलन-सम्पन्न कर आचार्य प्रवर वर्षावास व्यतीत करने हेतु व्यावर नगर को धन्य बनाया। सहसा शरीर मे रोग ने आतक खडा कर दिया। तत्काल आसपास के अनेक वरिष्ठ सत सेवा मे पधार गये। अन्ततोगत्वा स० १९९० अषाढ विदी १२ सोमवार के दिन आप स्वर्गवासी हुए।

आप के रिक्त पाट पर चारित्र-चूडामणि-त्यागी-तपोधनी पूज्य प्रवर श्री खूबचन्द जी म० सा० को आसीन किये गये।

आचार्य प्रवर श्री खूबचन्द जी म० सा०

वि० स० १९३० कार्तिक शुक्ला अष्टमी गुरुवार के दिन निम्बाहेडा (चित्तोडगढ) के निवासी श्रीमान् टेकचन्द जी की धर्म पत्नी गेन्दी बाई की कुक्षी से आप का जन्म हुआ था। शैशव काल सुखमय बीता, विद्याध्ययन हुआ और हो ही रहा था कि - पारिवारिक सदस्यो ने अति शीघ्रता कर स० १९४६ मार्ग शीर्ष शुक्ला १५ के दिन विवाह भी कर दिया। बालक खूबचन्द शर्म की वजह से न हाँ ही कर सके। समयानुसार वास्तविक बातो का ज्यो-२ ज्ञान हुआ, त्यो-२ खूबचन्द अपने जीवन को धार्मिक क्रिया—काण्ड-अनुष्ठानो से पूरित करने लगे। और इसी प्रकार सासारिक क्रिया कलापो से भी दूर रहने लगे —जैसा कि—

> वर्षो तक कनक रहे जल मे, पर कायी कभी नहीं आती है।
> यो शुद्धात्म जीव रहे विश्व मे, नहीं मलिनता छाती है॥

बस विवाह के छ वर्ष पश्चात् अर्थात् १९५२ आषाढ शुक्ला ३ की शुभवेला मे वादीमान-मर्दक गुरु प्रवर श्री नन्दलाल जी म० सा० के नेश्राय मे उदयपुर की रग स्थली मे आप दीक्षित हुए।

दीक्षा के पश्चात् गुरु भगवत श्री नन्दलाल जी म० सा० स्वय ने आप को शास्त्रीय तल-स्पर्शी अध्ययन करवाया, अपना निजी अनुभव और भी अनेकानेक उपयोगी सिखावनो से आप को होनहार बनाया। फलस्वरूप आप का जीवन दिनो दिन महानता व विनय गुण से महक उठा। कई बार गुरु प्रवर श्री नन्दलाल जी म० सा० अन्य मुमुक्षुओ के समक्ष फरमाया भी करते थे कि—श्री उत्तराध्ययन सू० के प्रथमाध्याय के अनुरूप खूबचन्द जी मुनि का जीवन विनय गुण गौरव से ओत-प्रोत है। यह कोई दर्पोक्ति नही है। क्योकि—आप द्वारा रचित, भजन, लावणियो मे आपने अपना नाम सर्वथा गोपनीय रखा है। और गुरु भगवत के नाम की ही मुहर लगाई है जैसा कि—"महा मुनिनन्दलाल तणा शिष्य' यह विशेषता आपके नम्रीभूत जीवन की ओर सकेत कर रही है।

आपका जीवन त्याग-वैराग्य मे लबालब परिपूर्ण सम्पूर्ण था। व्याख्यान वाणी मे वैराग्य रसप्रधान था। स्वर अति मधुर व गायन कला सागोपाग पर आर्कषक थी। अतएव उपदेशामृत पान हेतु इतर जन भी उमड घुमड के आया करते थे। असर कारक वाणी प्रभावेण कई मुमुक्षु आपके नेश्राय मे दीक्षित हुए थे। वर्तमान काल मे स्थविर पद विभूषित ज्योतिर्धर प० रत्न श्री कस्तूरचन्द जी म०

सा० आप के ही शिष्य रत्न हैं। और हमारे चरित्रनायक आपके गुरु भ्राता व प्रवर्तक श्री हीरा लाल जी म० सा० व तपस्वी श्री लाभचन्द जी म० सा० आप के प्रशिष्य हैं।

आप के अक्षर अति सुन्दर आते थे। इस कारण आप की लेखन कला भी स्तुत्य थी। आप अपने अमूल्य समय मे कुछ न कुछ लिखा ही करते थे। चित्रकला मे भी आप निपुण थे। आज भी हस्त-लिखित आप के अनेको पन्ने सत-मण्डली के पास मौजूद है। जो समय-समय पर काम मे लिया करते हैं। आप कवि के रूप मे भी समाज के सम्मुख आये थे। आप द्वारा रचित अनेक भजन दोह व लावणियाँ आज भी साधक जीह्वा पर ताजे हैं। आपकी रचना सरल सुबोध व भावप्रधान मानी जाती है। शब्दो की दुरूहता से परे हैं। कही-कही आपकी कविताओ मे अपने आप ही अनुप्रास अलकार इतना रोचक बन पडा है कि—गायको को अति आनन्द की अनुभूति होती है और पुन पुन गाने पर भी मन अघाता नही है। जैसा कि—

"यह प्रजन कुवँर की प्रगट सुनो पुण्याई,
महाराज, मात रुक्मीणि का जाया जी।
जान भोग छोड लिया योग रोग कर्मों का मिटाया जी ॥"

सर्व गुण सम्पन्न प्रवरप्रतिभा के धनी आप को समझकर चतुर्विध सघ ने स० १९९० माघ शुक्ला १३ शनिवार की शुभ घडी मन्दसौर की पावन स्थली मे पूज्य श्री हुक्मी चन्द जी महाराज के सम्प्रदाय के आप को आचार्य बनाए गये। आचार्य पद पर आसीन होने पर "यथा नाम तथा गुण" के अनुसार चतुर्विध सघ-समाज मे चौमुखी तरक्की प्रगति होती रही और आप के अनुशासन की परिपालना बिना दबाव के सर्वत्र-सश्रद्धा-भक्ति-प्रेम पूर्वक हुआ करती थी। अतएव आचार्य पद पर आप के विराजने से सकल सघ को स्वाभिमान का भारी गर्व था।

आप के सर्व कार्य सतुलित हुआ करते थे। शास्त्रीय मर्यादा को आत्मसात करने मे सदैव आप कटिबद्ध रहते थे। महिमा सम्पन्न विमल व्यक्तित्व समाज के लिए ही नही, अपितु जन-जन के लिए मार्ग-दर्शक व प्रेरणादायी था। समता-रस मे रमण करना ही आप को अभीष्ट था। यही कारण था कि—विरोधी तत्त्व भी आपके प्रति पूर्ण पूज्य भाव रखते थे।

मालवा-मेवाड-मारवाड, पजाब व खानदेश आदि अनेक प्रातो मे आपने पर्यटन किया था। जहाँ भी आप चरण-सरोज धरते थे, वहाँ काफी धर्मोद्योत हुआ ही करता था। चाँदनी-चौक दिल्ली के भक्तगण आपके प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति रखते थे।

इस प्रकार स० २००२ चैत्र शुक्ला ३ के दिन ब्यावर नगर मे आपका देहावसान हुआ और आपके पश्चात् सम्प्रदाय के कर्णधार के रूप मे पूज्य प्रवर श्री सहस्रमल जी महाराज सा० को चुने गये।

आचार्य प्रवर श्री सहस्रमलजी महाराज सा०

आप का जन्म स०—१९५२ टाँटगढ (मेवाड) मे हुआ था। पीतलिया गोत्रिय ओसवाल परिवार के रत्न थे। अति लघुवय मे वैराग्य हुआ और तेरापथ सम्प्रदाय के आचार्य कालुराम जी के पास दीक्षित भी हो गये। साधु बनने के पश्चात् सिद्धान्तो की तह तक पहुँचे, जिज्ञासु बुद्धि के आप धनी थे ही और तेरापथ की मूल मान्यताएँ भी सामने आई।—"मरते हुए को बचाने मे पाप, भूखे को रोटी कपडे देने मे पाप, अन्य की सेवा-शुश्रुषा करना पाप" अर्थात्—दयादान के विपरीत मान्यताओ को सुनकर-समझकर आप ताज्जुब मे पड गये। अरे! यह क्या? सारी दुनियाँ के धर्म-मत-पथो की मान्यता दयादान के

मण्डन मे है और हमारे तेरापथ सम्प्रदाय की मनगढन्त उपरोक्त मान्यता अजव-गजव की ? कई वक्त आचार्य कालु जी आदि साधको से सम्यक् समाधान भी मागा, लेकिन सागोपाग शास्त्रीय समाधान करने मे कोई सफल नही हुए। अतएव विचार किया कि—इस सम्प्रदाय का परित्याग करना ही अपने लिए अच्छा रहेगा। चूँकि—जिसकी मान्यता रूपी जडें दूषित होती है उसकी शाखा, प्रशाखा आदि सर्व दूषित ही मानी जाती हैं। वस सात वर्ष तक आप इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत रहे, फिर सदैव के लिए इस सम्प्रदाय को वोसिरा' कर आप सीधे दिल्ली पहुँचे।

उस समय स्थानकवासी सम्प्रदाय के महान् क्रिया पात्र विद्वद्वर्य मुनि श्री देवीलाल जी म० प० रत्न श्री केसरीमल जी महाराज आदि सत मण्डली चाँदनी-चौक दिल्ली मे विराज रहे थे। श्री सहस्रमल जी मुमुक्षु ने दर्शन किये। व दयादान विपयक अपनी वही पूर्व जिज्ञासा, शका, ज्यो की त्यो तत्र विराजित मुनिप्रवर के सामने रखी और वोले—"यदि मेरा सम्यक् समाधान हो जायगा, तो मैं निश्चयमेव आपका शिष्यत्व स्वीकार कर लूँगा।" अविलम्व मुनिद्वय ने शास्त्रीय प्रमाणोपेत सागोपाग स्पष्ट सही समाधान कर सुनाया। आपको पूर्णत आत्मसन्तोप हुआ। उचित समाधान होने पर अति हर्ष सहित पुन सम्वत् १६७४ भादवा सुदी ५ की शुभ मगल वेला मे आप शुद्ध मान्यता और शुद्ध सम्प्रदाय के अनुगामी वने, दीक्षित हुए।

तत्वखोजी के साथ-साथ ज्ञान-सग्रह की वृत्ति आप की स्तुत्य थी। पठन-पाठन मे भी आप सदैव तैयार रहते थे। ज्ञान को कठस्थ करना अधिक आपको अभीष्ट था इसलिए ढेरो सवैये, लावणियाँ—श्लोक गाथा व दोहे वगैरह आप की स्मृति मे ताजे थे। यदा-कदा भजन स्तवन भी आप रचा करते थे जो धरोहर रूप मे उपलव्ध होते हैं।

व्याख्यान शैली अति मधुर, आकर्षक हृदय स्पर्शी व तात्विकता से ओत-प्रोत थी। चर्चा करने मे भी आप अति पटु व हाजिर जवावी के साथ-साथ प्रतिवादी को झुकाना भी जानते थे। जनता के अभिप्रायो को आप मिनटो मे भाप जाते थे। व्यवहार धर्म मे आप अति कुशल और अनुशासक (Controller) भी पूरे थे।

सम्वत् २००६ चैत्र शुक्ला १३ की शुभ घडी मे नाथद्वारा के भव्य रम्य-प्रागण मे आपको "आचार्य" वनाए गए। कुछेक वर्षों तक आप आचार्य पद को सुशोभित करते रहे तत्पश्चात् सघैक्य योजना के अन्तर्गत आचार्य पदवी का परित्याग किया और श्रमण सघ के मत्री पद पर आसीन हुए। इसके पहिले भी आप सम्प्रदाय के 'उपाध्याय" पद पर रह चुके हैं। इस प्रकार रत्न त्रय की खूब आराधना कर स० २०१५ माघ सुदी १५ के दिन रूपनगड मे आपका स्वर्गवास हुआ।

पाठक वृन्द के समक्ष पूज्यप्रवर श्री हुक्मीचन्द जी महाराज सा० की सम्प्रदाय के महान् प्रतापी पूर्वाचार्यों की विविध विशेषताओ से ओत-प्रोत एक नन्ही-सी झाकी प्रस्तुत की है। जिनकी तपाराधना, ज्ञान-साधना एव सयम पालना अद्वितीय थी।

अद्यावधि उपरोक्त पवित्र परम्परा के कर्णाधार स्थविरपद विभूषित मालवरत्न, दिव्य ज्योतिर्धर गुरुप्रवर श्री कस्तूरचन्द जी महाराज, हमारे चरित्र नायक गुरु श्री प्रतापमल जी महाराज, प्रवर्तक प्रवर श्री हीरालाल जी महाराज, प्र० वक्ता श्री केवल मुनि जी महाराज, प्र० वक्ता तपस्वी श्री लाभचन्द जी महाराज एव प्रवर्तक श्री उदयचन्द जी महाराज सा० आदि अनेक श्रमण श्रेष्ठ जयवन्त हैं। जो पामर ससारी जीवो को सन्मार्ग की ओर प्रेरित कर रहे हैं। ऐसे पवित्र मनस्वियो के चारु चरणारविंदो मे सदा वन्दना अंजलियाँ समर्पित हो!

जैन दर्शन में कर्म-मीमांसा

—'प्रियदर्शी' मुनि सुरेश 'विशारद'

कर्म विषयक विस्तृत विवेचन जितना जैन दर्शन प्रस्तुत करता है उतना तो क्या परतु अश रूप मे भी अभिव्यक्त करने मे अन्य दार्शनिक सफल नही हुए हैं। हा, 'कर्म' शब्द का प्रयोग अवश्य सभी दर्शनो मे हुआ है। किन्तु कर्म के तलस्पर्शी ज्ञान विज्ञान मे अन्य दर्शनकार अनभिज्ञ से रहे हैं।

महाभारत मे कहा है—ईश्वर की प्रेरणा से ही प्राणी स्वर्ग नरक मे जाता है। यह अज्ञानी जीव अपने सुख-दुख उत्पन्न करने मे असमर्थ है।[1] "वैशेषिक दर्शन मे ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानकर उसके स्वरूप का वर्णन किया है। इसी प्रकार योगदर्शन मे भी जड और जग का विस्तार ईश्वर पर निर्भर करता है।

परन्तु जैन दर्शन ईश्वर को कर्म का प्रेरक नही मानता है। क्योकि—कर्मवाद का ऐसा ध्रुव मतव्य है कि—जैसे जीव कर्म करने मे स्वाधीन है, वैसे ही कर्म विपाक भोगने मे भी। अर्थात् सुख और दुख का कर्ता जीव स्वय है न कि अन्य कोई शक्ति विशेष। उत्तमकर्मों की दृष्टि से आत्ममित्र रूप और दुखोपार्जन करने की दृष्टि से शत्रु रूप मानी गई है।[2]

'क्रियते यत-तत् कर्म।' अर्थात् जीवात्मा द्वारा शुभाशुभ क्रिया (कर्म) की जाती है—उसे कर्म कहते हैं। बुरे-भले कर्म जीवाजीव के सयोग से ही बनते हैं। अकेला जीव कर्म बन्ध नही करेगा और न अकेला अजीव (जड) भी। अत कहा गया है कि—जीव और अजीव दोनो कर्म के अधिकरण यानी आधार है।[3]

कर्म परिणाम (भाव) की अपेक्षा से तीव्र-मद-ज्ञात-अज्ञात वीर्य और अधिकरण के भेदानुभेद से कर्मबन्ध मे विविध विशेषता पाई जाती है।[4]

---

१ ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा।
अज्ञो जन्तुरनीशोयमात्मन सुख-दु खयो ॥
—महाभारत

२ अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्त ममित्त च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥
—उ अ २० गा ३७

३ अधिकरण जीवाजीवा
—तत्त्वार्थ अ ६। सू ७

४ तीव्रमन्द ज्ञाताज्ञात भाव वीर्याधिकरण विशेषेभ्यस्तद्विशेष
—तत्त्वार्थ अ ६। सू ७

मूल प्रकृत्यनुसार कर्मों की वशावली निम्न है—

घातिक चतुष्क	अघातिक चतुष्क
ज्ञानावरण कर्म	वेदनीय कर्म
दर्शनावरण कर्म	आयुष्कर्म
मोहनीय कर्म	नाम कर्म
अन्तराय कर्म	गोत्र कर्म[1]

उत्तर प्रकृतियाँ अर्थात् अवानर भेदानुभेद निम्न प्रकार हैं—

पाच प्रकृतियाँ	दो प्रकृतियाँ
नौ ,,	चार ,,
अट्ठावीस ,,	एक सौ तीन ,,
पाच ,,	दो ,,

कुल एक सौ अठावन (१५८) उत्तर प्रकृतियो की परम्परा वताई गई है। जिसमे यह सार ससार मकडी के जाल की भाति वधा हुआ है।

'उपयोगो लक्षणम्' उपयोग जीवात्मा का लक्षण है। वह उपयोग दो प्रकार का है—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग।[2] ज्ञान को साकार उपयोग और दर्शन को निराकार उपयोग कहा गया है। जो उपयोग वस्तु-विज्ञान के विशेप धर्म को अर्थात् जाति-गुण-पर्याय आदि का ग्राहक है वह ज्ञानोपयोग और पदार्थो की केवल सत्ता यानी सामान्य धर्म को जो धारण करता है उसे दर्शनोपयोग कहते हैं।

जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करे, उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं। जिस प्रकार आख पर कपडे की पट्टी लगा देने से वस्तुओं के देखने मे रुकावट आती है। उसीप्रकार ज्ञानावरण के प्रभाव से पदार्थों के जानने मे रुकावट आती है। परन्तु ऐसी रुकावट नही जिससे आत्मा विल्कुल ज्ञान शून्य हो जाय। चाहे जैसे घने वादलो से सूर्य घिरा हुआ हो, तथापि स्वल्पाश मे उसके प्रकाश की पर्याय खुली रहती है। उसी प्रकार कर्मों के चाहे जैसे गाढे-घने आवरण आत्मा के चारो ओर छाये हो, फिर भी आत्मा का उपयोग लक्षण कुछ-अशो मे प्रकट रहता है। अगर ऐसा न हो तो जीव तत्त्व जडवत् वनने मे देर नही लगेगी।

जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढके, उसे दर्शनावरणीय कर्म कहा जाता है। जिस प्रकार द्वारपाल किसी मानव से नाराज हो, तो अवश्यमेव उस मानव को राजा तक जाने नही देगा। चाहे राजा उसे मिलना या देखना भी चाहे तो भी मिलना-मिलाना कठिन ही रहेगा। उसी प्रकार दर्शनावरण

---

१ नाणस्सावरणिज्ज, दसणावरण तहा।
वेयणिज्ज तहा मोह, आयुकम्म तहेव य॥
नाम कम्म च गोय च, अतराय तहेव य।
एवमेयाइ, कम्माइ अट्ठेव उ समासओ॥
—उ अ ३३ गा २-३

२ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेद
—तत्त्वार्थ० अ २-सू ९

कर्म जीव रूपी राजा की पदार्थों की देखने की शक्ति मे रुकावट पहुचाता है। दर्शनावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ—चक्षु-चतुष्क और निद्रापचक इस प्रकार नौ भेद हैं।[1]

जो कर्म स्व-पर विवेक मे तथा स्वभाव रमण मे वाधा पहुचाता है अथवा जो कर्म आत्मिक सम्यक् गुण और चारित्रगुण का नाश-ह्रास करता है। जैसे शरावी-शराव का पान करने के पश्चात् विवेक से भ्रष्ट हो जाता है। वैसे ही मोह-मदिरा प्रभावेण देहधारी के अन्तर्हृदय मे प्रदीप्त विवेकरूपी भास्कर स्वल्प काल के लिए अस्त सा हो जाता है। इस कर्म की प्रवान प्रकृतिया दो मानी गई है—दर्शन मोहनीय और चारित्रमोहनीय और दोनो की परम्परा विस्तृत रूप से परिव्याप्त है।[2]

जो पदार्थ जैसा है, उसे वैसा ही समझना दर्शन कहलाता है। अथवा तत्त्व-श्रद्धान को दर्शन कहा जाता है।[3] यह आत्मा का मौलिक गुण है। इसकी रुकावट करनेवाले कर्म को दर्शनमोहनीयकर्म कहते हैं। सम्यक्त्व-मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्रमोहनीय कर्म अर्थात् यह त्रीक दर्शनावरणीय कर्म का वशज है।[4]

जिसके द्वारा आत्मा अपने असली स्वरूप का विकास करता हुआ उन गुणो को जीवन मे उतारता है उसे चारित्र कहते हैं। यह भी आत्मिक गुण है। इसकी घात करनेवाले कर्म को चारित्र-मोहनीय कर्म कहते हैं। इसकी प्रधान दो प्रकृतिया हैं—कपायमोहनीय और नौ कषायमोहनीय। भेदानुभेद निम्न प्रकार हैं—

अनतानुवधी चतुष्क—क्रोध	मान	माया	लोभ
अप्रत्याख्यान चतुष्क—क्रोध	मान	माया	लोभ
प्रत्याख्यान चतुष्क—क्रोध	मान	माया	लोभ
सज्वलन चतुष्क—क्रोध	मान	माया	लोभ

नौ कपाय मोहनीय के नव भेद निम्न है—

(१) हास्य	(५) शोक
(२) रति	(६) जुगुप्सा
(३) अरति	(७) स्त्री वेद
(४) भय	(८) पुरुप वेद
(९) नपुसक वेद	

१ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलाना निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिवेदनीयानि च —तत्त्वार्थ अ ८।सू८।

२ मोहणिज्ज पि दुविह, दसणे चरणे तहा।
दसणे तिविह वुत्त, चरणे दुविह भवे॥ —उ० अ ३३ गा ८

३. तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्। —तत्त्वार्थ अ १। सू२

४ सम्मत्त चेव मिच्छत्त, सम्मा मिच्छत्तमेव य।
एयाओ तिन्नि पयडीओ, मोहणिज्जस्स दसणे॥ —उ० अ ३३ गा ९॥

५ सोलसविह भेएण, कम्म तु कसायज।
सत्तविह नवविह वा, कम्म तु नोकसायज॥ —उ० अ० ३३। गा ११

जिस कर्मोदय के कारण जीव-जीवित रहता है और क्षय हो जाने पर मरता है वह पाचना आयुष कर्म कहलाता है। आयु कर्म का स्वभाव कारावास के सदृश्य है। जैसे न्यायाधीश अपराधी को उसके अपराध के अनुसार अमुककाल तक जेल में रखता है। यद्यपि अपराधी की जल्दी से जल्दी छुटकारा पाने की इच्छुक अवश्य रहती है। तथापि अवधि पूर्ण हुए बिना नहीं निकल पाता है। वैसे ही आयु कर्म जब तक बना रहता है, तब तक आत्मा प्राप्त हुए उस शरीर को नहीं त्याग सकता है। जब आयु कर्म पूरा भोग लिया जाता है, तब शरीर स्वत छूट जाता है। आयु कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ चार है—देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु और नरकायु।[1]

आयुष्य कर्म के दो प्रकार है—अपवर्त्तनीय और अनपवर्त्तनीय आयुष। पानी-आग अस्त्र-शस्त्र-विष एव वृक्ष-झपापात आदि बाह्य नैमित्तिक कारणों से शेष आयु जो पच्चीस वर्षों का भोगने योग्य है उसे अन्तर्मुहूर्त्त मे भोग लेना, अपवर्त्तनीय आयुष कहते हैं। यह तिर्यंच गति वाले एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय एव पचेन्द्रिय जीवो को एव मनुष्य गति वालो को होता है।

जो आयु किसी भी कारण से कम नही हो सके, अर्थात् जितने काल तक का आयुष्य बन्धन किया है उसे पूर्ण भोगी जाय, उस आयु को अनपवर्त्तनीय आयुष कहते हैं। जैसे देव-नारक-चरम शरीरी उत्तमपुरुष अर्थात् तीर्थंकर चक्रवर्ती वासुदेव, बलदेव और असंख्यात वर्षों की आयुष वाले इन आत्माओ का आयु बीच में नही टूटता है।[2]

छठा है नामकर्म—इसका स्वभाव चित्रकार (पेंटर) के समान है। जैसे चित्रकार विविध प्रकार के आकार-प्रकार बनाता एव विगाडता है। उसी तरह नाम कर्म रूपी चित्रकार भी शुभाशुभ मय विविध रचना बनाया करता है। इस कर्म की वशावली काफी विस्तृत रही है। किसी अपेक्षा से ४२ भेद, किसी अपेक्षा से ९३ भेद और किसी अपेक्षा से १०३ और किसी अपेक्षा से ६० भेद भी माने गये हैं। विस्तृत वर्णन कर्म ग्रंथ मे उल्लिखित है।

गोत्र सातवा कर्म है। इस कर्म का स्वभाव कुम्भकार के सदृश्य है। जिस प्रकार कुम्भकार नानाविध घट निर्माण करता है। जिनमे कुछ तो ऐसे होते हैं—जिनको ससारी नर-नारी सिर पर रख करके अर्चना करते हैं और कुछ कुम्भ ऐसे होते हैं—जिनको मद्य किंवा बुरी वस्तु भरने के काम मे लेते हैं। इसीप्रकार जिस कर्म के उदय भाव के कारण जो उत्तम कुल मे जन्म लेते हैं। यह उच्च गोत्रीय कहलाते हैं और जिनका निम्न कुल परिवार मे जन्म हुआ है उन्हे नीच गोत्रीयकर्म कहा जाता है। इस कर्म के मुख्य रूप से दो भेद हैं उच्च गोत्र और नीच गोत्र।[3]

जिस कर्म के प्रभाव से कार्य के मध्य-मध्यमे विघ्नबाधा आ खडी होवे उस कर्म का नाम अन्तराय कर्म है। जैसे —अन्तेतिष्ठति=इति=अन्तराय कर्म है। इसके पांच भेद हैं। दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय कर्म हैं।[4]

---

१ नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥

—तत्त्वार्थ अ० ८ सू ११

२ औपपातिक चरमदेहोत्तम पुरुषाऽसख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ।

—तत्त्वा० अ २ सु० ५२

३ उच्चैर्नीचैश्च —तत्त्वार्थ सूत्र अ० ८ सू० न० १३

४ दानादीनाम् —तत्त्वार्थ सूत्र अ ८ सू० न० १४

सक्षिप्त रूप से कर्मों की परिभापा यहाँ दर्शाई गई है। विशेप जानकारी के लिये कर्म ग्रन्थ अथवा तत्सम्वन्धित अन्य ग्रन्थो का अध्ययन करना चाहिए। कर्म पुद्‌गलो का जीवात्मा स्वय वैभाविक परिणति के कारण आह्वान करता है। जिस प्रकार अमल आकाश मे सूर्य चमक रहा है किन्तु देखते-देखते घटा उसे ढक देती है और घनघोर वृष्टि भी होने लग जाती है। उस घटावली को किसने वुलाया ? वायु के वेग ने ही उसे वुलाया और तत्क्षण वायु वेग ही उसे विखेर देता है। उमी प्रकार मन का विकल्प कर्म के वादलो को लाकर आत्मा रूपी सूर्य पर आच्छादित कर देता है। और ऐसा भी अवमर आना है जव आत्मा रूपी सूर्य का तेज पुन जागृत हो जाता है। तव पुन उभरी हुई सारी घटा छिन्न-भिन्न हो जाती है।

उपर्युक्त कर्म वर्गणा प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेशवन्ध रूप मे परिणमन होती है।[1] स्थिति और अनुभाव वध जीव के कपाय भाव से होता है और प्रकृति तथा प्रदेश वन्ध योग से होता है। कपाय के सद्‌भाव मे योग निश्चित होते है। चाहे एक-दो या मन-वचन-काया ये तीनो योग हो। किंतु योग के सद्‌भाव मे कपाय की भजना अर्थात् होवे किंवा नही। ग्यारहवें से तेरहवे गुणस्थान तक योग होते हैं। किंतु कपाय नही है। विना कपाय के योग मात्र से पाप प्रकृति का वन्ध नही होता है कपाय रहित केवल योग मात्र से दो सूक्ष्म समय का वध होता है। वह एकदम रूक्ष और तत्क्षण निर्जरने वाला और वह भी सुखप्रद होता है। उसे ईर्यापथिक आस्रव कहते हैं।

कापायी भाव के अन्तर्गत जो कर्म वन्ध होता है। उसे साम्परायिक आश्रव कहा है।[2] यह वन्ध रूक्ष और स्निग्ध इस प्रकार माना गया है। भले रुक्ष किंवा स्निग्ध वन्ध हो। कृत कर्म विपाक को भोगे विना कभी छुटकारा नही होता है। आगम की यह पवित्र उद्‌घोपणा है—"**कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।**" वध योग कर्म पुद्‌गल शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के होते हैं। तदनुसार समय पर कर्त्ता को विपाक भी वैसा ही देते हैं।[3]

वस्तुत सपूर्ण कर्मारि पर जव विजय पताका फहराने मे जव साधक सफल हो जाता है तव वह अनत आनदानुभूति का अनुभव करने लगता है और सदा-सदा के लिए वह अमर वन जाता है।

---

१ पयइ सहवो वुत्तो, ठिई कालावहारण।
अणुभागो एसोणेयो, पएसो दल सचओ॥
—नवतत्त्व गा० ३७

२ सकपायाकपाययो साम्परायिकेर्यापथयो।
—तत्त्वा० सूत्र अ० ६। सू०५

३ सुच्चिणाकम्मा सुच्चिणफला हवति।
दुच्चिणाकम्मा दुच्चिणफला हवति॥
—भ० महावीर, औपपातिक सूत्र ५६

जैन धर्म और जातिवाद

—मुनि अजीतकुमार जी 'निर्मल

समाजवाद, साम्यवाद, पूंजीवाद, सम्प्रदायवाद, क्रियावाद, अज्ञानवाद, ज्ञानवाद, उत्कर्षवाद अपकर्षवाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद, एव जातिवाद इस प्रकार न मालूम कितने प्रकार के "वाद" विश्व की अचल मे सिर उठाये खडे हैं। पशु-पक्षियो की अपेक्षा वादो का विस्तार दिन प्रतिदिन मानव के मन मस्तिष्क मे अधिक वृद्धि पा रहा है। मेरी समझ मे मानव समाज भी उत्तरोत्तर बढाने मे तत्पर है।

जतिवाद कहाँ तक ?

यद्यपि सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से कतिपय अशो तक जातिवाद को महत्त्व देना उचित है। क्योकि-सामाजिक प्राणी के लिए इस व्यवस्था की आवश्यकता रही है। ताकि समाज का आबाल-वृद्ध प्रत्येक प्राणी निर्भयता-निर्भीकता पूर्वक सुख-समृद्धिमय जीवन व्यतीत कर सके नियमोप नियम-मर्यादा का पालन सुगमता-सरलता-स्वाधीनता पूर्वक कर सके और आहार-व्यवहार-आचार मे भी किसी प्रकार की विघ्न-बाधा का सामना न करना पडे। वरन् व्यवस्था की गडबडी होने पर सामाजिक एव धार्मिक क्षेत्र कलुषित होना स्वाभाविक है। इस प्रकार साधारण समस्या भी उलझ कर भारी विनाश का दृश्य उपस्थित कर सकती है। वस्तुत तन-धन-जन हानि के अतिरिक्त कइयो को इज्जत-आवरु-जान से हाथ धोना पडता है और सुख-शांति का वायु मण्डल भी विषाक्त होकर समाज-राष्ट्र-व परिवार को ले डूबता है।

अतएव गहन चिंतन-मनन के पश्चात् महामनस्वियों ने पूर्वकाल मे वर्णव्यवस्था का जो श्लाघनीय सूत्र पात किया था। निः सदेह उस वर्ण व्यवस्था के पीछे सामाजिक हित निहित था। कतिपय स्वार्थी तत्त्वो ने आज उस व्यवस्था को एकांगी रूप से जातिवाद की जजीरो मे जकड कर पगु बना दी है। फलस्वरूप विकृतियाँ पनपी, बुराइया घर जमा बैठी और सकीर्णता को भरपेट फलने-फूलने का अवसर मिला। केवल जीवन-व्यवहार की दृष्टि से तो प्रत्येक समूह के लिए जातिबन्धन अपेक्षित रहा है।

क्लेश की बुनियाद-जातिवाद

लेकिन एकांगी दृष्टि से जातिवाद को महत्त्व देना निरीह अज्ञता मानी जायगी। मैं और मेरी जाति ही सर्वोत्तम है। अन्य सब हल्के एव तुच्छ है। बस, गर्वोन्मत्त बना हुआ मानव इस प्रकार एक दूसरे को अवहेलना भरी दृष्टि से निहारने लगा, तिरस्कार के तीक्ष्ण तीरो से बिंधना प्रारम्भ किया और मानव जीवन का मूल्य गुणो से न आक कर केवल जातिवाद के थर्मामीटर से नापने लगा। यहाँ तक कि धार्मिक एव सामाजिक सर्व अधिकारो से भद्र जनता को विहीन किया गया। फिर से गले लगाना हो ही कैसे सकता था ? थोडे-शब्दो मे कहू तो अपने आप को पवित्र और धर्म के अगुए मानकर एव उच्च जाति-पाति का दभ भरने वाले पाखण्डी तत्त्वो ने धर्म के नाम पर खब मन मानी की। ...

वाह्य क्रिया काण्ड की एव रटे हुए कुछ मन्त्र-तन्त्र-यन्त्रो की ओट मे वास्तविकता पर पर्दा डाला गया। मानवता के साथ खिलवाड हुआ। अन्तत जातिवाद की खीचातान मे क्राति का बिगुल गूज उठा।

फलस्वरूप जातिवाद के नाम पर पडोसी; पडोसी के वीच मारामारी हुई, काले-गौरे के वीच खूनी सघर्ष हुए, यहूदी ईसाई के मध्य कत्लेआम हुए और हिंदू-मुस्लिम के वीच लाशो का ढेर लगा, खून की नदियाँ वही एव आए दिन सघर्ष के नगाडे वजते रहे हैं। उपर्युक्त झगडे-रगडे, एव क्लेश-द्वेष की पृष्ठ भूमि धन-धान्य-धरणी नही, अपितु जातिवाद के नाम पर हुए और हो रहे है।

अरिहत की दृष्टि से जातिवाद

जातिवाद का सदैव सीमित क्षेत्र रहा है। जहाँ विशालता का अभाव और सकीर्णता का वोल-वाला रहता है। जव कि महा मनस्वियो का सर्वांगी जीवन प्रत्येक जीवात्मा को उदार और असीम वनने की वलवती प्रेरणा प्रदान करता है। धर्म-दर्शन का शुद्ध स्वरूप भी विराटता मे फूलता-फलता व सुदृढ वनता है। जिस प्रकार किसी विशाल भवन का टिकाव उसकी नीव पर आधारित है। वृक्ष की लम्बी जिंदगी उसके सुदृढ मूल पर निर्भर है। उसी प्रकार धर्म की वास्तविकता उसके सार्वभौम-सिद्धातो के आधार पर ही रही हुई है। अध्यात्म वादी कोई भी कैसा भी मत-पथ सम्प्रदाय अपना अस्तित्व अपने मौलिक-सिद्धान्तो और सत्य-तथ्य मान्यता उनके आधार पर प्रभुत्व जमाने मे सफल-सवल हुआ है। यही वात जैन-दर्शन जातिवाद के विषय मे एक मौलिक चिंतन प्रस्तुत करता है—

कम्मुणा वभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
कम्मुणा वइसो होइ, सुद्दो होइ कम्मुणा॥

उत्त० अ २५ गा ३३

कर्म से ब्राह्मण होता है कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है। और भी कहा है—

न वि मुण्डिएण समणो, न ओकारेण वभणो।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो॥

—उत्त० अ २५ गा ३१

केवल सिर मुँडाने से कोई श्रमण नही होता है, ओम्कार का जप करने से ब्राह्मण नही होता है, अरण्य मे रहने से मुनि नही होता है, और कुश का वना चीवर पहनने मात्र से कोई तपस्वी नही होता है।

उपर्युक्त आर्षवाणी मे जातिवाद को न स्थान एव न महत्त्व मिला है। वल्कि जातिवाद से गर्वित उन कट्टरपण्डे पुजारियो के मिथ्याचरण को दूर करने के लिए अर्हंत-वाणी स्पष्टत मार्गदर्शन दे रही है। केवल जाति के प्रभाव से यदि किसी को आदरणीय माना जाय, तो एक उच्च जाति कुल मे जन्म पाकर भी दुष्कर्म के दल-दल मे उलझा हुआ और एक नीच जाति-परिवार मे जन्म धारण करके शुभ कर्म-करणी कथनी मे आस्था रखता है। तदनुसार कर्म भी करता है। दर्शकगण जाति कुल एव उसके परिवार को न देखता हुआ, जो दुष्कर्मी है, उसको अवहेलना की दृष्टि से और शुभकर्मी को अच्छी निगाह से अवश्यमेव निहारेगा। वस्तुत. जाति की प्रधानता नही, कर्म की प्रधानता रही हुई है।

धर्म-साधना मे जातिवाद बाधक

जाति अभिमान को निरस्त करने के लिए कहा है—

सक्ख खु दीसइ तवो विसेसो, न दीसई जाइ विसेस कोई।
सोवाग पुत्ते हरिएस साहू, जस्सेरिस्सा इड्ढि महाणुभागा।

—उत्तरा० अ० १२ गा ३७

प्रत्यक्ष मे तप की ही विशेषता-महिमा देखी जा रही है। जाति की कोई विशेषता नही दीखती है। जिसकी ऐसी महान् चमत्कारी ऋद्धि है, वह हरिकेशी मुनि श्वपाक पुत्र है—चण्डाल का बेटा है।

मिथ्या भ्रान्ति को दूर करने के लिए सर्वप्रथम महा मनस्वियो ने अपने वृहद सघ मे सभी को समान स्थान दिया है। चण्डाल कुल मे जन्मा हरिकेशी को श्रमण सघ मे वही स्थान और वही सम्मान था जो प्रत्येक भिक्षु के लिए होता है। अर्जुन जैसे घातक मालाकार के लिए वही उपदेश था, जो धन्ना-शालिभद्र के लिए था। आनद-कामदेव जैसे वणिक् श्रावक मडली मे अग्रसर थे, तो शकडाल जैसे कुभकार को भी श्रावकत्त्व का पूरा-पूरा स्वभिमान था। अर्थात्—चारो वर्ण विशेष के जन-समूह सप्रेम सम्मिलित होकर साधिक योजनाओ को प्रगतिशील बनाते हैं। सभी के बलिष्ट कधो पर सघ का गुरुतर उत्तरदायित्त्व समान रूप से रहता है। जिसमे जातिवाद की दुर्गन्ध कोसो दूर रहती है। और प्रभु की वाणी भी अभेदभाव बरसा करती है।

जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ, तहा पुण्णस्स कत्थइ॥

—आचारागसूत्र

सर्वज्ञ कथित वाणी-प्रवाह मे सौभागी एव मन्दभागी दोनो को समान अधिकार है। मजे मे दोनो पक्ष अपने पाप-पक का प्रक्षालन करके महान् बन सकते हैं। वाणी-प्रवाह मे कितनी समानता सम्मता एव सर्वजनहिताय-सुखाय का समावेश! यह विशेषता सर्वोदय के सबल प्ररूपक तीर्थंकर के देशना की है।

जातिवाद का गर्व व्यर्थ

भ० महावीर ने अपने उपदेश मे कहा है—"से असइ उच्चागोए, असइ नीयागोए, नो हीणे, नो अइरित्ते, न पीहए, इति सखाए के गोयावाई, के माणावाई, कसि वा एगे गिज्झे, तम्हा पडिए नो कुज्झे।"

— आचारागसूत्र

इस आत्मा ने अनेको बार उच्च गोत्र और नीच गोत्र को प्राप्त किया है। इसलिए मन मे उच्च गोत्र और नीच गोत्र का न हर्ष और न शोक लावे अर्थात् न तो अपने को हीन समझे और न उच्चता का अभिमान ही करें।

एक भारतीय कवि ने भी इसी विषय की पुष्टि की है—

जात न पूछो साध की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ी रहन दो म्यान॥

सारी वातो से यही निष्कर्ष निकला कि—धर्म-साधना मे जातिवाद को कुछ भी महत्त्व नही दिया। जातिवाद तो ऊपर का चोला है। महत्त्व है ज्ञान दर्शन चारित्र और आत्मा को छूने वाले वास्तविक सत्य तथ्यो का। जो जातिवाद के बन्धन से सर्वथा निर्बन्धन और विमुक्त हैं। फिर भले वह आत्मा जैन, बौद्ध, हिंदू, ईसाई, मुस्लिम या पारसी आदि किसी भी चोले मे क्यो न हो। भले जिनका जन्म, भरण-पोषण एव लाड, प्यार, गाव, नगर अथवा हिंद, चीन, अमेरिका, लका आदि किसी भी स्थान मे क्यो न हुआ हो।

आज जैन समाज और इतर सामाजिक तत्त्व जातिवाद के दल-दल मे उलझे हुए है। जिससे विषमता, विद्वेषता को बढावा मिला है। अतएव जातिवाद के बन्धन को घरेलू कार्यो तक ही सीमित रखना अभीष्ट रहेगा। तिस पर भी अन्य जन समूह के साथ सहयोग-सहानुभूति का सामजस्य होना जरूरी है। धार्मिक क्षेत्र मे जातिवाद को ला घसीटना, अपराध माना गया है। वस्तुत धर्म व्यक्तिवाद-जातिवाद को नही देखता, वह जीवात्मा का अन्त करण का अन्वेषण करता है।

राजस्थानी री भक्ति-साहित्य

—श्री अगरचंद नाहटा 'साहित्य वारिधि'

भारत आध्यात्म प्रधान देश है, अठे री सम्कृति रो मूल आधार धर्म है। धर्म री व्याख्या अनेक ऋषि मुनिया और विद्वाना भात-भात री करी है, अर्थात् भारत रो धर्म शब्द बहुत व्यापक अर्थ रो द्योतक है। इहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय और निश्रेयस री सारी प्रवृत्तियाँ धर्म मे समावेश हुय जावे कि – नीति और आध्यात्मक रे बीचली सिगली शुभ प्रवृत्तियां धर्म मे समाविष्ट हैं। धर्म री चिन्तन प्रधान विचारधारा ने दर्शन केवे हैं, और आचार प्रधान प्रवृत्तियाँ ने धर्म केयो जावे है। इये वास्ते **आचार प्रथमोधर्म** को सूत्र वाक्य भी मिले है।

भारत री आध्यात्मिक साधना प्रणालियो मे ज्ञान, कर्म और भक्ति ये तीन प्रधान हैं। कर्म मे योग रो भी समावेश हुयजावे है, "योग कर्मसु कौशलम्" गीता रो आदर्श वाक्य है। ज्ञान, कर्म और भक्ति आ तीना मागा मे अपेक्षा भेद सू कोई केई ने तो दूजाने ऊचो अर आच्छो मार्ग बतावे है। वास्तव मे लोकारी रुचि और योग्यता भिन्न-भिन्न हुवे इये वास्ते धर्म रा मार्ग भी अनेक बताया गया है। आखिर साध्य तो एक है पण साधन अनेक है। जिस तरह केईने कलकत्ते जावणो हुवेतो वीरा रस्ता आप-आपरी सुविधानुसार अलग-अलग अपनायो जा सके। पहुँचने री जगा तो एक ही है। कोई जल्दी और कोई देरी सू, कोई सीधो और कोई घूमफिर पहुच सके हैं, इसी तरह सू मस्तिष्क-प्रधान व्यक्ति ज्ञान ने मुख्यता देवे। छँ दर्शना मे वेदान्त ने ज्ञानप्रधान केयो जावे हैं। क्योकि वे दर्शन री मान्यातारे अनुसार ज्ञान विना मुक्ति नही मिल सके। इसी तरह हृदय-प्रधान व्यक्ति रे वास्ते भक्तिमार्ग उत्तम बतायो है। भागवत् और वैष्णव धर्म मे भक्ति री प्रधानता है। वारी विचार-धारा मे तो मुक्ति सू भी भक्ति ऊची है। भगवान सू भी भक्ति ने ज्यादा महत्त्व दियो गयो है। क्योकि भगवान भी भक्त रे वश मे हुवे। क्रियाशील व्यक्ति रे वास्ते योग या कर्ममार्ग ज्यादा उपयुक्त है। गीता रे अनुसार कर्म तो प्रत्येक प्राणी हर समय करतो ही रैवे है। वे से फल री आशक्ति नही राखणी। भगवान उपर पूरी श्रद्धा और भक्ति राखणी। समरपण भाव री प्रधानता राखते हुअे शुभ प्रवृत्तियां करते रहणो आत्मोन्नति रो मार्ग हैं। निसकाम कर्मयोग गीता रो मुख्य सदेश है। साख्य और योग दर्शन री सार व समन्वय ही गीता है।

भक्ति री व्याख्या भी कई तरह सू करी गई है। भगवान सू विशेप अनुराग रो नाम—भक्ति है। जिने के प्रेम भी के सका हाँ। परलौकिक प्रेम सू वो वहुत ऊँचो है। भक्तिभाव अलग-अलग रुचि और योग्यता वाला अलग-अलग ढग सू व्यक्त करे है। और भक्ति रा मुख्य ९ प्रकार बताया गया है। कोई आपने भगवान रो दास माने हैं। कोई सखा माने है। कोई पत्नी माने हैं। इस तरह रा वहुत रकम रा भाव भक्त लोगा मे पायो जावे है। असल मे आपरे अहकार रो विसर्जन कर भगवान रे सागे एकता स्थापित करणी वारे प्रति पूर्ण समर्पित हुयजाणो ही भक्ति री विशेपता है। भगवान भी अनेक नामा सूं और अनेक अवतारा रै रूप मे माना व पूजा जावे है। अे वास्ते भक्तिमार्ग

वहुत व्यापक हुय गयो। राम-कृष्ण शिव-भक्ति रा कई सम्प्रदाय चल गया कोई केनेई भजे और कोई केनेई माने पूजे, पण आपरो हृदय जिकेरे प्रति समर्पित हुवे जिके ने आप सू वडो ईष्ट मान लेवे वेरे प्रति आदर और श्रद्धा वढती ही जावे अेइवास्ते गुरु री भक्ति ने भी वहुत महत्त्व दियो गयो और अठे ताई केय दियो के—

> गुरु गोविन्द दोनूं खडे, किसके लागू पाय।
> बलिहारी गुरु देव की, गोविन्द दियो बताय। १॥

अर्थात् भगवान ने वतावण वाला और भगवानखने पोचावण वाला या पहुँचने रा रास्ता वतावण वाला गुरुई हुवे है। जिका सू आच्छे वुरे रो ज्ञान प्राप्त कियो जावे। सावना मे सहायता मिले। इये उपगार री मुख्यता रे कारण गुरुवा रे प्रति भी वहुत भक्ति भाव राख्यो जावे है। भगवान तो आपारे सामने प्रत्यक्ष कोनी, पर गुरु तो प्रत्यक्ष है, इये वास्ते गुरे रे प्रती विनय, आदर और श्रद्धा राखणो भी भक्ति री प्रधान अग है।

परमात्मा या भगवान कुण है और वेरो स्वरूप कई है ? इये विषय मे काफी विचार भेद है। जैन धर्म री मान्यता वैदिक और वैष्णव धर्म सू इये वात मे काफी भिन्न पड जावे है। क्योकि वैदिक धर्म मे ईश्वर सम्वन्धी मान्यता इस तरह री है, के ईश्वर एक है और समय-समय पर अनेक अवतारा ने धारण करे है सृष्टि री उत्पत्ति वोही करे और सब कर्त्ता-धर्त्ता वोही हैं। ब्रह्मा रे रूप मे सृष्टि री सृजना करे, विष्णु रे रूप मे रक्षण व पोषण करे, और शिव शकर रे रूप मे सिंहार करे। जगत रा सारा जीव वे 'ईश्वर री ही सतान है अर्थात् वेरा ही वणावेडा है।' ईश्वर सर्व समर्थ है और शक्तिमान है चावे तो कोई ने तारदें कोई ने मार भी दे। इये वास्ते भक्त लोग भगवान री प्रार्थना करे, सेवा पूजा व भक्ति करे। के भगवान रे प्रसन्न हुआ सू म्हारो कल्याण हुसी ओ भव परभव सुधरसी। भगवान रे रुष्ट हुणे सू आपाने दु.ख मिलसी, जो कुछ हुवे है वो सब भगवानरो करियोडो ही हुवे है। इस तरह री विचारधारा जैन दर्शन मान्य को करीनी। जैन दर्शन रे अनुसार ईश्वर परमात्मा या भगवान कोई एक व्यक्ति विशेष कोनी, गुण विशेप है। जिके व्यक्ति मे भी परमात्मा रा गुण प्रकट हुय जावे वेने ही परमात्मा केयो जावे इये वास्ते ईश्वर एक कोनी, अनेक है अनन्त है। पूर्ण परमात्मा वणने रे वाद वेने इये ससार ओर जीवा सू कइ भी लगाव सम्वन्ध कोनी। वो तो कृत्य-कृत्य और आत्मानदी वणजावे है। वो न तो केरे ऊपर राजी हुवे न विराजी। न तुष्ट हुवे न रुष्ट हुवे। जगत रा जीव आप आपरा आच्छा व वुरा कर्मा के अनुमार आपरे मते ही फल भोगे हैं। परमात्मा रे इया रो कोई हाथ कोनी। ईश्वर जगत रो कर्त्ता धरता कोनी। जगत आपरे स्वभाव या प्रकृति सु अनादिकाल सू चल्यो आरह्यो है और अनन्तकाल तक चलतो रहसी। इस तरह री मौलिक विचारधारा जैन दर्शनरी हुणे रे कारण वैदिक दर्शना सू वा काफी भिन्न पड जावे है। और ऐई कारण जैन धर्म मे कर्मा ने प्रधानता दी है। कर्म रा खतम हुवणे सु ही मुक्ति मिले, कर्म ही वधन है। वे वधन सू छूटजाणा ही मुक्ति है। प्रत्येक जीव कर्म करणे मे व भोगने मे स्वतत्र हैं। ईश्वर रो अश या दास कोनी। आत्मिक गुण रे विकास सू प्रत्येक आत्मा परमात्मा वन सके। परमात्मा कोई अलग चीज कोनी, आत्मारो ही पूरो विकाश हुय जाणो परमात्मा वन जाणो है। इस तरह री दार्शनिक विचार धारा सू विया सिधो भक्ति रो कोई सवन्ध नही दिखे। पर जैन धर्म मे भी भक्ति रो विकाम काफी अच्छे रूप ने हुयो, अेरो एक मुख्य कारण ओ है कि प्रत्येक आत्मा मूल स्वभाव सू परमात्मा हुणे पर भी कर्मा रे आवरण और दवाव के कारण समार मे रूल रह्यो है। सुख-दु ख

भोग रह्यो है। ऐ वास्ते जीव रा दो भेद किया गया (१) मुक्त (२) ससारी। आत्मा रा तीन भेद किया गया, बहिरात्मा, अन्तरआत्मा और परमात्मा। जगत मे राच्यो पाच्यो रहनवालो बहिरात्मा है। ससारिक पर-पदार्थ सु उदासीन और अनाशक्ति भाव राखते हुवो आत्मा री तरफ झुकाव राखण वाले ने अन्तर आतमा केयो जावे है, और आत्मा रे पूर्ण शुद्ध स्वरूप या स्वभाव और गुण ने प्रकट कर दणे वालो परमात्मा मानियो जावे। इये सू साधारण ससारिक आत्मा और सिद्ध परमात्मा मे मोटा अतर पड जावे। और परमात्मा जर सिद्ध हुवण वास्ते जिका व्यक्ति वे स्थिति ने प्राप्त कर लिया है वारे प्रति आदर्श और श्रद्धा रो भाव राखणो जरूरी है। और इये ई वात ने लेर जैन धर्म मे भक्ति भाव रो विकास हुयो। तीर्थंकरा और गुरुजनारी भक्ति जरूरी मानी गई। इस तरह जैन और जैनेतर दोना मे भक्ति ने जरूरी और परमात्मा बनने या भगवान बने पहुँचने रो उत्तम मार्ग मान लियो गेयो। भक्त लोगा और कईजना भक्ति साहित्य रे निर्माण मे बहुत बडो योग दियो। राजस्थानी भक्ति साहित्य ऊपर की दोनो विचारधाराआ अर्थात् जैन और जैनेतर दोनो धर्मों सू सम्बन्धित है। इये वास्ते ही इतो पुरानो करणो जरूरी हुयो, जिके सू राजस्थानी भक्ति साहित्यरे उद्‌भव, विकास और भिन्न-भिन्न स्वरूपा रो सही ज्ञान हुय सके है। हालताई राजस्थानी भक्ति साहित्य पर कोई खोज और चिन्तन पूर्ण ग्रन्थ नही लिख्यो गयो है। पण वास्तव मे ओ एक वडो शोध प्रवन्ध रो विषय है। हू तो इये निवन्ध मे राजस्थानी भक्ति साहित्य सम्बन्धी कुछ मुख्य बाताँ री ही उल्लेख करसू।

राजस्थानी साहित्य फुटकर रूप मे तो ११-वी १२-वी शताव्दी मे भी रचणा शुरू हुय गयो, पण स्वतत्र रचना रे रूप मे १३-वो शताव्दी सू साहित्य निर्माण रो काम अच्छी तरह हुवण लागयो। जनेहि इये शताव्दी री बहुत नी जैन रचनावा आज भी प्राप्त हैं। वा मे कई तो चरित्र काव्य रूप मे हैं, पण भक्ति रचना रो आरम्भ इये शताव्दी सू ही हो जावे है। म्हारे सपादित ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह मे शाह रैण और कवि भत्ताऊँ रे विणावडा दो जिनपति सूरि गीत प्रकाशित हुआ है। जिके सू वा कविया री भक्ति भावना रो काई परिचय मिले है। प्रारम्भ मे ही शाह रैण लिखे है—

> युगवीर जिनपतिसूरि गुणगाईसू, भक्तिभर हरसिहि मनरमलै।
> तिहूअण तारण शिवसुख कारण वछाय पूरण कल्पतरो।
> विघन विनासन पाव पणासण, गुरित तिमिर भर सहसकरो॥

अतिम पक्ति मे कवि लिखे है—

> एहू श्रीजिनपतिसूरि, गुरु जुग पवरु-शाह रयण इम सथुणईए।
> समरई जे नरनारी निरतर, ताहा घर नवनिधि सपजईए॥

कवि भत्तउ आपरे जिनपति सूरि गीत रे अत मे लिखे हैं—

> लीणऊ मे कमलेहि भमरजिम भत्तउ, पाय कमल पणमिइ कहइ।
> समरइ जे नर नार निरन्तर तिहा घरे रिधि नावानाह लहइए॥

जिन पतिसूरि रा दोनू एक गुरु भक्तकवि सवत् १२७७ रे आस-पास ये गीत वणाया है। इस तरह रा गुरु गीता री परम्परा करीब ८०० वर्षा सू बरावर चली आ रही है। जिके रा कई उदाहरण म्हारे ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह सू उपस्थित किया जा सके हैं। पण निवध रे विस्तार रे भय सू खाली वारा प्रारम्भिक प्रवाह रे रूप मे ऊपर कई पक्तियाँ आ सकी है। १५ वी शताव्दी सू तीर्थंकरो

तीर्थां और गुरुआ वगैरहरा भक्ति गीत और काव्य ज्यादा मिलणे लागे है। सवत् १४१२ मे रचोडो गोनमस्वामी रास री कुछ पक्तियां नीचे दी जा रही हैं। बा मे कवि हृदय री भक्ति भावना वडे अच्छे रूप मे प्रकट हुई है। इये राम री रचना खरतरगच्छ रा उपाध्याय विनयप्रभ वहुत ही सुन्दर रूप मे करी है। गौतम स्वामी समोशरण मे पधार रह्या है वेरो वर्णन करते हुये कवि लिखे है—

आज हुवो सुविहाण, आज ए वेलिमा पुण्य भरो।
दीठा गौतम स्वामी, जो नियनयणे अमिय सरो॥

भगवान महावीर स्वामी रो निर्वाण हुयो जणे भक्तिरागवश वारा प्रथम गणधर गौतमस्वामी जी को विलाप कर्‌यो है वो वारी हृदयगत भावनायें पूर्ण रूप सू प्रकट करे है, वे कवे है—

इण समे ये समिय देखि, आप कनासु टालियो ऐ।
जाणतो ऐ तिहुअण नाह लोक व्यवहार न पालियो ऐ॥
अतिभलो एक किधलो स्वामी, जाणयो केवल मागसे ए।
चिन्तव्यो ऐ बालक जेम, अहवा केडे लागसे ऐ॥
हूं किम एक वीर जिणद, भगतिहि भोले भोलव्यो ऐ।
आपणो ऐ ऊचलो नेह नाहन संपय साचव्यो ऐ॥

अर्थात् भगवान महावीर आपरे अतिम निर्वाण समय मे मने दूर भेज दियो, लोक व्यवहार मे जो अतिम टेम मे आपारा टावरा ने दूर हुवे तोही नजदीक बुलायो जावे है। भगवान थे लोक-व्यवहार रो पालन कर्‌यो कोना, थे देख्यो के हू केवलज्ञान माग सू या वालक रे माफक थारै लारे लाग जासू। म्हारो थासू साचो स्नेह है पण थे तो वीतराग हो ये वास्ते स्नेह राख्यो कोनी। अत मे गीतमस्वामी भगवान रे प्रति राग हो जिके ने छोड र वीतरागी वणगया। १६वी शताब्दी रे जैन कवि भक्तिलाभ श्रीमधर भगवान रे स्तवन मे भक्ति री निर्मल गगा वहाई है वेरी भी थोडी पक्तियाँ आपरे सामने उपस्थित कर रह्यो हूँ—

सफल ससार अवतार ऐ हूँ गिणु, सामि श्रीमंधरा तुम्ह भगते भणु,
भेटवा पायकमल भाव हियडे धरू, करिय सुपसाय जे वीनसु ते सुणो,,
दिवस ने राति हियडे अनेरो धरू, मूढमन रिझवा वलिय माया करू,
तूहि अरिहत, जाणे जिसी आचरु, तेमकर जेम संसार सागरतरू,
ऐक अरिहत तु देव वीजो नही, ऐक ऐह आधार जग जाणजो अमसही,
जयो जयो जगगुरु जीव जीवनधरा, तुम समो वड नही अवर वालेसरा,
अमिय समवाणि जाणु सदा साभलु, बारबर परसदा माहि आवि मिलू,
चित्त जाणु सदा सामिपय ओलगु किमकरू ठाम कुंडल गिरि वेगलू,,
मौलिडा भगति तू चित्त हारे किसे, पुण्य सजोग प्रभु दृष्टिगोचर हुसे,
जेहने नामे मन वयणतन उल्लसे, दूर थी ढोकडा जेम हियडे वसे,
भल भलो ऐणि संसार सहू ऐ अछै, सामि श्रीमधरा ते सहु तुम पछे,
ध्यान करन्ता सुपन माही आवि मिले' देखिये नयण तो चित्त आरति टले,,
स्याम सोहावणा नाम मन गह गहे, तेह सू नेह जे बात तुम जी कहे,

तुम पद भेटवा अतिगणो टल वलूं, पंखजो होयतो सहिय आवि मिल्यूं,
मेह ने मोर जिम कमल भमरो रमे, तेम अरिहंत तू चित्त मोरे गमे,,

जैन कवियो रा सर्वाधिक भक्ति तीर्थंकरो और गुरुओ रे प्रति रही है, पण श्रीमदरभगवान जिका अवार जैन मान्यता रे हिमाव सू महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थंकर के रूप मे विचर रह्या है वारे प्रति तो जैन कविया री भक्ति भावना उमड पडी है, कवि ऊपरली पक्ति मे कहवे है कि म्हारे मन मे तो थारे दर्शन री घणी लाग रही है, पण थे दूर घणा तो हू पहुच को सकुनी, म्हारा मन थासू मिलणे ने इतो छटपटारह्यो है के प्रकृति म्हारे पाखा लगा देती तो हू उड थासू जा मिलतो, ध्यान करता वक्त या सुपने मे भी थे म्हने आ मिलो तो थांने देखते ही म्हारी सव चिन्ता दूर हुयजावे, जिस तरह मोर ने मेह और भवरे ने कमल बहुत ही प्यारा लागे, त्रिमी तरह सू है अरिहन्त भगवान ! थे म्हारे चिन्त मे वस रह्या हो, इस तरह रा भक्ति गीत सैंकडो नही हजारो है, श्रीमन्दर भगवान रे तरेइ श्वेताम्बर जैन समाज मे सव सू वडोतीर्थ श्री सिद्धाचल जी या शत्रुजयजी मान्याजावे है, वे तीर्थ प्रति भी जैन कविया री भक्ति भावना विशेप रूप सू प्रकट हुयी है, राजस्थान रा मोटा कवि समयसुन्दर शत्रुजय स्तवन मे केवे है—

धन धन आज दिवस घडी, धन धन मुज अवतार,
शत्रु जय शिखर ऊपर चढी, भेट्यौ श्री नाभि मल्हार,,
चद चकोर तणी परह, निरखता सुख थाय,
हियडु हेजड, उल्हसइ आणद अंगि न माय,,
दुःख दावानल उफममियो, बुठऊ अभिय मइ मेह,
मुझ आगणि सुरतरु फल्यूं भागऊ भव भ्रमण संदेह,
मुझ मन उल्लट अनिघणउ, मन मौह्यू रे शत्रजय भेटतण काज'
लालमन मौहयु रे. संघ करइ वधावणा मन मौहयू रे, तीर्थ नयण निहालि,
आज सफल दिन म्हारउ, मन मौहयु रे, जात्राकरी सुखकार,
दुरगति ना भय दुःख टल्या, पुगी मन री आस, लाल मन मौह्यौ रे,,

अठे घणा उदाहरण देणा सम्भव कोनी, म्हारे सपादित समय सुन्दरकृति-कुसुमाजली, जिनराजसूरि और विनयचद कुसुमाजली, जिनहर्ष ग्रथावली, धर्मवर्द्धन ग्रथावली, ज्ञानसार ग्रथावली आदि ग्रथ भक्तलोग वाचे आई भोलावण है।

राजस्थानी माहित्य रो सवसू अधिक निर्माण जैन कविया कर्यो, दूजी नम्बर चारण कविया रो है। विया प्राय सिगली जातवाला राजस्थानी भक्ति साहित्य वणायाँ है, क्योकि भक्ति मे कोई भेद भाव ऊच-नीच कोनी, आ तो हृदय री चीज है और वो सगला मानखा मे ऐक जिमा मिलै है। हजारु भजन राजस्थान रे मदिरा मे और जम्मा जागरण मे गाइजे है, वा मे अनेक तरह रा देवी देवता रे प्रति कविया री घणी श्रद्धा और भक्ति रो दर्शन हुवे, मिनख लुगाई रो भी भक्ति मे कोई भेद कोनी, राजस्थान रा मीरावाई तो सगला भक्ता मे सिरमोड मानयो जावे है वारा भजन उतर भारत मे तो प्राय सव जागा प्रसिद्ध है, दक्षिण भारत री भापाओ मे भी वांरो अनुवाद छप्यो है अर्थात् भक्ति रे क्षेत्र मे मीरावाई रो नाम ससार प्रसिद्ध है, अवार विया तो वारे नाम सू हजारु भजन छप चुक्या है, पण

वामे वारा खुद रा वणावणा वहुत कम ही हुसी, घणकरा तो दुसरा लोगा वारा नाम सू वणाय प्रसिद्ध कर दिया ।

राजपूत कवियो मे पृथ्वीराज राठौड वहुत वडा भगत हा, भक्तमाल ने भी वारे भक्ति रो वखाण मिले, कृष्ण रुखमणिवेलि वारी सर्वश्रेष्ठ राजस्थानी रचना है। वाअसल मे भक्तिकाव्य ही है। विया पृथ्वीराज जी श्रीराम कृष्ण गंगा री स्तुति रा दूहा वणाया जिके मे भी भक्तिरस छलक रह्यो है। वांरा वणावडा कई डिंगल गीत तो वहुत ही उच्चकोटी रा है। समरपणभाव रो ऐक आच्छो उदाहरण वारो ओ डिंगल गीत है —

हरिजेम हलाडो जिम हालीजै, काय धणिया सूं जोर कृपाल,
मौली दिवो दिवो छत माथे, देवो सौ लेउ स दयाल,
रीस करो भावैं रलियावत, गजभावे खरचाढ गुलाम,
माहरे सदा ताहरी माहव, रजा सजा मिर ऊपर राम,
मुझ उमेद वडी महमैहण, सिन्धुर पासैकेम सरै,
चीतारो खर सीस चित दे, किसूं पूतलिया पाण करै,
तू स्वामी पृथ्वीराज ताहरौ, वलि वीजा को करे विलाग,
रूडो जिको प्रताप रावलो, भूंडो जिको हमीणो भाग,,

चारण कवियो मे ईशरदास जी घणा प्रसिद्ध भक्तकवि हुया, वारे वणायेडो हरिरस तो भक्तारे वास्ते नित्यपाठ री पोथी वणगयो, और भी वारी घणी रचनाये मिले। हरिरस रो ऐक सुन्दर सस्करण श्री वद्रीप्रसाद जी साकरिया सूं अर्थ सहित सपादन कराय म्हे सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीयूट् सूं छपायो है। पृथ्वीदास ग्रथावली, ईश्वरदास ग्रथावली और दुर्साआढा ग्रथावली री पूरी सामग्री साकरियाजी खने घणा वर्षो सू पडी है, हाल वा काम पूरोकर भेज्यौ कोनी ।

दूसरा चारण भक्त कवि पीरदान लालस हुया, जिका री रचनाओ रो सग्रह पीरदान ग्रथावली रे नाम सू सपादन कर म्है इस्टीट्यूट सू प्रकाशित करवा दियो। ऐ १८ वी शताव्दी मे हुया, १६ वी शताव्दी मे कवि ओपाजी आढा भी आच्छा भक्तकवि हुया है।

चारण भक्तकवि ऐक नही पचासो हुय गया है, अवार ताई घणा लोगा री आ धारणा है के चारणा रो साहित्य वीररस रो ही घणो है, पण खोज करणे सू भक्ति साहित्य भी काफी मिले हैं। राघवदास री भक्तमाल व वेरी टीका पे जिके ने म्हे सपादन करी है। घणा चारण भक्तकविया रा उल्लेख है। स्वय चारण कवि ब्रमदास री वणावरी राजस्थानी मे भी एक भक्तमाल है। ऐ दौनू भक्तमाला राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर सू छप चुकी है। इये तरह री चारणा री भक्तमाल गुजरात वगैरह मे कई पाई जावे हैं, वा सगला ने सामने राखर चारण भक्त कविया री ऐक पूरी सूची वणार वारे रचनावारी खोज, सग्रह और प्रकाशन करणो जरूरी है। म्हारे सग्रह रे ऐक गुटके मे ऐक ही कवित्त मे १० चारण भक्त कविया रा नाम हैं। ओ गुटको सवत् १७१२ रो जैन विद्वान रो लिखयोडो है। इये कारण ऐमे प्रसिद्ध १८ वी शताव्दी ताई रा १० भक्तकविया रा नाम है। ओ कवित्त नीचे दियो जा रह्यो है।

कवित्त—कवेसरा रा नामा रो—

चौमुह चोरा चड जगत ईश्वर गुण जाणे, करमानद अरकोल, अलू अक्खर परमाणे।
माधौ मुथराराम, नाम माडल निज ग्रीदादूदा नारणदास, साथ जीनन्द मीमा।
चौरासी रुपक नरहर, चरण वरण वाणि जुजुवा चारण मरण चारण भगत,
हरिगायव रहना हुवा ।१।

इये कवित्तमायला कई भक्त कविया रा उल्लेख तो डा० मोहनलाल जिज्ञासु रे "चारिणी साहित्य रे इतिहास, मे हुयो है, पण केई नाम रेमे इसा भी है जिका रो वे मे उल्लेख कोनी जिस तरह चौमुह, कोल, नारवदास, चारो शायद चूडोहुसी, जिकोमाधोदास रो पिता हो।'

राजस्थानी रो भक्तिसाहित्य घणो विशाल और विविध प्रकार रो है। कई तो बडा वडा काव्य है केई छोटा-छोटा सुन्दर गीत है, कई राम, केई कृष्ण कई महादेव कई दूसरा देवि देवता तथा लोक देवता सवधी हैं। जिके ने जिकेरो इष्ट हुयी कई परची व चमत्कार मिल्यो वो वे देविदेवतारो भगत हुयगयो, वा देवी देवता रा मन्दिर वणाया गया, पूजा शुरु हुई, पण भक्ति रा गीत गाइजण लाग गया, माधवदास रो राम रासो पृथ्वीदास री कृष्ण रुखमणि वेलि कवि किशने री वणायोडी महादेव पार्वती वेलि, कवि कुशललाभ और लवराज रे रचौडा देवीचरित और वहुतसा देवी देवता रा छद भात-भात रे भक्ति साहित्य रा आच्छा नमूना है।

श्रीमद् भागवत् भक्ति प्रधान ऐक वडो प्रसिद्ध पुराण ग्रथ है। जिकेरा राजस्थानी मे गद्य और पद्य मे कई अनुवाद हुआ, इसी तरह और भी वहुतसा पुराणा भक्ति ग्रथारा राजस्थानी मे अनुवाद किया गया है। फुटकर हरजस तो हजारारी सख्या मे मिले है और गाइजे, भक्ति राजस्थानी न जीवन मे इसी घुल मिलगी कि थोडी वणी मिगला ही वेरे रग मे रगीजगया, कोई केरो ही भक्त वण गयो कोई दूसरे कोई रो, पण भक्ति प्राय सगला लोग ही केईन केई री करता ही मिले, गाव-गाव और नगर-नगर मे कोई न कोई देवी देवता रो छोटो मोटो मन्दिर जरूर मिल जावे, कई भक्ति सम्प्रदाय भी राजस्थान मे खूव पनपया और सत कविया मे ही कई भक्त हुया, पर वारे रचनारी भाषा हिन्दी प्रधान हुणे सू अठे वारो जिकर को कियो गयो नी, इये छोटे से निवन्ध मे इणा घणा भक्त कविया री चर्चा कर सतोष मानणो पड्यो है और उदाहरण तो वहुत ही कम दिया जा सका गया आशा है ऐसू प्रेरणालेयर राजस्थानी भक्ति साहित्य री आच्छी तरह खोज की जासी, और चुनीडा कविया री आच्छी २ रचनाओ रा सग्रह आलोचना सहित प्रकाशित किया जासी।

समाज और नारी

—राजल कुमारी जैन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के २५ वर्षो मे नारी शिक्षा के क्षेत्र मे जितनी उन्नति हुई उतना ही मानव का चारित्रिक स्तर तेजी से पतन की ओर पहुच रहा है। होना तो यह चाहिए था कि शैक्षणिक उन्नति भी विकासोन्मुखी हो, लेकिन हुआ इसके विपरीत ही। आज नारी घर की चाहरदीवारी को अवश्य ही लाघ कर जीवन और राष्ट्र के हर क्षेत्र मे पुरुष से कन्धे मे कन्धे मिलाते हुए खडी है। हर पुरुष को चारित्रिक विकासोन्मुखी होने के लिए सहारा देती वह स्वय ही विक्षिप्त सी वनी अपने चरित्र को ही खो बैठी है। दूसरी ओर समाज का मूल रूप नही है। ज्यादा एकता, सगठन, प्रेम, मैत्री पूर्ण व्यवहार एवम् एक दूसरे के प्रति सद्भावना हो लेकिन आज हम देखते है कि समाज मे न एकता, न सगठन न प्रेम न सद्भावना एव न मैत्री पूर्ण व्यवहार है। आज समाज मे एक दूसरे के प्रति विद्रोही भावना, द्वेष पूर्ण व्यवहार आदि अनेक वातें प्रचलित हैं। यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि—इसका मूल कारण क्या है ? कैसे समाज उन्नत होकर विकासशील हो आदि अनेक प्रश्न हैं ?

मानव जीवन की शुरुआत सर्व प्रथम घर एव परिवार से होती है। जो कि मानव के लिए सर्वप्रथम पाठशाला का स्वरूप प्रदान होती है। मानव इसी पाठशाला से प्रारम्भिक ज्ञान या व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर वाहर समाज मे निकलते है यहाँ सर्व प्रथम शिक्षक के रूप नारी का ही योगदान है। वह होती है माँ, जो कि सन्तान को जन्म ही नही देती वर्ना उसके आचार-विचार सस्कार भावनाएँ आदि का सम्वन्ध सन्तान के रक्त के साथ सचार होता रहना है। यही गुण आगे जाकर सन्तानो मे विकसित हो जाते हैं। यदि मानव सन्निकटता से इन सिद्धान्तो का अध्ययन करे तो स्पष्ट पता चल जायगा कि माता पिता के गुण वालक में मौजूद होगे, जो इसके जन्मदाता मे है। अगर सन्तान को कुछ न सिखाया जाय तो वह गुण उसकी सन्तान मे पाये जाते हैं। जैसा वालक को व्यवहार पारिवारिक वातावरण से मिलेगा उसी अनुसार वालक अपने आपको योग्य वनाएगा। इसलिए चारित्रिक उत्थान मे नारी जितनी सहायक हो सकती है उतना पुरुष नही। माना कि पुरुष शक्तिशाली है उस शक्ति का केन्द्र स्थल नारी ही है। नारी मे वह गुण मौजूद है जिसके द्वारा वह अपनी सन्तान को विकासशील एव योग्य वना सकती है। दूसरी ओर वह उसे कुमार्ग का पथिक एवम् अयोग्य भी वना सकती है। कही-कही यह कहा है कि—

"काटो से भरी शाखाओ को जिस प्रकार फूल सुन्दर वना सकता है। नारी उसी प्रकार गरीव घर के आगन को सुन्दर वना सकती है।" लेकिन यह वहुत कम देखने को मिलता है कि—जहाँ यह कथन चरितार्थ होता है वहा हम महान् पुरुषो की जीवनी इतिहास के पृष्ठो मे प्राचीन ग्रन्थो का अध्ययन करें तो हमे पता चलेगा कि महान् पुरुषो के जीवन को उत्कृष्ट वनाने मे किसी न किसी नारी का अवश्य योगदान रहा है। जैसे शिवाजी को अपनी माँ, भीष्म पितामह को उनकी वीमाता, रथनेमि को राजुल अनेको नारियाँ उल्लेखनीय है। जिसके कारण महान् पुरुषो के जीवन को उत्कृष्ट वनाने मे सहायक रही एवम् ऐसी अनेको नारिया उल्लेखनीय है जो राष्ट्र, समाज धर्म की उन्नति एव नारी

आदर्शों का रूप प्रगट करती है । झासी की रानी, सरोजनी नायडू, एनीबेसेन्ट, सीता, चन्दन बाला राजुल आदि। एक अग्रेज लेखक ने अपनी पुस्तक मे नारियो के बारे मे यह लिखा है एक स्थान पर कि—

"जो नारी पालना झुलाती है, वह शासन भी कर सकती है।"

उक्त कथन आज भी तीन देशो पर लागू होता है। वह है भारत, इजराइल एव लका। अगर हम प्राचीन ग्रन्थो एवम् धार्मिक सिद्धान्तो, रिवाजो का अध्ययन करे तो हमे पता चलता है कि—प्राचीन समय मे ही नारियो को समान अधिकार दिये गये हैं। भ० महावीर ने भी अपने चतुर्विध सघ का निर्माण के समय नारियो को पुरुषो के समान ही मानकर बराबरी के अधिकार दिये हैं। भारतीय सविधान मे भी नारियो को समानता का अधिकार मिला है। इस प्रश्न पर हम विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि मानवता की अमर बेल नारियो के द्वारा ही फलती-फूलती है और विकसित होती है। अत नारियो का सुशिक्षित एव सुसस्कृत होना अत्यन्त आवश्यक है तथा बच्चो मे भी अच्छे सस्कार एवम् चारित्रिक उत्थान सभव है। अगर जिस देश की नई पीढी सुरक्षित एवम् सुसस्कारमय होगी तो उस राष्ट्र, धर्म एव समाज की उन्नति अवश्य ही चरम सीमा पर होगी। अगर जिस देश व समाज की नारियाँ ही सुशिक्षित एव सुसस्कृता न होगी तो उस समाज के बालको मे अच्छे सस्कार एवम् सभ्यता कहाँ से होगी। और वह समाज कैसे उन्नतिशील बनेगा। अत उस समाज एव राष्ट्र का भविष्य अन्धकार मय होगा अत नारियो का सुशिक्षित होना आवश्यक है।

आज नारियो की जो स्थिति है वह विचारणीय है। आजकल भारतवर्ष मे नारी वर्ग की अधिकाश सदस्यो ने शिक्षा के क्षेत्र मे उन्नति अवश्य करी व कर रही है। मगर साथ ही अपनी भाषा सभ्यता एव सस्कृति की सीमा को छोडकर पश्चिम सभ्यता एव सस्कृति को अपना कर अपने आप को गौरवशाली मानती है। अगर यह कहा जाय तो अनुचित होगा कि आजकल नारी समाज ने अपनी शैक्षणिक क्षेत्र मे उन्नति तो अवश्य की है, मगर वह दूसरी ओर चारित्रिक हत्या के क्षेत्र मे अवनति के मार्ग का भी अनुकरण कर रही है। एक समय वह था कि भारतवर्ष अपनी अपनी सभ्यता, सस्कृति एवम् दृढता के लिए प्रसिद्धि को चरमोत्कृष्ट शिखर पर थे अगर भविष्य मे भी यही स्थिति रही तो एक समय वह भी आ सकता है जब भारतवर्ष मे जो उन्नत सस्कृति थी वह इतिहास के पृष्ठो तक सीमित रह जायगी और आने वाली भावी-पीढियाँ यह भी न जानेंगी कि हमारा धर्म क्या था, हमारी सभ्यता सस्कृति क्या थी हमारे समाज के आदर्श नियम क्या थे ?

नारी जगत इन सम्पूर्ण स्थिति का अवलोकन एव अहम प्रश्नो पर विचार करें उनके आदर्श नियमो को अपनाये व उसके अनुरूप अपने को ढाल सके तो वह अवश्य ही राष्ट्र, समाज धर्म एव परिवार की उन्नति मे महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती है। इसके लिए सर्व प्रथम उसे अपने अन्दर प्रेम व एकता की भावना को जागृत करना होगा। शैक्षणिक उन्नति के साथ-साथ चारित्रिक दृढता भी कायम करना होगा। अत नारियो का कर्त्तव्य है कि वह अपने अन्दर एकता की ज्योति निर्माण करे एव अपनी सभ्यता, सस्कृति को अपनाकर अपने जीवन को उन्नत बनाये ताकि भावी पीढी सुशिक्षित, सुसस्कारमय, प्रेम, सह-योग, सेवा, मैत्री पूर्ण सद्भावना आदि गुणो से युक्त होगी तभी राष्ट्र और समाज, धर्म एव परिवार की उन्नति मे सहायक हो सकती है। वर्ना देश की भावी पीढी गुणो से युक्त न होगी, और समाज धर्म परिवार की व्यवस्था मे कुशल न होगी। एव जो भारतवर्ष वर्षों तक गुलाम रहने के साथ आर्थिक स्थिति

की भी उन्नति न कर सका वही स्थिति आज के स्वतत्र भारत की हो सकती है। आज हम स्वतत्रता प्राप्ति के २५ वर्ष वाद भी अपनी आर्थिक स्थिति नही सुधार सके। कारण कि वर्षो की गुलाम एव आर्थिक परिस्थितियाँ। श्री राष्ट्रीय कवि गुप्त ने अपनी इन पक्तियो मे नारी को असहाय दयनीय अवस्था में माना है।

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आचल मे है दूध और आँखो मे पानी॥

तथा महान् व्यक्ति के द्वारा यह भी कहा जाता है कि—पुरुष-नारी का खिलौना है। लेकिन नारी स्वय उसके खेलने मात्र का उपकरण नही है। अत नारियो का कर्त्तव्य है कि अपनी परिस्थिति मे सुधार करें एव उसमे लज्जा, करुणा, नम्रता एव शील को अपनाएँ। अपने अन्दर प्रेम एकता सगठन की भावना की ज्योति प्रज्ज्वलित करे एव आदर्शो को अपनाए, तभी देश समाज परिवार मे अपनी प्रतिष्ठा कायम कर सकेगी। और तभी वह देश समाज एव नई पीढी मे सुधार कर सकती है। नारियो का प्रमुख यह उद्देश्य होना चाहिए कि आदर्शों एव गुणो को स्वय अपनाए और आने वाली नव-पीढियो को उन आदर्शो को सिखलाए एव उनको अपने जीवन मे अपनाने के लिए उत्साहित एव सही मार्गदर्शन दें। ताकि वह देश, समाज धर्म एव परिवार को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने मे योगदान दे सके अत इसमे यही निष्कर्ष निकलता है कि—अगर नारीजगत को अपनी प्रतिष्ठा कायम करना है, व अपने राष्ट्र, समाज एव धार्मिकक्षेत्र की उन्नति करना है तो वह सर्व प्रथम अपने आप मे सुधार करें एव आदर्श आदि को अपनाए ताकि उसे समानता का अधिकार प्राप्त हो एव अपने-अपने आने वाली नव पीढी का भविष्य सुन्दर एव ज्योतिमय हो।

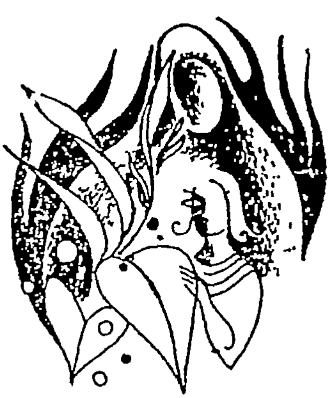

संघ की उज्ज्वल परम्परा के प्रतीक : मेवाड़भूषण महानयोगी श्री प्रतापमल जी महाराज

—मदनलाल जैन—(रावलपिण्डी वाले)

मेवाड भूषण परम श्रद्धेय महान् योगिराज गुरुदेव श्री प्रतापमल जी महाराज के महान् चारित्र एव समाज सेवा के उपलक्ष मे जो अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है—यह वडी प्रसन्नता की बात है। ग्रन्थ का प्रकाशन इसलिये किया जाता है कि—भावी जनता उस महान् दिव्य ज्योति के महान् कर्मठ जीवन के सम्बन्ध मे कुछ जान सके और उससे प्रेरणा पाकर जनमानस अपने आपको उज्ज्वल एव उन्नत कर सके। यह अभिनन्दन ग्रन्थ भी इसी दिशा मे एक महान् प्रयास है। हम इसकी महान् सफलता चाहते हैं।

महान् योगी !

विश्व मे समय-समय पर महान् विभूतिया मानवता के कल्याण के लिए जन्म लेती रहती हैं। ससार के जिन महान् पुरुषो ने अपने जीवन को ससार के भोग-विलासो मे नष्ट न करके सत्य तथा ज्ञान के समुज्ज्वल अन्वेषण मे लगाया, उन्ही महान् पुरुषो मे परम श्रद्धेय महान् योगी, मेवाड भूषण पडित-रत्न, त्याग-मूर्ति स्वामी श्री प्रतापमल जी महाराज हैं, जो सच्चे सयमी, श्रमण सस्कृति के प्रतीक बनकर इन महान् विशाल देश भारत की सुन्दर भूमि पर अवतरित हुये हैं।

बाल्यकाल !

परम श्रद्धेय श्री स्वामी प्रतापमल जी महाराज ने बाल्यकाल से ही त्याग, तप और वैराग्य को अपना लक्ष्य बनाये रखा, शिशु-सा सरल मन और सेवा की सौरभ से महकता मन है आप श्री जी का, शुभ जन्म देवगढ मदारिया मेवाड भूमि मे ईस्वी सन् १९०८ को हुआ था। बाल्यकाल से ही जैन सन्तो के शुभ दर्शनो का लाभ आप श्री को प्राय मिलता ही रहता था। जिससे धार्मिक जागृति की छाप आप श्री जी के रोम-रोम मे समा चुकी थी।

दीक्षा !

आप अभी केवल १४ वर्ष के ही थे, इतनी छोटी सी अल्प आयु मे ही आप को वैराग्य उत्पन्न हो गया, और ईस्वी सन् १९२२ मे मन्दसौर मे जैन दीक्षा को अगीकार करके एक जैन साधु हो गये। आप श्री जी ने दीक्षा परम श्रद्धेय पूज्यवर गुरुदेव जी वादीमान-मर्दक श्री नन्दलाल जी महाराज से ली। आप श्री जी के जीवन मे सरलता, सौम्यता, मृदुता और सेवाभाव मुख्य रूप से कूट-कूट कर भरे हैं। आप श्री ने शरीर द्वारा सुख दुख की निरपेक्षता का अपने जीवन की प्रयोगशाला के द्वारा जो महन् प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह सदैव स्मरणीय है।

युग-प्रर्वतक !

परम श्रद्धेय श्री स्वामी प्रतापमल जी महाराज एक युग-प्रर्वतक महान् पुरुष हैं। आप श्री जी ऐसे महान् सन्त हैं, जिन्होंने सदा ही ससार मे और अपने साधु-सघ मे सुख और शाति को स्थिर रखने के लिए समता, सत्य तथा अहिंसा को ही परम आवश्यक बतलाया। सगठन, अनुशासन-समाज-सेवा और सहनशीलता आप श्री के जीवन के मूल सिद्धान्त हैं। आप श्री जी धार्मिक जागृति, शिक्षा-प्रसार एव समाज उत्थान मे जो आजकल योगदान दे रहे हैं—वह भुलाया नहीजा सकता।

महान् कर्मठ संयमी सन्त !

आप श्री जी प्रखरप्रतिभा के धनी सन्त हैं। भगवान् महावीर के अहिंसा व सत्य को अपने जीवन मे उतारनेवाले तथा इन महान् सिद्धान्तो का घर-घर मे प्रचार व प्रसार करने मे आप श्री का वहुत योगदान है—समाज-सेवा और धर्म-रक्षा के निमित्त जो आप श्री जी का महत्त्वपूर्ण सहयोग समाज को मिल रहा है। वह सराहनीय है। श्रद्धेय श्री प्रतापमल जी महाराज स्थानकवासी जैन जगत के प्रकाश-स्तम्भ हैं। जिन के शुभ जीवन का लक्ष्य केवल सत्य-प्राप्ति और आध्यात्मिक विकास ही है। महान सन्त अपने वचन से नही अपितु आचरण से ही जनता को सन्मार्ग दर्शन कराया करते हैं। श्रद्धेय श्री प्रतापमल जी महाराज का महान जीवन सचमुच अहिंसा, मत्य, त्याग वा तपश्चर्या का सजीव प्रतीक है। आप श्री जी ने अपना समस्त जीवन मानवता की रक्षा और आत्मिक विकास के तत्वो की खोज मे लगाया हुआ है। देश के कर्मठ, सयमी सन्तो के आदर्शो पर आज भी मानव समाज का स्तर टिका हुआ है।

मेवाडभूषण परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री प्रतापमलजी महाराज जिस समाज तथा देश और धर्म को प्राप्त हो, सचमुच वो कितना भाग्यशाली समाज है। जैन समाज को खासकर ऐसे महान सत को पाकर महान गौरव का ही अनुभव होता है। आप श्री जी परोपकारी, जन-हित मे अपना सर्वस्व-समर्पण कर देने वाले नररत्न सन्त है। आप जैसे सत ससार की सर्वोत्तम विभूति हैं। अज्ञान के अन्धकार मे भटकने वाले प्राणियो के लिए दिव्य प्रकाश-पुज हैं। सन्त आत्म-साधना मे लीन रहकर भी विश्व के महान उपकर्ता होते हैं। आप श्री जी के जीवन के ६५ वर्ष और मुनि जीवन के ५१ वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं। इस दीर्घकाल मे आप श्री जी ने धर्म और सघ के लिए जो कुछ किया है। उसका मूल्याकन करना सरल नही है। ऐसे सन्तो का स्मरण, स्तवन, अभिनन्दन गुणगान मानवजाति के लिए महान् मगल रूप है। आप श्री जी का यह मुनि जीवन स्वच्छ, निर्मल और उज्ज्वल एव पवित्र है। जो साधको यानि मुनि मण्डल के लिए एक पथ-पर्दशक रूप है। इस लम्बे मुनि जीवन मे आप श्री जी ने देश भर मे पैदल पद यात्रा करके मानव-जाति मे सत्य, अहिंसा, क्षमा, प्रेम का वो दीप प्रज्ज्वलित किया है। जिस की उज्ज्वल ज्योति चिरकाल तक भावी पीढियो को आलोकित करती रहेगी, और सव देशवासियो को मगलमय प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।

धर्म प्रचार—धर्म प्रचार के क्षेत्र मे भी आप श्री जी का योगदान प्रशसनीय है। विभिन्न क्षेत्रो की सार-सभाल करना, यह सब आप श्री जी की ऐसी विशेषताएँ हैं—जो श्रमण सघीय साधु-मुनिराजो के लिए अनुकरणीय हैं—आप श्री जी श्रमण सघ के उत्साही सगठन प्रिय और एक महान् उत्साही, कर्मठ सत हैं। तपोमय मुनि जीवन ने मानव की मानसिक कल्पनाओ को एव आत्मिक क्षुधा-पिपासा को शान्त करने के लिए समय-समय पर महान उपदेशामृत की अनुपम-अनूठी धारा वहाई है—जो प्रशसनीय है—उस के विचार मात्र से हृदय प्रमोद से भर जाता है। आप श्री जी का अध्ययन हिन्दी, गुजराती, प्राकृत एव सस्कृत मे खूब हैं—वास्तव मे आप श्री जी का महान् जीवन स्थानकवासी जैन समाज के लिए धन है।

हमारी हार्दिक कामना है—कि मेवाडभूषण जी महाराज दीर्घ-काल तक भगवान महावीर स्वामी के महान् सिद्धान्तो का तथा जैन धर्म का प्रचार करते रहें। श्रद्धेय पूज्य गुरुवर जी श्री प्रतापमल जी महाराज के महान सद्गुणो का कहाँ तक वर्णन करूँ? मेरी तुच्छ लेखनी मे इतना वल ही कहा है जो इस महान आत्मा के दिव्य गुणो का चित्रण कर सके! फिर भी श्रद्धावश इस महान ज्योति पुञ्ज-रत्न के प्रति कुछ भाव अपनी ओर से लिख पाया हू—आप जी

की स्पष्ट-वादिता के कारण जन-मानस सदा ही आप जी के प्रति आकर्षित एव श्रद्धावान् रहा है। ऐसे महान् तपोपूत सन्त का अभिनन्दन करते हुये हम सब को व समूचे जैन समाज को अपार हर्ष व उल्लास का होना स्वाभाविक है। यह अभिनन्दन ग्रन्थ मेवाड भूषण श्री जी की समाज सेवाओ के प्रति एक श्रद्धा का सुमन तथा समाजोपयोगी प्रकाशन हो, यही शुभ कामना है। यह एक महान् सयमी सत के प्रति हमारा सही और रचनात्मक अभिनन्दन है। अन्त में हमारी हार्दिक कामना है कि मेवाड भूषण जी चिरजीवी होकर सघ और शासन के अभ्युदय के महान्, उत्तरदायित्व को सफलता के साथ वहन करते रहे।

तुम सलामत रहो। हजार वर्ष, हर वर्ष के दिन हो पचास हजार।

सत्यं शिवं सुन्दरम् के प्रतीक

—महासती मदनकु वरजी म०

"ससार द्वेष की आग में जलता रहा,
पर सन्त अपनी मस्ती मे चलता रहा।
सन्त विष को निगल करके भी सदा,
ससार के लिये अमृत उगलता रहा॥

परोपकार, दया, स्नेह, मधुरता, शीतलता आदि सतो का मुख्य गुण है। कहा है—

साधु चन्दन बावना शीतल ज्यारो अग।
लहर उतारे भुजग की दे दे ज्ञान को रग॥

इन्ही सन्त रत्नो मे परम श्रद्धेय आदरणीय पण्डित रत्न मेवाड भूषण गुरुदेव श्री प्रताप मुनि जी महाराज भी एक है। आपका जीवन बहुत सुन्दर है। आपके हृदय मे क्षमता, सहिष्णुता, धैर्यता, मधुरता, सरलता, नम्रता, करुणा इत्यादि सभी सन्तोचित गुण विद्यमान है। आप श्री का मेरे पर अत्यधिक उपकार है। मुझे ज्ञानदान आपने ही दिया। मैं आपकी पूर्ण आभारी हूँ। तथा साथ ही यह कामना करती हूँ कि प्रभु आप को चिरायु बनाये, जिससे कि—जाति, समाज तथा देश को आप द्वारा सद्प्रेरणा मिलती रहे एव हमारा देश, हमारी जाति, हमारी समाज निरन्तर आगे बढती रहे।

इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ उसी जीवन का स्मरण करता है जो सूर्य जैसे प्रकाश, चन्द्र सी शीतलता, नदी प्रवाह सी सरलता, फूलो सी महक और फलो सा माधुर्य का खजाना लुटाता हो। वही जीवन वदनीय एव अर्चनीय माना है।

तदनुसार आप श्री का साधनामय जीवन तद्रूप मुझे प्रतीत हुआ है। सेवा-समता-करुणा, परोपकार एव सहिष्णुता आदि गुण-सुमनो से महकता हुआ जीवन-पुष्प है जो मानवता के उपवन मे स्वयं महक रहा है और अपने शात उपदेशो द्वारा श्री सघ रूपी उपवन को भी महकाया एव चमकाया है। जिनका जीवन प्रवाह निरतर अहिंसा सयम एव तप की त्रिवेणी मे अठखेलिया करता रहा है।

परम पूज्य श्रद्धेय प्रात स्मरणीय मेवाड-भूषण गुरुदेव श्री प्रतापमल जी म० के असख्य गुणो को शब्द बन्धन मे बान्धना एक निरर्थक प्रयास है।

सत्य शिव सुन्दरम् के प्रतीक आपका पुनीत चरित्र अनत काल एव युग-युगान्तरो तक जीवनोत्थान का अमर सदेश देता रहेगा। और आपको यश सुरभि सद्गुण एव साधना, जनता के हृदय मे श्रद्धा का विषय बनी रहेगी।